१५१-०० श्री व० स्था० जैन श्रावक संघ घरणगाँव
२०१-०० श्रीमान् गुप्तदानीजी " (पू० खा०)

१०१-०० " गोकुलचन्दजी रूपचन्दजी कोठारी
कोपरगाँव (अ० नगर)

आपकी धर्मश्रद्धा और उदारता प्रसिद्ध है।

१०१-०० श्री कन्हैयालालजी लूंकड़ की ध. प. सुन्दरबाई
(शोलापुर)

आप ने अपने सुपुत्र ज्ञानचंद के जन्मोपलक्ष में यह दान किया है। आपका सारा परिवार धार्मिक वातावरण में रँगा है।

१०१-०० श्री वंसीलालजी कर्णावट देवला (नासिक)

श्रीमान् रायचन्दजी के आप सुपुत्र हैं । पहले आप खरड़े में रहते थे, किन्तु पिछले दस वर्षों से यहाँ आकर बस गये हैं। आपने अपनी माताजी श्री सुन्दरबाई के कहने से यह दान किया है। आपका सारा कुटुम्ब तपस्वी है ।

१०१-०० श्री गुलाबचंदजी लूंकड़ देवला (नासिक)

आपने अपने स्व० पिताजी श्रीमान् छोगमलजी की स्मृति में यह दान किया है। आपके पिताजी बड़े तपस्या-प्रेमी थे। सन् १६३१ की बात है। उस समय विहार करते हुए तपस्वी मुनि श्री गणेशीलालजी म० सा० बाजगाँव में जब पधारे थे,तब उन्होंने बड़े उत्साह से सेवा की थी और अपनी ओर से प्रेरणा देकर अनेक लम्बी-लम्बी १२ उपवास तक की तपस्याएँ करवाई थीं । आपकी माताजी स्व० श्रीमती गंगाबाई भी तपस्विनी थीं।

१०१-०० श्रीमान् धर्मचन्दजी मोदी उमराणा (नासिक)

आपने अपने स्व० पिताजी श्री रीधकरणजी की स्मृति में अपनी माताजी श्रीमती गंगूबाई के कहने से यह दान किया है। साधुसन्तों के पधारने पर आप सेवा का खूब लाभ लेते हैं। आप उमराणे के एक प्रमुख श्रावक हैं। आपकी धर्मभावना भी काफी प्रबल है।

५१-०० श्रीमान् लालचन्दजी हीराचन्दजी सँकलेचा देवला
५१-०० ,, जोगराजजी कुन्दनमलजी वेदमुत्था
लाखना (संबलपुर)
५१-०० ,, प्रेमराजजी पन्नालालजी मेहर हिंगोना (पू. खा.)
(अठाई तप के उपलक्ष में)
५१-०० ,, पीरचंदजी लालचंदजी साँड एलदा ,,
४१-०० ,, मोतीलालजी सुखलालजी छाजेड़ एलदा ,,
३१-०० ,, सुगनमलजी तेजमलजी सुराणा देवला (नासिक)
३१-०० ,, उत्तमचंदजी केशरीमलजी बागरेचा दहिवद
(पू. खा.)
२५-०० ,, हंसराजजी पोपटलालजी संकलेचा देवला
२५-०० ,, छबीलदासजी हंसराजजी कर्णावट ,,
२५-०० ,, छबीलदासजी की ध० प० कचराबाई ,,
२१-०० ,, उत्तमचंदजी हुक्मीचंदजी संकलेचा ,,
२१-०० ,, कन्हैयालालजी काँठेड़ की ध० प० सरसबाई
चांवल खेड़ा (पू. खा.)
१५-०० ,, अमरचन्दजी तखतमलजी काँकरिया हिसाला
११-२५ ,, प्रेमराजजी प्रतापमलजी रतनपूरी बोरा ,,
११-०० ,, धनराजजी रावतमलजी चौरडिया कमखेड़ा
(प. खा.)

११-०० श्रीमती पतासीबाई भ० उत्तमचंदजी बागरेचा दहिवद (पू. खा.)

११-०० ,, मदनबाई भ० सुगनचंदजी चाँदवड़

११-०० ,, उमरावबाई टिटवा

५-०० श्रीमान् हस्तीमलजी शिवदानमलजी लूणावत गलदा

मैं अपनी संस्था की ओर से उपर्युक्त सभी दानवीर सज्जनों का हार्दिक-आभार स्वीकार करता हूँ।

[सूचनाः—स्मरण रहे कि उपलब्ध आर्थिक सहायता के अतिरिक्त होने वाला खर्च संस्था ने उठाया है।]

—कन्हैयालाल छाजेड़
मन्त्रीः—श्री अमोल जैन ज्ञानालय
गली नम्बर २, धूलिया (प.खा.)

१५-७-१९५८]

—: प्रास्ताविक :—

भव्यात्माओ !

संसार में सभी प्राणी अज्ञानान्धकार में भटकने के कारण नाना प्रकार के कष्ट पा रहे हैं। अँधेरे में यथार्थ ज्ञान के लिए प्रकाश की आवश्यकता होती हैं। प्रकाश दो प्रकार का होता है:— द्रव्य प्रकाश और भावप्रकाश। सूर्य, चन्द्र, दीपक आदि का प्रकाश द्रव्यप्रकाश है, इससे भौतिक पदार्थ आँखों द्वारा दिखाई देते हैं। भाव प्रकाश (तीर्थंकर) देव का होता है, उससे आध्यात्मिक पदाथ दिखाई देते हैं। इस ग्रन्थ मे देव-सम्बन्धी यथाशक्ति परिचय देने का प्रयत्न किया गया है।

—: देव :—

देवों का सौन्दर्य अनुपम होता है। दिव्य आकृति धारण करने के कारण वे "देव" कहलाते हैं।

केवलज्ञान के कारण उनका दिव्य आत्मप्रकाश सारे संसार में प्रकट हो जाता है, इसलिए भी वे "देव" कहे जाते हैं।

ज्ञान, दर्शन और चारित्र ही मोक्ष का मार्ग है। जैसा कि आचार्य उमास्वामी ने अपने तत्त्वार्थसूत्र में कहा है:—"सम्यग्-दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः।" शास्त्रकारों के शब्दों मे यही बात यों कही गई है—

नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा।
एस मग्गुत्ति पण्णत्तो, जिणेहिं वरदंसिहिं॥

अर्थात् केवलदर्शी जिनवरों ने ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप—यही मोक्ष का मार्ग बताया है। कहने का आशय यह है कि जो मोक्षमार्ग का यथार्थ उपदेश देते हैं, वे "देव" कहलाते हैं।

सूर्य का जो प्रकाश दिखाई देता है, वह वास्तव में सूर्य के विमान का है; परन्तु देव की तो आत्मा ही स्वयं प्रकाशमान होती है।

—: अरिहन्त :—

यों तो प्रत्येक आत्मा में दिव्य प्रकाश होता है, किन्तु कर्मों के सघन आवरणों में छिपा रहता है। तपस्या आदि साधनाओं के द्वारा जो ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय इन चार घनघाति कर्मों की निर्जरा करते हैं, उनका आत्मप्रकाश प्रकट हो जाता है। कर्म ही आत्मा के वास्तविक शत्रु हैं, जैसा कि एक आचार्य कहते हैं—

अट्ठविहंपि य कम्मं, अरिभूयं होइ सव्वजीवाणं।
तं कम्ममरिं हंता, अरिहंता तेण वुच्चंति॥

अर्थात् सभी (संसारी) जीवों के लिए आठ प्रकार के कर्म शत्रु-रूप हैं। उस कर्म रूपी अरिगण (शत्रुओं) का जो हनन करते हैं, वे अरिहंत कहलाते हैं। अरिहत भी देव का ही वाचक शब्द है।

अरिहन्त को "अर्हन्त" भी कहते हैं। यह शब्द संस्कृत की "अर्ह पूजायाम्" धातु से बना है, इसलिए अर्हन्त का अर्थ है—पूज्य (भक्ति करने योग्य)। अर्हन्त देव मनुष्यों के ही नहीं, इन्द्रों के भी पूज्य हैं।

अरिहंत को "अरहंत" भी कहते हैं, जिसका संस्कृत रूपान्तर "अरथान्त" होता है। 'रथ' शब्द सब प्रकार के परिग्रह का

द्योतक है और 'अन्त का अर्थ है—मृत्यु। इस प्रकार परिग्रह और मृत्यु से जो सर्वथा मुक्त हैं, वे "अरहंत" देव हैं।

इन्हीं से मिलता-जुलता एक शब्द "अरुहन्त" भी है। 'रुह' धातु का अर्थ है-सन्तान या परम्परा। बीज से अंकुर पैदा होता है और अंकुर से बीज। इस प्रकार बीज और अंकुर की परम्परा शुरू हो जाती है। परन्तु यदि बीज को जला दिया जाय या भून दिया जाय तो फिर अंकुर पैदा नहीं होता। इसी प्रकार जिन्होंने कर्मरूपी बीज को जला दिया है और इसी कारण जो जन्म-मरण की परम्परा से मुक्त हो गये हैं, वे "अरुहन्त" कहलाते हैं। जैसा कि किसी कवि ने कहा है:—

दग्धे बीजे यथाऽत्यन्तम्, प्रादुर्भवति नाऽङ्कुरः।
कर्मबीजे तथा दग्धे, न रोहति भवाङ्कुरः॥

—: वीतराग :—

इस प्रकार अरिहंत शब्द के भिन्न-भिन्न रूपों में अलग—अलग गुणों का परिचय प्राप्त होता है। देव के लिए अरिहंत शब्द जैसे विशेषण है, वैसे ही वीतराग भी विशेषण है। वकील, डाक्टर, सेठ, मुनीम आदि नाम किसी व्यक्ति के नहीं होते। जो वकालत करता है, वकील है। जो इलाज करता है, डाक्टर है। जो व्यापार करता है, सेठ है। जो सेठ का हिसाब सँभालता है, मुनीम है। इस प्रकार इन शब्दों से अमुक व्यक्ति के अमुक गुणों का परिचय मिलता है। ठीक उसी तरह वीतराग शब्द भी व्यक्तिवाचक नहीं, गुणवाचक है। वीतराग शब्द से मालूम होता है कि वह व्यक्ति राग से रहित है।

वीतराग बनने के लिए वर्ण-जाति का या सम्प्रदाय का कोई बन्धन नहीं है। राग जिसका नष्ट हो चुका है, वह व्यक्ति वीतराग है, फिर भले ही वह किसी भी वर्ण, जाति या सम्प्रदाय का क्यों न हो। सिद्ध के पन्द्रह भेदों में "स्वलिंगसिद्ध" और "अन्य-लिंगसिद्ध"-ये शब्द इसी बात को प्रकट कर रहे हैं।

स्कूल में हजारों विद्यार्थी पढ़ते हैं' किन्तु स्वर्णपदक तो विजेता को मिलता है, उसी प्रकार देव शब्द संसार में हजारों-लाखों के लिए प्रयुक्त होता है, किन्तु सच्चा देव तो वही है, जो राग को जीत चुका है। हमारा मस्तक केवल वीतराग को ही झुकाना चाहिये। जैसा कि एक जैनाचार्य ने लिखा है:—

भवबीजांकुरजलदाः,
रागाद्याः क्षयमुपागता यस्य।
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा
हरो जिनो वा नमस्तस्मै॥

—हरिभद्रसूरिः

अर्थात् संसार (जन्म-मरण-चक्र) रूपी बीज को अंकुरित करने मे मेघ के समान जो रागादि हैं, उन्हें जिसने क्षय किया है, उसे नमस्कार है, फिर भले ही वह (ब्राह्मणों का) ब्रह्मा हो, (वैष्णवों का) विष्णु हो, (शैवों का) शिव हो या (जैनों का) जिन।

जिस में गुण ही गुण हों, दोष बिल्कुल न हो, वही देव है। यह बात नीचे लिखे शब्दों में कही गई है:—

यस्य निखिलाश्च दोषाः,
न सन्ति सर्वे गुणाश्च विद्यन्ते।

ब्रह्मा वा विष्णुर्वा

हरो जिनो वा नमस्तस्मै ॥

—हरिभद्रसूरिः

सचमुच जो दोषों से सर्वथा रहित है, वही प्रणम्य परमात्मा है। हेमचन्द्राचार्य ने यह बात बहुत स्पष्टता के साथ इन शब्दों में प्रकट की है:—

यत्र तत्र समये यथा तथा
योऽसि सोऽस्यभिधया यया तया ।
वीतदोषकलुषः स चेद्भवान्
एक एव भगवन् ! नमोऽस्तु ते ॥

अर्थात् किसी भी परम्परा (सम्प्रदाय) में, किसी भी रूप में, किसी भी नाम से आप क्यों न प्रसिद्ध हों-यदि आप दोषों की कलुषता से रहित हैं तो हे भगवन् ! आप मेरे लिए एक ही हैं-आपको नमस्कार ।

पुराणकारों ने-हिन्दुओं के ऋषियों ने भी रागद्वेष से रहित को ही देव मानते हुए घोषित किया है:—

"रागद्वेषविनिर्मुक्तस्तं देवं ब्राह्मणा विदुः ॥"

—शिवपुराण (ज्ञान संहिता २४।२६)

—देवों के प्रकार—

अब देवों के भेद पर थोड़ा सा विचार करें। देवों के दो प्रकार हैं:—भाषक और अभाषक या साकार और निराकार अथवा तीर्थंकर और सिद्ध।

भापक का अर्थ है, बोलने वाले-उपदेश देने वाले। साकार का अर्थ है-शरीर वाले-आकृति वाले। तीर्थंकर का अर्थ है-धर्म-तीर्थ की स्थापना करने वाले।

साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका रूप चार प्रकार के संघ को ही तीर्थ कहते हैं। ऐसे तीर्थ को प्रस्थापित करने वाले तीर्थ-ङ्कर कहलाते हैं।

--: अवर्णनीयता :--

तीर्थंकर देव के या परमात्मा के गुणों का वर्णन कितना भी किया जाय, अधूरा ही रहेगा। क्योंकि परमात्मा के गुण अनन्त हैं, इसलिए सबका वर्णन हो ही नहीं सकता! भले ही उनका वर्णन करने का प्रयत्न स्वयं सरस्वती ही क्यों न करे? कहा गया है:—

असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवर शाखा लेखनी पत्रमुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालम्
तदपि तव गुणानामीश! पारं न याति॥

अर्थात हे परमेश्वर! यदि समुद्ररूपी दवात में काजल के पहाड़ (के बराबर ढेर) को घोल कर स्याही बनाई जाय, कल्प-वृक्ष की मजबूत शाखा की कलम बनाई जाय और फिर पृथ्वी रूपी कागज पर स्वयं सरस्वती अनन्तकाल तक लिखती रहे तो भी आपके गुणों का पार नहीं पा सकती।

~: गुण-वर्णन :~

यह सब कुछ जानते हुए भी भक्त चुप नहीं रह सकता ! क्यों कि उसे परमात्मा के गुणों का वर्णन करने में आनन्द आता है, इसलिए वह अपनी शक्ति के अनुसार वर्णन किये बिना नहीं रहता।

आचार्य अभयदेवसूरि ने अपने किसी ग्रन्थ के मंगलाचरण में लिखा है:—

सर्वज्ञमीश्वरमनन्तमसङ्गमग्र्यम्
सार्वीयमस्मरमनीशमनीहमिद्धम्
सिद्धं शिवं शिवकरं करणव्यपेतम्
श्रीमज्जिनं जितरिपुं प्रयतः प्रणौमि ॥

अर्थात जिन्होंने रागद्वेष आदि शत्रुओं को जीत लिया है, उन शोभा-युक्त जिनदेव को मैं सविधि प्रणाम करता हूँ। वे जिन-देव कैसे हैं ?

सर्वज्ञ हैं

सब कुछ जानते हैं। इन्द्र ने भगवान् की स्तुति जिन शब्दों में की है, उन्हें "शक्रस्तव" कहा जाता है। उन शब्दों में "सव्व-एणूणं सव्वदरिसीणं" ये दो शब्द भी आते है, इससे मालूम होता है कि स्वयं देवराज इन्द्र भी भगवान् की सर्वज्ञता और सर्वदर्शिता को स्वीकार करते हैं।

वे त्रिकाल त्रिलोक के समस्त भावों को प्रत्यक्ष जानते और देखते हैं। शास्त्रकार कहते हैं:—अप्पा सो 'परमप्पा' आत्मा ही

परमात्मा है। 'सोऽहम' अर्थात् वही मैं हूँ। 'तत्त्वमसि' अर्थात् वही तू है। 'जीवो ब्रह्मैव नाऽपरम्' अर्थात् जीव ही ब्रह्म है, दूसरा नहीं। इन सब वाक्यों से मालूम होता है कि जो शक्ति परमात्मा में है, वही आत्मा में है—तब सवाल उठता है कि यदि परमात्मा सब जानते हैं और देखते हैं तो हम क्यों नहीं जानते देखते ?

इसके उत्तर में कहना है कि यदि किसी की आँखों पर काले कपड़े की आठ परतों वाली पट्टी बाँध दी जाय, तो देखने की शक्ति होते हुए भी वह देख नहीं पाता। इसी प्रकार आत्मा पर आठ कर्मों की पट्टी बंधी है, इसीलिए जब तक वह हट न जाय, तब तक शक्ति होते हुए भी आत्मा का उतना प्रकाश प्रकट नहीं हो पाता कि वह सब कुछ जान-देख सके। परमात्मा के कर्मों का आवरण नष्ट हो चुका है, इसीलिए वे 'सर्वज्ञ' कहलाये।

ईश्वर हैं

मालिक हैं, नौकर नहीं। स्वामी हैं, सेवक नहीं। स्वाधीन हैं, पराधीन नहीं। जो नौकर है, सेवक है, पराधीन है, वह ईश्वर नहीं हो सकता। जो किसी भी प्रकार के बन्धन में बँधा है, वह ईश्वर नहीं हो सकता। जिनदेव को किसी भी प्रकार का बन्धन नहीं है, वे स्वतन्त्र हैं, इसी लिए ईश्वर हैं।

अनन्त हैं

अनन्त गुणों के धारक होने से "अनन्त" कहलाते हैं। करोड़ रूपये गिनने के लिए विशेष बुद्धिमत्ता चाहिये, मूर्ख नहीं गिन सकता। इसी प्रकार अनन्त गुणों को वही पहिचान कर अपना सकता है कि जिसकी बुद्धिमत्ता अनन्त हो।

भगवान् इसलिए भी अनन्त कहलाते हैं कि वे लोक और अलोक के अनन्त पदार्थों को जानते हैं। उनकी शक्ति अनन्त है और उनका सुख भी अनन्त है।

इस विषय में प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी म० सा० के द्वारा विरचित निम्नलिखित पंक्तियाँ प्रमाणभूत हैः—

अनन्त चारित्र अनन्त शक्तिधर, अनन्त जीव के हितकारी है।
सचित्त अचित्त अनन्त पदारथ, देखे ज्यो दर्पण मझारी है॥
अनन्त जीव प्रतिपालक साहेब, अनन्त वर्गणा निवारी है।
द्रव्य गुण पर्याय सकल में, भिन्न भिन्न करके उच्चारी है॥

इसलिए भी उन्हे अनन्त कहा गया है कि उनकी स्वाधीनता का, उनके ईश्वरत्व का कभी अन्त नहीं आता।

असंग हैं

भगवान कनक (लक्ष्मी या धन) और कामिनी (पत्नी) के संग से रहित हैं। क्रोध, मान, माया और लोभ के संग से रहित हैं। व्यसनों के संग से रहित है, इसीलिए उन्हें 'असंग' कहा गया है।

यह ठीक है कि सोना मिट्टी से ही निकलता है, किन्तु इसीलिए मिट्टी सोने के भाव से खरीदी नहीं जा सकती ! क्योकि वहां सोना मिट्टी से लिपटा है। इसी तरह हमारी आत्मा भी कर्मों से लिपटी है, इसलिए हमे कोई परमात्मा नहीं कहता। परमात्मा तो केवल वे ही कहलाते है कि जो कर्मों के संग से रहित हैं, असंग हैं।

अग्रय हैं

जो असंग हैं, वे ही अग्रय कहलाते हैं। संसारी प्राणी कनक, कान्ता, विषय, कषाय, व्यसन और कर्मों के संग में फँसे हुए हैं, इसलिए जो असंग हैं वे जन-साधारण की अपेक्षा श्रेष्ठ या अग्रगण्य कहलाते हैं।

इसलिए भी परमात्मा को अग्र्य कहा गया है कि वे लोक के अग्रभाग में विराजमान होने के अधिकारी हैं। सिद्ध देव तो वहाँ पहुँच कर विराजमान हो ही गये हैं, किन्तु साकार सर्वज्ञ देवों ने भी वहाँ का रिज़र्वेशन प्राप्त कर लिया है। इसलिए उन्हें भी अग्र्य कहा गया है, क्योंकि उनको उस स्थान पर निश्चित रूप से जाना है।

सार्वीय हैं

अग्र्य वे ही कहला सकते हैं कि जो सार्वीय (सब का कल्याण करने वाले) बनते हैं। भगवान् को शक्रस्तव में "धम्म-सारही" धर्म रूपी रथ को हांकने वाले कहा गया है। वे धर्मरथ में अपने साथ ही अन्य अनेक भव्यजीवों को बैठा कर मोक्षनगर में ले जाते हैं।

एक पत्तन में एक उदार सेठ रहते थे। एक दिन उन्हें विचार आया कि इस पत्तन में आर्थिक-दशा बिगड़ जाने के कारण मेरे बहुत से मानव-बन्धु झोपड़ियों में रहते हैं, रूखी-सूखी खाते हैं, फटे-टूटे कपड़े पहिनते हैं, इसलिए मेरा कर्त्तव्य है कि मैं उनको सहायता पहुँचाऊँ। दूसरे दिन उन्होंने सब को साथ ले कर व्यापार करने के लिए परदेश जाने के विचार से एक आदमी को भेज कर घर-घर सूचना करवा दी कि "जिसे भी व्यापार के लिए सेठजी

के साथ चलना हो, वह तैयार हो जाय—यदि उसके पास पूँजी न होगी तो पूँजी दी जायगी—व्यापार करना न आता होगा तो सिखाया जायगा।"

तीसरे दिन गणिम, धरिम, मेय और परिच्छेद्य-इन चारों प्रकार के पदार्थों से गाड़ियाँ भर कर सैकड़ों मनुष्यों के साथ सेठजी रवाना हुए। रास्ते में एक अटवी आई। रातको वहीं पड़ाव डाला गया। सब लोग निश्चिन्त होकर सो गये, किन्तु सेठजी को जिम्मेदारी के कारण नींद नहीं आई। वे बैठे-बैठे माला फिरा रहे थे कि कुछ दूर से "बचाओ--बचाओ!" की चिल्लाहट सुनाई पड़ी। माला छोड़कर सेठजी उस ओर गये तो देखते हैं कि एक आदमी को पेड़ से बाँध कर कुछ चोर उसे पीट रहे हैं। सेठजी की फटकार सुनकर चोर भाग खड़े हुए।

सेठजी ने उस बँधे हुए आदमी के बंधन खोले-उसके घावों पर मरहमपट्टी की और फिर उसे भी अपने साथियो मे सम्मिलित करके पर-देश में ले गये।

ठीक उसी प्रकार भगवान भी मोक्ष-नगर में अनन्त सुख पाने के लिए जब जाते हैं, तब रास्ते मे संसार रूपी अटवी में राग-द्वेष के बन्धन में फँस कर विषयकषाय की हंटर खाने वाले दुःखी प्राणियों को बचाकर उन्हें अपने साथ ले जाते है। सेठजी जैसे चार प्रकार के द्रव्य साथ ले गये थे, उसी प्रकार भगवान् भी ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप साथ ले जाते है।

भगवान् की "अभयदयाणं, चक्खुदयाणं, मग्गदयाणं" आदि अनेक विशेषणों से स्तुति की गई है। वे जीवों को अभय प्रदान करते हैं, क्यों कि यही सर्वश्रेष्ठ दान कहा गया है:— "दाणाण सेट्ठं अभयप्पयाणं॥" अभय देने के बाद ज्ञानचक्षु

अर्थात् विवेक प्रदान करते हैं। यदि आचरण न हो, तो कोरा विवेक किस काम का ? इसलिए विवेक देने के बाद मार्ग बताते हैं-अर्थात् आचरण सिखाते हैं। यह सब इसलिए करते हैं कि वे सब का कल्याण करने वाले हैं-सार्वीय हैं।

अस्मर हैं

निष्काम हैं—निर्विकार हैं-वासना से अलिप्त हैं। काष्ठ में जैसे अग्नि छिपी रहती है अथवा दियासलाई में जैसे ज्वाला छिपी रहती है, वैसे ही सभी प्राणियों में वासना छिपी रहती है।

सार्वीय अर्थात् सबका कल्याण करने वाला वही बन सकता है जो कामवासना को जीत ले। उसे जीतना बड़ा कठिन है, क्योंकि उसका साम्राज्य बहुत दूर-दूर तक फैला हुआ है।

माण्डलिक राजा का १ देश में, वासुदेव का ३ खण्ड में और चक्रवर्ती का ६ खण्ड में राज्य होता है, किन्तु कामदेव का राज्य तीन लोक मे होता है। देवलोक में कामवासना का परिमाण कम नहीं है। कहते है कि एक-एक रतिक्रीड़ा में इन्द्र को काफी लम्बा समय लग जाता है ? तिर्च्छालोक में पशुपक्षियों के और मनुष्य के काम का परिचय इस दोहे से मिलता है:—

काँकर पाथर जे चुगें, तिन्हें सतावै काम।
सीरा-पूरी खात जे, तिनकी जानें राम॥

कबूतर की जठराग्नि इतनी तीव्र होती है कि वह कंकर को चुग कर भी पचा लेता है—ऐसा सुनते हैं। कहने का आशय यह है कि कंकर जैसी निस्सार वस्तु खाने वाले कबूतर को भी कामवासना सताती रहती है, तब हलुवा-पूरी जैसे सारयुक्त पदार्थों का भक्षण करने वाले मनुष्यों की वासना के विषय मे क्या कहा जाय ? इस विषय में एक दृष्टान्त याद आ रहा है:—

राजगृही नगरी में महाराज श्रेणिक अपनी महारानी चेलना के साथ सानन्द रहते थे। एक दिन महाराज अपने महल की ऊँची मंजिल में रानी के साथ रात को टहल रहे थे कि सहसा उनकी नजर एक मकान पर पड़ी। वहाँ के भीतरी दृश्य को देख कर उनके मुँह से निकल पड़ाः-धिक्कार है इसे।"

ये शब्द सुनते ही महारानी चौंक पड़ी और उसने विनय-पूर्वक पूछाः-"नाथ! यहाँ तो इस समय मेरे सिवाय दूसरा कोई नहीं है। पूछती हूँ कि आपने धिक्कार किसे दिया है? क्या मुझसे कोई भूल हो गई?"

"नहीं प्रिये! तुम जैसी पतिपरायणा सुशीला पत्नी से कभी कोई भूल हो नहीं सकती। मैंने धिक्कार तुम्हें नहीं दिया है। लेकिन किसे दिया है? यह जानना भी व्यर्थ है। हम यहाँ के शासक हैं-अनेक तरह के विचार हमारे मन में आते-जाते रहते हैं; इस-लिए धिक्कार का कारण मत पूछो।" महाराज ने कहा।

किन्तु नारीहठ के आगे उनकी टालमटूल नहीं चल सकी, इस लिए अन्त में उस मकान की ओर इशारा करते हुए महाराज ने कहाः-"वह देखो। वहाँ का दृश्य देखते ही समझ में आ जायगा कि मैंने किसे धिक्कार दिया है।"

महारानी चेलना ने ज्योंही उस ओर नजर डाली त्यों ही उसे समझ में आगया कि महाराज ने कामदेव को धिक्कार दिया है। बात यह थी कि उस मकान में ८०-९० वर्ष के पति-पत्नी का एक जोड़ा रतिक्रीड़ा में लगा था! महाराज श्रेणिक को विचार आया कि जो कामदेव बुढ़ापे में भी मनुष्य को सताता रहता है, उसे धिक्कार का पात्र ही समझना चाहिये।

महाराज ने उस घर का नम्बर नोट कर लिया और दूसरे दिन प्रातःकाल एक चाकर को वहाँ भेज कर बूढ़े और बुढिया को राजदरबार मे बुलवा लिया।

महाराज के पास जाते समय साथ में कोई भेंट ले जाने का उस समय रिवाज था। इसलिए बूढ़े ने जवारी के चार दाने और बुढिया ने थोड़ी-सी राख एक पुड़िया में बाँध कर साथ ले ली। दरबार में पहुँच कर दोनों ने अपनी अपनी भेंट राजा के सामने रख दी।

महाराज श्रेणिक को दी जाने वाली इस तुच्छ भेंट को देख कर उपस्थित सभासदों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वे आपस में गुनगुनाहट और कानाफूसी करने लगे। सभा के कोलाहल को देख कर महाराज ने आगन्तुकों से कहाः—"आपकी इस भेंट में कोई रहस्य मालूम होता है, सो उसे प्रकट करके दर्शकों के आश्चर्य को शान्त कीजिये।"

यद्यपि महाराज इस भेंट के रहस्य को समझ गये थे, फिर भी उन्होंने आगन्तुकों के मुँह से ही खुलवाना ठीक समझा।

बूढ़े ने कहाः—"महाराज! जब तक जवारी खाता रहूँगा; तब तक वासना नहीं छूटेगी।" यही मेरी भेंट का आशय है।"

इसके बाद बूढ़ी ने कहाः—"महाराज! जब तक मेरे इस शरीर की राख नहीं हो जाती, तब तक वासना नहीं छूटेगी।" मेरी भेंट का बस यही रहस्य है।

कथा का आशय यह है कि संसार में प्राणिमात्र का हाल ऐसा ही है, जैसा उन बूढ़े बूढ़ियों को है। शास्त्रकारों ने आहार आदि चार संज्ञाओं मे मैथुन को भी एक संज्ञा माना है। इससे

सिद्ध होता है, कि सभी संसारी जीवों में मैथुन की प्रवृत्ति है-काम-वासना है; जिन्होंने इस काम पर विजय पाई है, वे परमात्मा धन्य है ! इसीलिए तो उनके विशेषणों में "अस्मर" भी एक विशेषण है।

-: अनीश हैं :-

उनका कोई मालिक नहीं है । पहले कहा जा चुका है कि काम का राज्य तीनों लोक में फैला हुआ है, इसलिए काम सबका मालिक है। उस काम को भी जिसने जीत लिया है, उसका मालिक दूसरा कौन हो सकता है ? कोई नहीं। परमात्मा अस्मर हैं-काम-विजेता हैं, इसीलिए अनीश भी हैं ।

शालिभद्रजी का नाम कौन नहीं जानता ! बड़े पुण्यशाली थे वे। उनकी ३२ पत्नियाँ थीं। स्वर्ग से बहुमूल्य भोग सामग्री से भरी हुई ३३ पेटियाँ प्रतिदिन आया करती थीं-उनके लिए। इस विषय में कोई शंका न करनी चाहिये; क्यों कि प्रबल पुण्य के प्रताप से यह सब सम्भव है।

एक बार राजगृह नगरी के शासक महाराज श्रेणिक ने जब शालिभद्रजी की समृद्धि की तारीफ सुनी तो उनसे मिलने की इच्छा से मन्त्री अभयकुमार को साथ लेकर वे शालिभद्रजी के घर आये। वहाँ माता भद्रा ने उनका स्वागत किया और उन्हें अपने भवन की मंजिलें दिखाती हुई चौथी मंजिल में ले गई और वहाँ बिठा दिया। राजा और मन्त्री सुखासन पर बैठे-बैठे उस मंजिल की शोभा निरख रहे थे कि उधर माता छठी मंजिल पर पहुँची और वहाँ से सातवीं मंजिल पर बैठे हुए अपने पुत्र को पुकार कर कहने लगी:—'बेटा ! नीचे आओ। यहाँ के शासक आये हैं।'

ऊपर से आवाज़ आई:—'माँ ! तुम हो ही, फिर मुझसे

पूछने की क्या आवश्यकता है? जो भी वस्तु आई है—सस्ती हो या मँहगी, खरीद कर डाल दो गोदाम में।'

इस बात से माँ ने समझ लिया कि बेटा इतना बड़ा हो गया, किन्तु अब तक अबोध है। व्यावहारिक ज्ञान से सर्वथा शून्य है। फिर जरा समझाते हुए बोली:—'बेटा! वे कोई बेचने-खरीदने की वस्तु नहीं, इस नगरी के राजा हैं, अपने नाथ हैं।'

यह सुन कर माता की आज्ञा का पालन करने के लिए शालिभद्रजी नीचे आए और उन्हें प्रणाम भी किया, किन्तु मन ही मन विचार करने लगे कि मुझ पर भी कोई नाथ है? मेरा भी कोई शासक है? धिक्कार है मुझे! मालूम होता है कि पूर्व जन्म में पुण्य करते समय मैंने कोई कसर रख दी होगी। खैर, अब तो मुझे ऐसा कठोर धर्माराधन करना चाहिये कि अगले जन्म में सचमुच मेरा कोई नाथ न रहे।'

और फिर अपने इन विचारों को उन्होंने साकार बना ही लिया अर्थात् संयम का पालन करके वे अनीश बनने के प्रयत्न में लग गये। भगवान् भी "अनीश" है और वे दूसरों को भी "अनीश" बनने का मार्ग बताया करते है।

—: अनीह हैं :—

इच्छारहित हैं-निर्लोभ हैं। लोभ इतना घातक है कि विशुद्ध संयम का आराधन करते हुए जो साधु ११ वें गुणस्थान तक जा पहुँचता है, उसे भी गिरा कर पहले गुणस्थान में ला पटकता है। सूत्रकार कहते हैं:—

कहो पीइं पणासेइ, माणो विणयणासणो।
माया मित्ताणि नासेइ, लोहो सव्वविणासणो॥

अर्थात् क्रोध प्रेम को, मान विनय को, माया मित्रों को नष्ट करती है; किन्तु लोभ सर्वनाशक है। इस प्रकार चारों कषायों में से प्रत्येक को एक-एक गुण का नाशक बताया है, किन्तु लोभ को सारे गुणों का नाशक बता कर उस को भयंकरता प्रकट की है।

इच्छाओं की पूर्त्ति करते रहने से एक दिन उनका अन्त आ जायगा ऐसा समझना भ्रमपूर्ण है; क्योंकि इच्छा को आकाश के समान अनन्त बताया है:—

"इच्छा हु आगाससमा अणंतिया ॥"

इसलिए इच्छा का अन्त करने का एक ही उपाय है कि उनका त्याग कर दिया जाय। जो इच्छाओं का त्याग करते हैं, वे अनीह कहलाते हैं। अनीश बनने के लिए अनीह बनना जरूरी है।

इद्ध हैं

तेजस्वी हैं। तेज भी दो प्रकार का होता है:-चर्मचक्षु से दिखाई देने वाला और ज्ञानचक्षु से दिखाई देने वाला। तपस्या का तेज चमड़े की आँखों से भी दिखाई देता है, किन्तु केवलज्ञान का तेज केवल ज्ञानी ही समझ सकता है। प्रोफेसर के ज्ञान को प्रोफेसर ही समझ सकता है, गँवार नहीं। आत्मतेज को आत्मज्ञ ही जान सकता है, अन्य नहीं।

हाँ, द्रव्यतेज को—बाह्यतेज को—स्थूलतेज को गँवार भी समझ लेता है। प्रोफेसर का वेश और चेहरा देख कर साधारण आदमी भी पहिचान लेता है कि "ये प्रोफेसर साहब हैं।" परन्तु उनके ज्ञान को वह नही समझ सकता।

किसी मनुष्य के चेहरे पर तेज होता है और किसी के

चेहरे पर नहीं इसका क्या कारण है ? काँच जितना स्वच्छ होगा, प्रतिबिम्ब भी उतना ही साफ आयगा । इसी प्रकार मन जितना शुद्ध होगा, उतना ही चेहरे पर तेज दिखाई देगा ।

भगवान् की आत्मा से कर्मों का मैल दूर हट गया है, इसलिए उनकी तेजस्विता अनुपम है । कहा गया है:—

"चंदेसु निम्मलयरा, आइच्चेसु अहियं पयासयरा ।"

अर्थात् भगवान् चन्द्र से भी अधिक निर्मल हैं और सूर्य से भी अधिक प्रकाशमान् हैं ।

सूर्य और चन्द्र को जब ग्रहण लगता है, तब वे कुछ समय के लिए निस्तेज हो जाते हैं किन्तु भगवान् कभी निस्तेज नहीं होते । उनकी तेजस्विता निरन्तर टिकी रहती है ।

सिद्ध हैं

उनके सारे कार्य सिद्ध हो चुके हैं । इस प्रकार वे कृतकृत्य हैं, इसीलिए सिद्ध कहलाते हैं । संसार में मनुष्य जीवन-भर दौड़-धूप करता रहता है, फिर भी उसके कार्य अधूरे ही रह जाते हैं । सटाने में ११६ वर्ष की उम्र में एक वृद्ध ने शरीर छोड़ा, ऐसा सुनते हैं, तो क्या उसके सारे कार्य पूरे हो गये थे ? नहीं । सभी मनुष्यों का यही हाल है, किन्तु भगवान् ऐसे नहीं हैं वे अपने सारे कार्य पूर्ण कर चुके हैं—सिद्ध बन चुके हैं, इसीलिए वे इद्ध अर्थात् तेजस्वी हैं ।

शिव हैं

पवित्र हैं—रोगरहित हैं—स्वस्थ हैं । कारण से ही कार्य होता है; वेदनीयकर्म के उदय से ही रोग होता है ।

जले हुए चने से अंकुर नहीं निकलता और भुने हुए चने से भी। इसी प्रकार सिद्धदेव ने वेदनीय कर्म को जला दिया है और अरिहंत देव ने उसे भुन दिया है, इसलिए दोनों को रोगांकुर की उत्पत्ति नहीं होती; फिर भी शास्त्रकार कहते है कि भगवान् महावीर को एक बार रोग हुआ था, किन्तु उसे दस आश्चर्यों में (अच्छेरों मे) से एक आश्चर्य माना है। क्यों कि इस घटना को छोड़कर पहले कभी किसी सशरीरी परमात्मा को रोग हुआ है-ऐसा नहीं सुना।

दूसरी बात यह है कि बीमारी प्रायः असंयम और अविवेक से पैदा होती है। परमात्मा पूर्ण संयमी और विवेकी होते हैं, इसलिए कभी बीमारी उनके शरीर में नहीं पहुँचती। जिस कमरे में रात को बल्ब का प्रकाश फैला हो, उसमें अँधेरा कैसे घुसेगा ?

—: शिवकर हैं :—

जो शिव है, वही शिवकर बन सकता है-जो तैराक है,वही दूसरों को तिरा सकता है-जो स्वयं स्वस्थ है, वही दूसरों को नीरोग रहने का मार्ग बता सकता है।

परमात्मा यद्यपि संसार से बहुत ऊँचे (सिद्धशिला अथवा लोकाग्रभाग मे) बिराजते है,फिर भी उनके स्मरण से संकटों मे शांति मिलती हैं। वैज्ञानिकों की दृष्टि से सूर्य सवा नौ करोड़ माइल दूर है, फिर भी उसके उदय होने पर सरोवर के कमल खिल उठते है। यही बात भक्तों के लिए समझनी चाहिए। भगवान् से दूर रह कर भी वे उनके नामस्मरण से सदा प्रसन्न रहते हैं।

भगवान् का स्मरण निरन्तर होना चाहिये; सिर्फ दुःख में ही नहीं, सुख में भी। जैसा कि महात्मा कबीरदास ने कहा है:—

दुख में सुमिरण सब करें, सुख में करें न कोय।
कबिरा जो सुख में करें, दुख काहे को होय?

बुद्धिमत्ता की बात तो यह है कि घर जलने से पहले ही कुआ खोद लिया जाय। दुःख आने से पहले ही नामस्मरण करते रहने के लिए यह एक उदाहरण मात्र है।

साकार परमात्मा का शरीर उत्कृष्ट परमाणुओं से बना होता है, इसलिए जब निर्वाण होने पर उनका शरीर यहीं छूट जाता है, तो उसके परमाणु सारे लोक में फैल जाते हैं। कहते हैं कि वे ही परमाणु भक्तों के शरीर में पैदा होने वाले रोगों का शमन करते हैं। ठीक उसी प्रकार जैसे किसी बाजार के चौराहे पर खड़ा होकर कोई व्यक्ति इत्र का शीशा खोल कर आकाश में इत्र उछाल दे तो उसकी सुगंध के परमाणु दूर-दूर बैठे हुए मनुष्यों की नासिका के निकट पहुंच कर उन्हे सुख पहुँचाते हैं।

इस प्रकार परमात्मा स्वयं शिवरूप होने से शिवकर भी हैं।

—: करणव्यपेत हैं :—

कान, नाक, आँख, जीभ और स्पर्श—इन पाँचों इन्द्रियों से रहित हैं। सिद्धदेव तो अशरीरी होने से करणव्यपेत हैं ही, परन्तु अरिहंत देव इन्द्रियों के रहते हुए भी करणव्यपेत इसलिए कहलाते हैं कि उनकी इन्द्रियाँ काम नहीं आतीं। केवल ज्ञान और केवल दर्शन से वे समस्त पदार्थ जानते—देखते हैं, इसलिए उन्हें इन्द्रियों की पर्वाह नहीं हैं। बड़ी वस्तु किसी के पास हो तो वह छोटी वस्तु की पर्वाह नहीं करता। गाँव की औरतें जिन पीतल के गहनों को पहनती हैं, उनकी सेठानी को पर्वाह नहीं होती, क्योंकि उसके पास

सोने के आभूषण होते हैं। यदि कमरे में बड़ा बल्ब लगा हो तो उसके प्रकाश से सारी वस्तुएँ दिख जाती हैं, इसलिए देखने वाले को वहाँ दीपक की जरूरत नहीं रहती। यदि दीपक हो भी तो वह निरुपयोगी है। इसी प्रकार साकार परमात्मा की इन्द्रियाँ निरुपयोगी हैं, इसीलिए वे भी "करणव्यपेत" कहलाते हैं।

निराकार परमात्मा

अब तक जो विशेषण आये हैं, वे मुख्यतः साकार परमात्मा के लिए और साधारणतः साकार और निराकार दोनों प्रकार के देवों के लिए संगत होते हैं, परन्तु अब कुछ ऐसे विशेषणों का वर्णन किया जाता है कि जो मुख्यरूप से निराकार परमात्मा के विषय में है।

--: सिद्धदेव :--

संस्कृत की "षिधूञ्" धातु से यह शब्द बना है, जिसका अर्थ है—शास्त्र या मंगल। संसारी जीवों के लिए जिनका स्मरण शास्त्र के समान मार्ग-दर्शक है अथवा जो स्मरण करने वालों के लिए मंगलरूप है, वे सिद्ध देव हैं।

प्रसिद्ध होने से भी सिद्ध शब्द का सम्बन्ध मालूम होता है अर्थात् जिनका गुण-समूह भव्य-जीवों मे प्रसिद्ध है, वे सिद्धदेव है।

एक आचार्य ने उनकी स्तुति में लिखा है:—

ध्मातं सितं येन पुराणकर्म
यो वा गतो निर्वृतिसौधमूर्ध्नि।
ख्यातोऽनुशास्ता परिनिष्ठितार्थो
यः सोऽस्तु सिद्धः कृतमङ्गलो मे॥

अर्थात् जिन्होंने प्राचीनकाल से (आत्मा के साथ) बँधे हुए कर्मों को जला कर भस्म कर दिया है (वे सिद्ध हैं) अथवा जो निर्वृत्ति (मुक्ति) रूपी सौध (महल) में जा पहुँचे हैं, जिनके गुण विख्यात हैं, जिन्होंने धार्मिक अनुशासन (नैतिक-नियमों का विधान) किया है और जिनके समस्त प्रयोजन सिद्ध हो चुके हैं, वे सिद्धदेव मेरा मंगल करने वाले हों।

प्राणी हैं

आचार्य कहते हैं कि सिद्धदेव भी प्राणी हैं, क्यों कि उनके भावप्राण होते हैं, भावप्राण चार हैं:—ज्ञानप्राण, दर्शनप्राण, वीर्यप्राण और सुखप्राण।

संसारी जीवों के प्राण दस होते हैं—५ इन्द्रियाँ, ३ बल, १ श्वासोच्छ्वास और १ आयु। इन्हीं दस प्राणों में उपर्युक्त चार भावप्राण समाये हुए हैं। इन्द्रियप्राण में ज्ञान और दर्शन, बल-प्राण में वीर्य तथा श्वासोच्छ्वास और आयु में सुख समाया हुआ है। दस द्रव्यप्राण जहाँ विकृत हैं—नश्वर हैं, वहाँ भावप्राण शुद्ध और शाश्वत हैं। यही दोनों का खास अन्तर है।

सिध्द कैसे बनते हैं ?

माधवमुनिजी नामक एक धुरन्धर विद्वान् साधु हो गये हैं। उन्होंने अपनी सिद्धदेव की स्तुति में लिखा है:—

कर पणट्ठ कम्मट्ठ अट्ठगुण युक्त मुक्त संसार।
पायो पद परमिट्ठ तास पद वन्दूं वारंवार॥

आठ कर्मों को नष्ट करके जो परम विशुद्ध बन जाते हैं, वे सिद्ध पद प्राप्त कर लेते हैं। शास्त्रकार ने कर्मों का दुष्प्रभाव समझाने के लिए आत्मा को उस तुम्बे की उपमा दी है, जिस पर आठ बार मिट्टी का लेप किया गया हो और प्रत्येक लेप के बाद उसे सुखाया गया हो—ऐसा तुम्बा पानी पर तैर नहीं सकता। तुम्बे का स्वभाव तैरने का है, फिर भी मिट्टी के भार से वह जल में डूब जायगा! वैसे ही आठ कर्मों के भार से आत्मा संसार में डूबी हुई इधर से उधर भटक रही है। हाँ, यदि कर्मों की धीरे-धीरे निर्जरा होती जाय तो आत्मा का भार हल्का होता जाय और एकदम स्वच्छ होने पर वह सिद्धशिला तक ऊपर उठ सकती है, ठीक उसी प्रकार जैसे क्रमशः मिट्टी के आठों लेप नष्ट होने पर वह स्वच्छ तुम्बा पानी के ऊपर उठ जाता है और तैरने लगता है।

दूसरा उदाहरण चन्द्रमा का है। चन्द्रमा जैसे सुदि पक्ष में क्रमशः बढ़ता हुआ पूर्णिमा को पूर्ण प्रकाशित हो जाता है, उसी प्रकार विशुद्ध संयम का पालन करते हुए सारे कर्मों का क्रमशः क्षय हो जाने से आत्मा में अनन्तज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त शक्ति और अनन्त सुख की ज्योति जगमगाने लगती है—इसी को आत्मा की सिद्ध अवस्था कहते है।

अब जरा सिद्ध-देव के विशेषणों पर विचार करें कि सिद्ध-देव है कैसे।

—: आठ गुणों वाले हैं :—

आठ कर्मों के नष्ट होने से उनमें आठ गुण पैदा हो गये हैं। वे इस प्रकार हैं:-(१) अनन्त ज्ञान, (२) अनन्त दर्शन, (३) अनन्त क्षायिक सम्यक्त्व, (४) निराबाध सुख, (५) अटल अवगाहना, (६) अमूर्त्तत्व, (७) अगुरुलघुत्व (८) अनन्त वीर्य।

रोग से मुक्त होने पर स्वास्थ्य प्राप्त होता है, अविद्या दूर होने पर विद्वत्ता मिलती है, दरिद्रता हटने पर धनाढ्यता की प्राप्ति होती है; उसी प्रकार आठ कर्मों के नष्ट होने पर उपर्युक्त आठ गुणों की सिद्धि होती है। जिनकी आत्मा में उन आठ गुणों की सिद्धि है, वे सिद्ध कहलाते हैं।

—: अन्य गुण :—

सिद्धदेव के अन्य गुणों का वर्णन करते हुए श्री माधव मुनिजी ने अपनी सिद्धस्तुति में आगे कहा है:—

अज, अविनाशी, अगम, अगोचर, अमल, अचल, अविकार।
अन्तर्यामी, त्रिभुवन स्वामी, अमित शक्ति भण्डार ॥

—: अज हैं :—

जिसका जन्म नहीं होता उसे 'अज' कहते हैं। संसार में सभी प्राणियों का जन्म होता है, किन्तु परमात्मा का जन्म नहीं होता। इसका कारण है—आयुकर्म का विनाश।

जिस घड़ी मे चाबी नहीं दी जाती, वह बन्द हो जाती है, उसी प्रकार आयुकर्म की चाबी छूट जाने से सिद्धदेव के जन्म-मरण की परम्परा बन्द हो गई है।

जन्म देते समय माता को जितनी वेदना होती है, जन्म लेने वाले को उस समय उससे भी करोड़ गुनी वेदना होती है। अँगूठी यदि तंग हो जाय तो उँगली से बाहर निकालते समय उँगली को कितना कष्ट सहना पड़ता है ? इस प्रकार उँगली के कष्ट से (पैदा होने वाले) बच्चे के कष्ट का अनुमान लगाया जा सकता है।

परमात्मा जन्मते समय होने वाली इस भयंकर वेदना से मुक्त हैं, क्योंकि वे जन्म नहीं लेते—"अज" हैं।

अविनाशी हैं

वे कभी नष्ट नहीं होते अर्थात् उनके गुणों का कभी नाश नहीं होता। संसार की भोग-सामग्री नश्वर है-शरीर भी। कहा गया है:—

"पानी का पतासा है त्यूँ तन का तमासा है।"

परमात्मा को शरीर नहीं होता, इसलिए वे अविनाशी हैं।

दूसरी बात ज्ञान की है। मति, श्रुति, अवधि और मनः-पर्याय-ये चारों ज्ञान अशाश्वत हैं-अस्थायी हैं, सिर्फ केवलज्ञान ही शाश्वत और स्थिर है। संसारी जीवों को जब तक केवलज्ञान नहीं हो जाता, तब तक ज्ञान की दृष्टि से वे विनाशी कहलाते हैं। परमात्मा का ज्ञान अविनाशी है, इसलिए वे अविनाशी है।

तीसरी बात उनकी स्थिति के सम्बन्ध में है। जीव चौरासी लाख जीवयोनियों में भ्रमण करता-रहता है, उसकी स्थिति किसी भी योनि में स्थायी नहीं होती-अटल नहीं होती; किन्तु भगवान् जब मोक्ष में पधारे हैं, तब से उनकी स्थिति स्थायी है और स्थायी रहेगी भी। क्योंकि उनकी स्थिति सादि अनन्त मानी गई है। इस दृष्टि से भी वे अविनाशी है।

अगम हैं

उनका वर्णन पूरी तरह से बुद्धि के द्वारा समझा नहीं जा सकता, क्योंकि वह अनुभव की वस्तु है। आत्मा अरूपी है और

उसके आठ रुचक प्रदेश भी। इसलिए उस स्वरूप को जाना नहीं जा सकता। उसे जानना बुद्धि के बस की बात नहीं है।

अगोचर हैं

अर्थात् अदृश्य हैं। आँखों से दिखाई नहीं देते। रूपी वस्तु ही आँखों से दिखाई देती है, सिद्धदेव अरूपी हैं, इसलिए अगोचर हैं।

दूसरी बात यह है कि जो वस्तु निकट हो, वही दिखाई देती है। सिद्धदेव यहाँ से सात राजू से भी ऊँचे हैं—इसलिए वे दिखाई नहीं देते।

अमल हैं

निर्मल हैं। मल से रहित हैं। मैल शरीर पर भी होता है। और मन पर भी। शरीर का मैल दूर करने के लिए मनुष्य स्नान करता है, किन्तु परमात्मा अशरीरी हैं, इसलिए शरीर के मैल से भी सर्वथा रहित हैं। मन का मैल है-संकल्प और विकल्प। इस मैल से भी वे रहित हैं-निर्विकल्प हैं। संसारी जीवों में कर्मों का जो मैल आता है, वह आस्रव के कारण आता है। सिद्धदेव आस्रव-रहित हैं इसलिए अमल हैं।

अचल हैं

स्थिर हैं—आवागमन से रहित हैं। संसार में हम देखते हैं कि सेठ, शिक्षक, न्यायाधीश, साहित्यकार, कवि आदि एक स्थान पर आराम से बैठे-बैठे अपना कार्य करते हैं, किन्तु नौकर, चाकर चपरासी आदि दौड़ धूप करते रहते हैं। जो जितना अधिक भटकता है, वह उतना ही साधारण आदमी समझा जाता है। परमात्मा एकदम अचल हैं, इसलिए सबसे अधिक श्रेष्ठ है।

बहुत-से भक्तों की मान्यता यह है कि भगवान् यहाँ आते हैं, इसीलिए वे संकटों के समय उसे बुलाते रहते हैं। मेरी समझ में भगवान् अशरीरी हैं, इसलिए आ नहीं सकते और यदि आते हैं तो फिर बड़े बड़े महात्माओं ने जो उन्हे "अचल" विशेषण दिया हैं, वह छिन जायगा।

हाँ, यदि भक्तों के बुलाने से भगवान् आते हों तो मै उन्हें रोकूँगा नहीं। मैं तो सिर्फ जैन सिद्धान्त के अनुसार अपने विचार प्रकट कर रहा हूं कि जो शरीर से रहित है-आवागमन से या जन्ममरण से रहित है-अचल हैं- अनन्त सुखो में रमण करते हैं, वे संसार में आ नहीं सकते। महलों में रहने वाला टूटी-फूटी घास-फूस की झोपड़ी में आना और रहना पसन्द करेगा कैसे ?

अविकार हैं

विकार से रहित हैं। क्रोध, मान, माया और लोभ से संसारी जीवों में विकार पैदा होता है। परमात्मा में कषाय का जरासा सूक्ष्म अंश भी नहीं है, इसलिए उनमें विकार की सभावना नहीं है।

अन्तर्यामी हैं

केवलज्ञानी हैं सर्वज्ञ हैं, इसलिए त्रिकाल त्रिलोक की कोई बात ऐसी नहीं है जो उनसे छिपी हो। वे सब कुछ जानते है-घट घट की बातें जानते है, इसलिए उन्हें अन्तर्यामी कहा गया है।

त्रिभुवन स्वामी हैं

त्रिलोक के नाथ है। सबसे बड़े हैं। अरिहंत को आचार्य, उपाध्याय, साधु, सुर, असुर, मनुष्य आदि सभी प्रणाम करते

हैं, क्यों कि वे इन सब से बड़े हैं, किन्तु सिद्ध-देव को अरिहंत भी वन्दन करते हैं। "णायाधम्मकहा" सूत्र में उल्लेख आता है कि दीक्षा लेते समय अरिहंत मल्लीनाथ ने "णमो सिद्धस्स" का उच्चारण करके सिद्धदेव को प्रणाम किया था-इससे सिद्ध होता है कि सिद्ध-देव सबसे बड़े होने के कारण सचमुच त्रिभुवन-स्वामी हैं।

शक्ति-भण्डार हैं

कवि कहता है कि वे अमित अर्थात् अपरिमित या अनन्त शक्ति के भण्डार हैं। उनकी शक्ति कभी नष्ट नहीं होती।

सिद्धदेव का सुख

सिद्धदेवों का सुख अनन्त है। इसलिए उनके सुख का पूरा वर्णन किया नहीं जा सकता। फिर भी शास्त्रकारों ने लिखा है:—

णवि अत्थि माणुसाणं, तं सोक्खं णवि य सव्वदेवाणं।
जं सिद्धाणं सोक्खं, अव्वाबाहं उवगयाणं॥
जं देवाणं सोक्खं, सव्वद्धा पिंडियं अणंतगुणं।
ण य पावइ मुत्तिसुहं, णंताहिं वग्गवग्गूहिं॥

—उववाईसूत्र

अर्थात् मनुष्यों को और सब देवों को वह सुख नहीं है, जो सिद्धों को है; क्योंकि सिद्धों का सुख स्थायी है। सब देवों का जितना सुख है, उसे इकट्ठा करके अनन्तगुना किया जाय और फिर उसे अनन्त बार वर्गाकार किया जाय तो भी मुक्ति-सुख की बराबरी में वह सुख खड़ा नहीं किया जा सकता!

हमारे जैसे क्षणिक सुख का अनुभव करने वाले सिद्ध देव के शाश्वत सुख का वर्णन करने में किस प्रकार असमर्थ हैं-यह एक दृष्टान्त के द्वारा सूत्रकारों ने समझाने का यत्न किया है:—

जह णाम कोई मिच्छो, णगरगुणे बहुविहे वियाणंतो।
ण चएइ परिकहेउं, उवमाए तहं असन्तीए॥

—उववाईसूत्र

एक नगरी में अजितशत्रु नामक राजा राज्य करते थे। एक दिन किसी घोड़े पर बैठ कर घूमने निकले तो रास्ता चूक जाने से एक जंगल में भटकते रहे और फिर थक कर एक पेड़ के नीचे बैठ गये, किन्तु प्यास बड़ी जोरों से लग रही थी। आस-पास कहीं पानी का स्थान दिखाई नहीं दे रहा था। वे परेशानी से इधर-उधर देख रहे थे कि इतने ही में सामने से एक भील आता हुआ दिखाई दिया।

निकट आते ही राजा ने पहला प्रश्न किया:—"भाई! मुझे प्यास लग रही है। यहाँ आस-पास कोई जल का स्थान हो तो बताओ?"

भील की बगल में ही ठंडे पानी की एक सुराही भरी थी, इसलिए उसने तुरन्त वह पानी पिला दिया। इससे राजा को काफी शान्ति का अनुभव हुआ। इसके बाद दोनों ने एक-दूसरे को अपना-अपना परिचय दिया।

राजा सोच हो रहा था कि किस प्रकार उपकार का बदला चुकाऊँ कि सामने ही दो घुड़सवार आकर खड़े हो गये। राजा को पहिचानते देर न लगी कि ये अपने ही सैनिक है, जो मुझे ढूँढते हुए यहाँ आ पहुंचे हैं। उसने सैनिकों मे से एक का घोड़ा माँग लिया और उस पर भील को बिठा दिया; फिर खुद भी अपने घोड़े

पर सवार हो गये। और फिर भील को साथ लेकर राजमहल की ओर चल पड़े। महलों में आकर राजा ने भील के बाल कटवाये, नये वस्त्राभूषण पहनाये और बढ़िया षड्रस भोजन करवाया। एक स्पेशल रूम में ठहराया और पाँचों इन्द्रियों की भोग सामग्री प्रदान की। सेवा में अनेक चाकर नियुक्त कर दिये। इस प्रकार खूब आनन्द से उस भील के दिन कटने लगे।

एक दिन उसे अपने जंगल में रहने वाले बाल-बच्चों की याद आई, इसलिए उसने राजा से छुट्टी माँगी। इस पर पहले तो राजा ने कुछ दिन और रुक जाने का आग्रह किया, किन्तु जब देखा कि उसे जबर्दस्ती रोकने से दुःख होगा तो एक घुड़सवार को साथ देकर उसे उसी के जंगल में छोड़ आने की आज्ञा दे दी।

भील चला आया तो घर के आँगन में खेलने वाले उसके बच्चे उसके पावों से लिपट गये। माता-पिता और उसकी पत्नी ने कुशल पूछते हुए कहा:—"हम सब तुम्हारे वियोग में बड़े व्याकुल हो गये थे! तुम्हें हुआ क्या? तुम कहाँ थे?"

इस पर भील ने कहा:-"मुझे यहाँ के शासक महाराज अजित शत्रु अपने शहर के राजमहल में ले गये थे और वहाँ मुझे बहुत अच्छी तरह रक्खा। बढिया मिठाई, फल, मेवा आदि खाने को मिलते थे। मधुर संगीत सुनने को मिलता था। बहुत आनन्द में रहा मैं वहाँ!"

कुटुम्बियों ने फिर पूछा:-"मिठाई का स्वाद कैसा था? संगीत का स्वर कैसा था? आनन्द कैसा था? थोड़ासा नमूना तो बताओ।"

इस पर वह चुप हो गया। स्वाद, स्वर और आनन्द का नमूना कोई कैसे बताये? हम घी रोज खाते हैं, उसका स्वाद भी

जानते हैं, किन्तु उसका स्वाद कैसा है ? यह कैसे बताया जाय ? कहने का आशय यह है कि भील ने जिन सुखों का अनुभव किया था, उन्हें भी जब वह बता नहीं सका। रोज घी खाया जाता है, फिर भी जब उसका स्वाद नहीं बताया जा सकता तो फिर सिद्धों के शाश्वत सुख का–उस सुख का, जिसका हमने अनुभव तक नहीं किया–वर्णन कैसे किया जा सकता है ?

सिध्दलोक

कर्मों के छूटने पर शरीर भी छूट जाता है तब सिद्ध देव की आत्मा कहाँ जाती है ? ऐसा श्री गौतम स्वामी के द्वारा पूछे जाने पर भगवान् ने फरमाया:—

"अलोए पडिहया सिद्धा, लोयग्गे य पइट्ठिया ॥"

अर्थात् सिद्धदेव अलोकाकाश से प्रतिहत हो (रुक) कर लोक के अग्रभाग मे अवस्थित हो गये हैं। अलोकाकाश मे कोई जीव नहीं जा सकता। क्योकि वहाँ धर्मास्तिकाय नामक द्रव्य नहीं है, जो गति मे सहायक होता है।

नरक, स्वर्ग और मर्त्यलोक में ही मनुष्य सुख-दुःख अर्थात् पाप-पुण्य के फल भोगता है, सिद्धलोक में पुण्य-पाप का सर्वथा क्षय हो जाता है।

दूकान की कमाई मकान मे खाई जाती है–आराम से। मकान में कमाई नहीं–दूकान मे आराम नहीं। दूकान के समान मर्त्यलोक है और मकान स्वर्ग। दूकान पर बेईमानी करने वाला जेल की हवा खाता है, उसी प्रकार मर्त्यलोक में पाप करने वाला नारकीय-यन्त्रणाएँ भोगता है। हाँ, जो निरन्तर तृप्त रहता है, उसे न कमाई की जरूरत है और न खाने की। सिद्धदेव ऐसे नित्य-तृप्त

हैं, इसलिए वे पुण्य-पाप कमाते नहीं और न भोगते हैं। जो नित्य प्रसन्न रहता है, उसे किसी भोग की इच्छा नहीं होती।

कहा गया है कि सिद्धलोक से आत्मा लौट कर पुनः संसार में नहीं आती। अनादिकाल स अब तक अनन्त जोव सिद्ध हो चुके हैं और वे पुनः लौट कर जब आते नहीं तब नये सिद्धों के लिए जगह कहाँ रहेगी? इस प्रश्न के समाधान में कहना है कि कमरे मे सैंकड़ों लट्टुओं का प्रकाश हो, तो भी जगह नहीं रुकती और न वह अधिक प्रकाश मनुष्य के कार्य में बाधक बनता है। प्रकाश रूपी है, फिर भी जगह नहीं रोक पाता, अरूपी सिद्धों की आत्मा का प्रकाश जगह कैसे रोकेगा? सूत्रकार कहते हैं:—

जत्थ य एगो सिद्धो, तत्थ अणंता भवक्खयविमुक्का।
अण्णोण्णसमोगाढा, पुट्ठा सव्वे य लोगंते॥

—उववाईसूत्र

इसी बात को प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद श्री तिलोकऋषि जी म० ने अपने सिद्धाष्टक में यों प्रकट की है:—

"प्रत्येक एकमेक आप व्याप हो गुणागरं॥"

उपसंहार

अरिहंत और सिद्ध देव के विषय में जितना अधिक कहा जाय, उतना हो थोड़ा मालूम होता है। जो कुछ मैंने अब तक कहा है—मुझे आशा नहीं है कि वह समुद्र में एक बूँद की बराबरी भी कर सकेगा। और फिर अपनी छोटी सी बुद्धि के अनुसार जो कुछ मैं कह पाया हूँ वह भी मेरा अपना नहीं, शास्त्रोद्धारक–

बालब्रह्मचारी--जैनदिवाकर--जैनाचार्य-परमपूज्य-प्रातःस्मरणीय गुरुदेव श्री अमोलकऋषिजी महाराज से पाया हुआ प्रसाद मात्र है ! उन्हीं की कृपा के फलस्वरूप मेरी वाणी को थोड़ी-बहुत गति मिल सकी है, इसलिए उनके उपकार से मैं जीवन--भर उऋण नहीं हो सकता !

जो पिपासु है, सरोवर के निकट जाने पर उसकी प्यास मिटती है; ठीक उसी प्रकार आगम भी एक सरोवर है, जिसमें अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, श्रद्धा निक्षेप, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप नयवाद कर्मवाद, स्याद्वाद, सप्तभंगी आदि अनेक कमल खिले हैं। जो जिज्ञासु आगमरूपी सरोवर के निकट जाता है, उसकी जिज्ञासा शान्त होती ही है, किन्तु जो प्यासा मनुष्य अस्वास्थ्य आदि के कारण सरोवर तक पहुँचने में असमर्थ है, उसके पास कलसे के (कुंभ के) द्वारा पानी पहुँचाया जाता है। यह पुस्तक भी एक ऐसा ही कलसा है, जिसमे देव सम्बन्धी मूलपाठों का जल भरा गया है। जो अर्द्धमागधी भाषा नहीं समझते, उनकी भी जिज्ञासा शान्त हो-इस दृष्टि से इसमें प्रत्येक मूल-पाठ का हिन्दी अर्थ भी दिया गया है। कठिन शब्दों की व्याख्या और पारिभाषिक शब्दों की टिप्पणी भी कहीं-कहीं दे दी गई है।

अन्त में परम-उपकारी प्रसिद्धवक्ता पंडितरत्न उपाध्याय श्री आनन्दऋषिजी महाराज को इस प्रसंग पर श्रद्धापूर्वक याद किये बिना नहीं रह सकता, जिन्होंने अपने बहुत से आवश्यक कार्यों के रहते हुए भी इस पुस्तक का संशोधन करने के लिये समय निकालने की कृपा की।

इसके बाद अपने गुरुभ्राता दूरदर्शी महात्मा मुल्तानऋषि जी महाराज तथा भूतपूर्व प्रवर्त्तिनी परम-विदुषी महासती श्री

सायरकुँवरजी म० की ओर से इस कार्य के लिए मुझे समय-समय पर जो प्रेरणा और प्रोत्साहन मिलता रहा है, उसके लिए इन दोनों को जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी ही मालूम होगी।

भूमिका और संकलन में काव्यतीर्थ साहित्यविशारद पं० श्री शान्तप्रकाशजी "सत्यदास" [बड़ीसादड़ी (मेवाड़) निवासी] का तथा सम्पादन-कार्य में बीकानेर (राजस्थान) के निवासी श्रीमान् पं० घेवरचन्दजी बाँठिया "वीरपुत्र" न्यायतीर्थ-व्याकरण-तीर्थ-सिद्धान्तशास्त्री को काफी अच्छा सहयोग रहा है, जिसे मैं भूल नहीं पा रहा हूँ।

सटाना (नासिक)
२० जुलाई १६५८ ई.

—कल्याणऋषि

श्रीमान् डूँगरवालजी
कुटुम्ब-परिचय
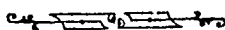
श्रीमान् सेठ छीतरमलजी डूँगरवाल बीजलपुर (जि० खण्डवा) के निवासी हैं। आपके पूर्वज रास (मारवाड़) में रहते थे, किन्तु लग-भग सौ वर्ष पहले व्यापार के लिए वे लोग पैदल-यात्रा करके इधर आ गये। आपके पिताजी श्री मगनलालजी का जन्म यहीं हुआ था। श्रीमान् बच्छ-राजजी आपके दादा थे।

शिक्षण कम होने पर भी आपने वाणिज्य में काफी प्रतिष्ठा पाई है। बचपन से ही कड़ा परिश्रम करके आपने खेती में खूब धन उपार्जित किया है। गोडवाना चौखले के आप प्रमुख श्रावको में से एक है। आपके तीन पुत्र हैं:—गणेशमलजी, रंगलालजी और उदयराजजी। एक पुत्री हैं—सुन्दरबाई, जो पंधाना में परणाई गई हैं। आपकी धर्म-पत्नी हैं—सौ० सुश्राविका श्रीमती धनीबाई जो बड़ी तपस्विनी हैं।

गुण

सुनते है कि संवत १९९१ से आपकी धर्म श्रद्धा बढ़ती रही है, जिसके फलस्वरूप आप बड़ी सावधानी से धार्मिक-नियमों का पालन करते हैं। प्रातःकाल और सायंकाल प्रतिक्रमण के अतिरिक्त प्रतिदिन सामायिक ही नहीं करते, शील का भी पालन करते है। आप धर्म की दलाली

करने में बड़े चतुर हैं। अपने क्षेत्र में सन्तों का चातुर्मास करवाने के लिए आप बड़े उत्सुक रहते हैं। आपका स्वभाव सरल है। हरसूद में जब चौमासा हुआ था, तब आप सन्तो की सेवा करने में तन-मन धन से कभी पीछे नहीं रहे। सत्संग के आप बड़े प्रेमी हैं, इसीलिए हर साल अपने कुटुम्ब के साथ यात्रा करके धर्मोपदेश सुनने का चौमासे के दिनो में लाभ उठाते रहते हैं।

आप बड़े तपस्वी हैं। वेले-तेले तो आपने बहुत-से कर डाले हैं, किन्तु मल्कापुर में एक बार आपने ११ उपवास एक साथ करके अपनी शक्ति का परिचय दिया था। आपकी उम्र ६८ वर्ष की है।

यों तो आप हर साल भिन्न-भिन्न संस्थाओं को आर्थिक सहायता करते ही रहते हैं, किन्तु एक निश्चत रकम धर्म खाते दान करते रहने का आपने नियम ही ले लिया है। इससे आपकी दानवीरता का सहज ही अनुमान लगाय जा सकता है। इस पुस्तक में आर्थिक सहायता भेजने के लिए मैं आपका आभारी हूँ।

गली नं. २
धूलिया (प. खा.)

—कन्हैयालाल छाजेड़
मन्त्री—श्री अमोल जैन ज्ञानालय

श्रीमान् छीतरमलजी डूंगरवाल, बीजलपुर

—: विषय-सूची :—

अरिहन्त देव

(विविध प्रश्नोत्तर)

सिद्ध देव

शुद्धि-पत्र

पुस्तक पढ़ने से पहले कृपया निम्नलिखित अशुद्धियाँ ठीक करलें:—

पृष्ठांक	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	२३	की चि.	कि चि.
६	२	नाम कम	नामकर्म
८	३	प्रायश्चित	प्रायश्चित्त
,,	५	से वाले	वाले
१२	१३	ह गौ.	हे गौ.
१४	१०	महियं	महिमं
१६	४	गिता	गित्ता
१७	७	विचारती	विचरती
,,	६	और	और ८
,,	२४	हष्ट	हृष्ट
१६	१३	विरहंति	विहरंति
,,	१६	करिस्सामो	करिस्साम।
२०	८	अगठ	आठ
२१	७	गांदुतरा	गांदुत्तरा
,,	२१	रूचक	रुचक
२२	१६	सभय	समय
२३	१२	तव	तत्र
२४	६	अलंवुसा	अलंबुसा
२५	१६	पणत्ते	पण्णत्ते
३३	२१	आर.	अरि.
३४	१४	प्रात	प्राप्त
३६	६	शकेन्द्र	शक्रेन्द्र
,,	१७	वस	सव
४१	६	कार्गगरों	कारीगरो
४३	२३	उपर	ऊपर
४८	२१	है	है
,,	२२	असख्यात	असंख्यात
५२	३	चत्तली.	चत्तालो
५३	२३	अव	अत्र
५६	८	घटा	घंटा
,,	१७	बह	वह
,,	२२	इज्जाइ	इज्जाइ
,,	२३	वञ्जिया	वज्जिया
६४	३	सागग्री	सामग्री
,,	५	अनिका.	अनीका.
,,	११	सिद्धार्थदि	सिद्धार्थादि
६५	६	विंह	विहं
७०	२६	सुश्रूषा	शुश्रूषा
७१	१५	तप्पश्चात	तत्पश्चात्
७६	५	आष्टा,	अष्टा.
८४	४	मे	मै
८७	८	—१	(१)
,,	२३	स्त्री	(८) स्त्री
८६	१०	वर्द्धत्ते	वर्द्धते
,,	,,	वर्द्धमान;	वर्द्धमान:
६७	४	लल	लाल
१०१	२	भगवान्	भगवान्
,,	२२	स्वाकार	स्वीकार

पृष्ठांक	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०२	१०	वसिता	वसित्ता
१०३	१७	भविनिं	भाविनि
१०३	१९	दोने	होने
१०४	१८	देना	देना था,
१०४	२०	असर	असुर
११०	१७	राव	रात्र
११२	१२	इमे दस रा०	रा०
११३	१०	वाखी	वाली
११३	१०	पृंष्ट	पृष्ठ
११४	१४	अतिम	अंतिम
११९	२५	प्ररुपित	प्ररूपित
१३०	३	रहीत	रहित
१३०	१२	उतरा०	उत्तरा०
१४४	१६	केशवल	केवल
१४९	२१	समुद्राय	समुदाय
१५१	१७	अथाँत्	अर्थात्
१५१	१९	नईं	नहीं
१५२	६	केसलि०	कोसलि०
१५०	८	देदे	देते
१६०	२६	चावीस	चौवीस
१६३	५	ढाणांग	ठाणांग
१६८	७	शायद्	शायद
१७४	२१	भग—	भगवान्
१७७	५	वेमणिया	वेमाणिया
१८८	१०	पूर्त	पूर्व
९६	१०	महावार	महावीर
१९६	१७	महावार	महावीर
१९६	१७	सर्वदर्शी	सर्वदर्शी
२०३	१०	स्खने	रखने
२२७	१४	चदन	चन्दन
२२८	२०	तानों	तीनो
२२८	२१	के	ने
२२८	२७	वायुकाय	वायुकाय की
२३०	१६	श्रेष्ट	श्रेष्ठ
२३१	३	विपय	विषय
२३१	८	शरीर का	शरीर को
२३२	१२	लोगगम्मि	लोगग्गम्मि
२३२	२२	हध्ययन	अध्ययन
२३८	६	आलोका०	अलोका०
२३९	१५	देखते	देखते हैं
२४१	३	अभि०	आभि०
२४३	२	हृस्व	ह्रस्व
२५९	२	थैसे	जैसे

॥ देव ॥

१—अर्हत्कीर्त्तन
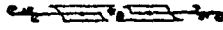
लोगस्स उज्जोयगरे, धम्मतित्थयरे जिणे ।
अरिहंते कित्तइस्सं, चउवीसं पि केवली ॥१॥

उसभमजियं च वंदे, संभवमभिणंदणं च सुमइं च ।
पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वंदे ॥२॥

सुविहिं च पुप्फदंतं, सीयल सिज्जंस वासुपुज्जं च ।
विमलमणंतं च जिणं, धम्मं संतिं च वंदामि ॥३॥

कुंथुं अरं च मल्लिं, वंदे मुणिसुव्वयं नमिजिणं च ।
वंदामि रिट्ठनेमिं, पासं तह वद्धमाणं च ॥४॥

एवं मए अभिथुआ, विहुयरयमला पहीणजरमरणा।
चउवीसं पि जिणवरा, तित्थयरा मे * पसीयंतु ॥५॥
कित्तिय वंदिय महिया, जे ए लोगस्स उत्तमा सिद्धा।
आरुग्गबोहिलाभं, समाहिवरमुत्तमं दितु ॥६॥
चंदेसु निम्मलयरा, आइच्चेसु अहियं पयासयरा।
सागरवरगंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥७॥

—आवश्यक सूत्र

अर्थ—स्वर्गलोक, नरकलोक और मर्त्यलोक अर्थात् उर्ध्व-लोक, अधोलोक और तिर्च्छालोक, इन तीनों लोकों में धर्म का उद्योत करने वाले, धर्म तीर्थ की स्थापना करने वाले और राग-द्वेष रूप अन्तरङ्ग शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाले चौवीस केवलज्ञानी तीर्थङ्करों की मैं स्तुति करूँगा ॥ १ ॥

१ श्री ऋषभदेवजी, २ श्री अजितनाथजी, ३ श्री संभव-नाथजी, ४ श्रीअभिनन्दनजी, ५ श्री सुमतिनाथजी, ६ श्री पद्मप्रभजी, ७ श्री सुपार्श्वनाथजी, ८ श्री चन्द्रप्रभजी, ९ श्री सुविधिनाथजी, (श्री पुष्पदन्तजी), १० श्री शीतलनाथजी, ११ श्री श्रेयांसनाथजी, १२ श्री वासुपूज्यजी, १३ श्री विमलनाथजी, १४ श्री अनन्तनाथजी १५ श्री धर्मनाथजी १६ श्री शान्तिनाथजी १७ श्री कुंथुनाथजी,

* टिप्पणी—भगवान् राग द्वेष रहित हैं, इसलिए वे किसी पर न द्वेष करते हैं और न किसी पर प्रसन्न होते हैं और न किसी को कुछ देते ही हैं परन्तु उनका ध्यान करने से चित्त निर्मल होता है और चित्त शुद्धि द्वारा इच्छित फल की प्राप्ति होती है। जिस तरह की चिन्तामणि रत्न जड़ होते हुए भी उससे मनवांछित फल की प्राप्ति होती है ॥

१८ श्री अरनाथजी, १६ श्री मल्लिनाथजी, २० श्री मुनिसुव्रतस्वामीजी, २१ श्री नमिनाथजी, २२ श्री अरिष्टनेमिजी, (नेमिनाथजी) २३ श्री पार्श्वनाथजी, २४ श्री वर्द्धमानस्वामीजी (महावीरस्वामीजी) । मैं इन चौवीस तीर्थङ्करों की स्तुति करता हूँ और इनको नमस्कार करता हूँ ॥ २-३-४ ॥

उपरोक्त प्रकार से मैंने जिनकी स्तुति की है, जो कर्म-मल से रहित है, जो जरा (बुढापा) और मरण इन दोनों से मुक्त हैं और जो तीर्थ के प्रवर्तक हैं वे चौवीस जिनेश्वर मुझ पर प्रसन्न होवें ॥ ५ ॥

नरेन्द्रो, नागेन्द्रों तथा देवेन्द्रों तक ने जिनका वाणी से कीर्तन किया है, काया से वंदन किया है और मन से भावपूजन किया है, जो सम्पूर्ण लोक मे उत्तम हैं, और जो सिद्धिगति (मोक्ष) को प्राप्त हुए हैं वे भगवान् मुझको मोक्ष प्राप्ति के लिए आरोग्य बोधिलाभ तथा श्रेष्ठ समाधि प्रदान करें अर्थात् समकित की प्राप्ति करावें ॥ ६ ॥

जो चन्द्रमाओ से भी अधिक निर्मल है, सूर्यों से भी विशेष प्रकाशमान है और स्वयम्भूरमण नामक महासमुद्र के समान गम्भीर है, ऐसे सिद्ध भगवान् मुझको सिद्धि (मोक्ष) देवें ॥७॥
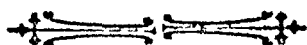
२—तीर्थंकरों के माता-पिता

वर्तमान चौबीसी के तीर्थंकरों के माता-पिताओं के नाम बताते हुए कहा गया है:—

जंबूद्दीवे णं दीवे भारहे वासे इमीसे णं ओसप्पिणीए चउवीसं तित्थयराणं पियरो होत्था। तंजहा—

णाभी य जियसत्तू य, जियारी संवरे इय।
मेहे धरे पइट्ठे य, महासेणे य खत्तिए॥ १॥
सुग्गीवे दढरहे विण्हू, वसुपुज्जे य खत्तिए।
कयवम्मा सीहसेणे, भाणू विस्ससेणे इ य॥२॥
सूरे सुदंसणे कुंभे, सुमित्तविजए समुद्दविजए य।
राया य आससेणे य, सिद्धत्थे च्चिय खत्तिए॥३॥
उदितोदियकुलवंसा, विसुद्धवंसा गुणेहिं उववेया।
तित्थप्पवत्तयाणं, एए पियरो जिणवराणं॥ ४॥

—समवायांग सूत्र

अर्थ—इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र मे इस अवसर्पिणी काल मे चौवीस तीर्थंकर हुए। उनके पिताओं के नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—१ नाभिराजा। २ जितशत्रु। ३ जितारि। ४ संवर। ५ मेघ। ६ धर। ७ प्रतिष्ठ। महासेन। ६ सुग्रीव। १० दृढरथ।

११ विष्णु । १२ वसुपूज्य । १३ कृतवर्मा । १४ सिंहसेन । १५ भानु । १६ विश्वसेन । १७ शूर । १८ सुदर्शन । १९ कुम्भ । २० सुमित्र । २१ विजय । २२ समुद्रविजय । २३ अश्वसेन । २४ सिद्धार्थ ।

उन्नत और विशुद्ध कुल में उत्पन्न राजा के गुणों से युक्त ये उपरोक्त तीर्थ को प्रवर्ताने वाले तीर्थङ्करों के पिता थे ।

जंबूद्दीवे णं दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए चउवीसं तित्थयराणं मायरो होत्था । तंजहा—

मरुदेवी विजया सेणा, सिद्धत्था मंगला सुसीमा य ।
पुहवी लक्खणा रामा, णंदा विण्हू जया सामा ॥१॥
सुजसा सुव्वया अइरा, सिरियादेवी पभावई पउमा ।
वप्पा सिया य वामा, तिसला देवी य जिणमाया ॥२॥

—समवायांग सूत्र समवाय १५७

अर्थ—इस जम्बूद्वीप के इस अवसर्पिणी काल में चौवीस तीर्थङ्कर हुए थे । उनकी माताओं के नाम इस प्रकार थे—१ मरुदेवी । २ विजया । ३ सेना । ४ सिद्धार्था । ५ मङ्गला । ६ सुसीमा । ७ पृथ्वी । ८ लक्षणा । ९ रामा । १० नन्दा । ११ विष्णु १२ जया । १३ श्यामा । १४ सुयशा । १५ सुव्रता । १६ अचिरा । १७ श्री । १८ देवी । १९ प्रभावती । २० पद्मावती । २१ वप्रा । २२ शिवा । २३ वामा । २४ त्रिशलादेवी । ये तीर्थङ्कर भगवान् की माताओं के नाम थे ।

३—तीर्थंकरत्व की प्राप्ति

तीर्थंकर नामकर्म बांधने के बीस कारणों का उल्लेख करते हैं:—

इमेहिं य णं वीसाएहिं य कारणेहिं आसेवियबहुली-कएहिं तित्थयरणामगोयं कम्मं णिव्वत्तिंसु—

अरहंतसिद्धपवयण, गुरुथेर बहुस्सुए तवस्सीसु ।
वच्छलया य तेसिं, अभिक्ख णाणोवओगे य ॥१॥
दंसणविणए आवस्सए, सीलव्वए णिरइयारं ।
खण लव तव च्चियाए, वेयावच्चे समाही य ॥२॥
अपुव्वणाणगहणे, सुयभत्ती पवयणे पभावणया ।
एएहिं कारणेहिं, तित्थयरत्तं लहइ जीवो ॥३॥

—ज्ञाता सूत्र अध्ययन ८

उन्नीसवें तीर्थंकर श्री मल्लिनाथ भगवान् के पूर्वभव के जीव श्री महाबल अनगार ने इन बीस बोलों का एक बार आसेवन करने से तथा बार बार आसेवन करने से तीर्थङ्कर नामगोत्र कर्म का बन्ध किया था। वे बीस बोल इस प्रकार हैं—

(१) घाती कर्मों का नाश किये हुए, इन्द्रादि द्वारा वन्दनीय अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन सम्पन्न अरिहन्त भगवान् के गुणों की

स्तुति एवं विनय भक्ति करने से जीव को तीर्थङ्कर नामकर्म का बन्ध होता है। इसी प्रकार—

(२) सकल कर्मों के नष्ट हो जाने से कृतकृत्य बने हुए, परमसुखी, अनन्त ज्ञान अनन्त दर्शन के धारक, लोकाग्र स्थित सिद्धशिला के ऊपर विराजमान सिद्ध भगवान् की विनयभक्ति एवं गुणग्राम करने से।

(३) सर्वज्ञ भगवान् द्वारा प्ररूपित शास्त्रों का ज्ञान प्रवचन कहलाता है। उपचार से प्रवचन ज्ञान के धारक संघ (साधु साध्वी श्रावक श्राविका) को भी प्रवचन कहते है। विनय भक्ति पूर्वक प्रवचन का ज्ञान सीख कर उसकी आराधना करना, प्रवचन के ज्ञाता की विनय भक्ति करना, उनका गुणोत्कीर्तन करना, तथा उनकी आशातना टालना आदि से।

(४) धर्मोपदेशक गुरु महाराज की बहुमान पूर्वक भक्ति करने से, उनके गुण प्रकाशित करने से एवं आहार वस्त्रादि द्वारा सत्कार करने से।

(५) वयस्थविर, श्रुतस्थविर और दीक्षा पर्याय स्थविर इन तीनो प्रकार के स्थविर महाराज की विनय भक्ति करने से, प्रासुक आहारादि द्वारा सत्कार करने से तथा उनके गुणग्राम करने से।

(६) प्रभूत श्रुतज्ञानधारी मुनि बहुश्रुत कहलाते हैं। बहुश्रुत के तीन भेद है–सूत्र बहुश्रुत, अर्थबहुश्रुत, उभय (सूत्र अर्थ) बहुश्रुत। सूत्र बहुश्रुत की अपेक्षा अर्थबहुश्रुत प्रधान होते है और अर्थबहुश्रुत की अपेक्षा उभय बहुश्रुत प्रधान होते है। इनकी वन्दना नमस्कार रूप भक्ति करने से, उनके गुणों की प्रशंसा करने से, आहारादि द्वारा सत्कार करने से तथा अवर्णवाद और आशातना को टालने से।

(७) अनशन, ऊनोदरी, भिक्षाचर्या, रसपरित्याग, काया-क्लेश और प्रतिसंलीनता ये छह बाह्य तप हैं। प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग ये छह आभ्यन्तर तप हैं। इनका सेवन करने से वाले तपस्वी कहलाते हैं। ऐसे तपस्वियों की विनयभक्ति करने से, उनके गुणों की प्रशंसा करने से, आहारादि द्वारा उनका सत्कार करने से तथा उनका अवर्णवाद और आशातना को टालने से।

(८) ज्ञान में निरन्तर उपयोग रखने से।

(९) निरतिचार शुद्ध सम्यक्त्व को धारण करने से।

(१०) ज्ञान और ज्ञानी का यथायोग्य विनय करने से।

(११) भाव पूर्वक शुद्ध आवश्यक-प्रतिक्रमण आदि कर्तव्यों का पालन करने से।

(१२) निरतिचार शील और व्रत यानी मूलगुण और उत्तरगुणों का पालन करने से।

(१३) सदा संवेग भावना और शुभ ध्यान का सेवन करने से।

(१४) यथाशक्ति बाह्य तप और आभ्यन्तर तप करने से।

(१५) साधु महात्माओं को निर्दोष प्रासुक अशनादि का दान देने से।

(१६) आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, तपस्वी, ग्लान, नव-दीक्षित, धार्मिक, कुल, गण, संघ इनकी भावभक्ति पूर्वक वैयावच्च करने से जीव तीर्थंकर नामकर्म बाँधता है। यह प्रत्येक वैयावच्च (वैयावृत्य) तेरह प्रकार का है—१ आहार लाकर देना, २ पानी

लाकर देना । ३ आसन देना । ४ उपकरण की प्रतिलेखना करना । ५ पैर पूँजना । ६ वस्त्र देना । ७ औषधि देना । ८ मार्ग में सहायता देना । ९ दुष्ट चोर आदि से रक्षा करना । १० उपाश्रय में प्रवेश करते हुए वृद्ध या ग्लान साधु की लकड़ी पकड़ना । ११-१३ उच्चार, प्रस्रवण और श्लेष्म के लिए पात्र देना ।

(१७) गुरु आदि का कार्य सम्पादन करने से एवं उनका मन प्रसन्न रखने से ।

(१८) नवीन ज्ञान का निरन्तर अभ्यास करने से ।

(१९) श्रुत की भक्ति और बहुमान करने से ।

(२०) प्रवचन की प्रभावना करने से ।

इन बीस बोलो की भावपूर्वक आराधना करने से जीव तीर्थंकर नामकर्म बाँधता है ।

४-देवों के प्रकार
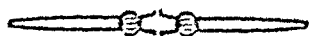
(१) कइविहा णं भंते ! देवा पण्णत्ता ? गोयमा ! पंचविहा देवा पण्णत्ता तंजहा—भवियदव्वदेवा, णरदेवा, धम्मदेवा, देवाहिदेवा, भावदेवा।

(२)से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ भवियदव्वदेवा भविय-दव्वदेवा ? गोयमा ! जे भविए पंचिंदिय तिरिक्खजोणिए वा मणुस्से वा देवेसु उववज्जित्तए। से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ भवियदव्वदेवा भवियदव्वदेवा।

(३)से केणट्ठेणं एवं वुच्चइ णरदेवा णरदेवा ? गोयमा! जे इमे रायाणो चाउरंतचक्कवट्टी उप्पण्ण समत्तचक्क-रयणप्पहाणा णवणिहिपइणो समिद्धकोसा वत्तीसं रायवर-सहस्साणुयातमग्गा सागरवरमेहलाहिवइणो मणुस्सिंदा। से तेणट्ठेणं जाव णरदेवा णरदेवा।

(४) केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ धम्मदेवा धम्मदेवा ? गोयमा ! जे इमे अणगारा भगवंतो ईरियासमिया जाव गुत्तबंभयारी। से तेणट्ठेणं जाव धम्मदेवा धम्मदेवा।

(५)से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ देवाहिदेवा देवाहिदेवा ? गोयमा ! जे इमे अरिहंता भगवंतो उप्पण्णणाण दंसणधरा जाव सव्वदरिसी । से तेणट्ठेणं जाव देवाहिदेवा देवाहिदेवा ।

(६)से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ भावदेवा भावदेवा ? गोयमा ! जे इमे भवणवइवाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया देवा देवगइणामगोयाइं कम्माइं वेदेंति । से तेणट्ठेणं जाव भावदेवा भावदेवा ।

—भगवतीसूत्र श० १२।९

अर्थ-(१) श्री गौतम स्वामी श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से पूछते हैं कि हे भगवन् ! देव कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

उत्तर-श्रमण भगवान् महावीर स्वामी फरमाते है कि हे गौतम ! देव पॉच प्रकार के कहे गये है । वे इस प्रकार है-१ भव्य द्रव्यदेव, २ नरदेव, ४ धर्मदेव, ४ देवाधिदेव और ५ भावदेव ।

(२) प्रश्न—हे भगवन् ! भव्य द्रव्य देव किसे कहते है ?

उत्तर—हे गौतम ! जो आगामी भव मे देव रूप से उत्पन्न होंगे, उन तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रियो को और मनुष्यो को भव्यद्रव्य देव कहते है ।

(३) प्रश्न—हे भगवन् ! नरदेव किसे कहते है ?

उत्तर-हे गौतम ! समस्त रत्नो मे प्रधान चक्ररत्न तथा नवनिधि के स्वामी,समृद्ध कोश वाले,बत्तीस हजार राजाओ से अनुगत, पूर्व, पश्चिम और दक्षिण मे समुद्र पर्यन्त और उत्तर दिशा में

हिमवान् पर्वत पर्यन्त छह खण्ड पृथ्वी के स्वामी, मनुष्यों में इन्द्र के समान चक्रवर्ती को नरदेव कहते हैं।

(४) प्रश्न—भगवन् धर्मदेव किसको कहते हैं?

उत्तर—हे गौतम! श्रुत चारित्र रूप प्रधान धर्म के आराधक, ईर्यासमिति आदि से समन्वित यावत् गुप्त ब्रह्मचारी अनगारसाधु महात्माओं को धर्म देव कहते हैं।

(५) प्रश्न—अहो भगवन् देवाधिदेव किसको कहते है?

उत्तर—हे गौतम! देवों से भी बढ़ कर अतिशय वाले अत एव देवों के भी आराध्य, उत्पन्न केवलज्ञान केवलदर्शन के धारक अरिहन्त भगवन् को देवाधिदेव कहते है।

(६) प्रश्न—भगवन्! भावदेव किसको कहते हैं?

उत्तर—हे गौतम! देव गति, नाम, गोत्र आयु आदि कर्म के उदय से देवभव को धारण किये हुए भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देव को भावदेव कहते है।

५—जन्म-महिमा
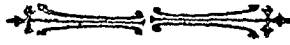
तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म महोत्सव (जन्म कल्याणक) का विस्तृत वर्णन यों हैः—

जया णं एक्कमेक्के चक्कवट्टिविजए भगवंतो अरहंता समुप्पज्जंति तेणं कालेणं तेणं समएणं अहोलोगवत्थव्वाओ अट्ठदिसा कुमारियाओ महत्तरियाओ सएहिं सएहिं कूडेहिं सएहिं सएहिं भवणेहिं सएहिं सएहिं पासायवडिंसएहिं पत्तेयं पत्तेयं चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं चउहिं महत्त-रियाहिं सपरिवाराहिं सत्तहिं अणिएहिं सत्तहिं अणि-याहिवईहिं सोलसएहिं आयरक्खदेवसाहस्सीहिं अण्णेहिं य बहूहिं भवणवइ वाणमंतरेहिं देवेहिं देवीहिं य सद्धिं संप-रिवुडाओ महया हयणट्टगीयवाइय जाव भोयाइं भुञ्जमा-णीओ विहरंति तंजहा—

भोगंकरा भोगवई, सुभोगा भोगमालिणी ।
तोयधारा विचित्ता य, पुप्फमाला अणिंदिया ॥१॥

तए णं तासिं अहोलोगवत्थव्वाणं अट्ठण्हं दिसाकुमारीणं महत्तरियाणं पत्तेयं पत्तेयं आसणाइं चलंति । तएणं ताओ

अहोलोगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारियाओ महत्तरियाओ पत्तेयं पत्तेयं आसणाइं चलियाइं पासंति, पासित्ता ओहिं पउंजंति पउंजित्ता भगवं तित्थयरं ओहिणा आभोएंति, आभोइत्ता अएणमएणं सद्दाविंति, सद्दावित्ता एवं वयासी–उप्पण्णो खलु भो ! जंबूद्दीवे दीवे भगवं तित्थयरे, तं जीयमेयं तीयपच्चुप्पण्णमणागयाणं अहोलोगवत्थव्वाणं अट्ठएहं दिसाकुमारीमहत्तरियाणं भगवओ तित्थयरस्स जम्मणमहिमं करित्तए, तं गच्छामो णं अम्हे वि भगवओ तित्थयरस्स जम्मणमहियं करेमो त्तिकट्टु एवं वयंति, वइत्ता, पत्तेयं पत्तेयं आभिओगिए देवे सद्दाविंति, सद्दावित्ता एवं वयासी–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! अणेग–खंभसयसणिणविट्ठं लीलट्ठियं एवं विमाणवएणओ भणियव्वो, जाव जोयण विच्छिण्णे दिव्वे जाणविमाणे विउव्वह, विउव्वित्ता एणमाणत्तियं पच्चप्पिणह त्ति। तए णं ते आभिओगा देवा अणेगखंभसयसण्णिविट्ठं जाव पच्चप्पिणति। तए णं ताओ अहोलोगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारी-महत्तरियाओ हट्ठतुट्ठाओ पत्तेयं पत्तेयं चउहिं सामाणिय–साहस्सीहिं चउहिं महत्तरियाहिं अएणेहिं जाव वहूहिं देवेहिं देवीहिं य सद्धिं संपरिवुडाओ ते दिव्वे जाण विमाणे दुरूहंति, दुरूहित्ता सव्विड्ढिए सव्वजुईए घण-मुइंग-पवण--वाइयरवेणं ताए उक्किट्ठाए जाव देवगईए जेणेव भगवओ

तित्थयरस्स जम्मणणयरे जेणेव भगवओ तित्थयरस्स भवणे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता, भगवओ तित्थ-यरस्स जम्मण-भवणं तेहिं दिव्वेहिं जाण-विमाणेहिं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेंति, करित्ता उत्तरपुरच्छिमे दिसि-भाए ईसिं चउरंगुलमसंपत्ते धरणीयले ते दिव्वे जाण-विमाणे ठविंति, ठवित्ता पत्तेयं पत्तेयं चउहिं सामाणिय-साहस्सीहिं जाव सद्धिं संपरिवुडाओ दिव्वेहिंतो जाण-विमाणेहिंतो पच्चोरूहंति, पच्चोरूहित्ता सव्विड्ढीए जाव णाइएणं जेणेव भगवं तित्थयरे तित्थयरमाया य तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता भगवं तित्थयरं तित्थयर-मायरं च तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेंति, करित्ता पत्तेयं पत्तेयं करयलपरिग्गहीयं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी–णमोत्थुणं ते रयणकुच्छिधारियाए जगप्पईव-दाईए सव्वजगमंगलस्स चक्खुणो य मुत्तस्स सव्वजग-जीववच्छलस्स हियकारगमग्गदेसियवागिड्ढीविभुपभुस्स जिणस्स णाणिस्स णायगस्स बुहस्स बोहगस्स, सव्व-लोगणाहस्स, णिम्ममस्स, पवरकुलसमुब्भवस्स, जाईए खत्तियस्स, जंसि लोगुत्तमस्स जणणी धण्णासि तं, पुण्णासि कयत्थासि, अम्हे णं देवाणुप्पिए! अहोलोग-वत्थव्वाओ अट्ठ--दिसा--कुमारी--महत्तरियाओ भगवओ तित्थयरस्स जम्मण-महिमं करिस्सामो, तण्णं तुब्भेहिं ण

भीइयव्वं तिकट्टु उत्तरपुरच्छिमं दिसिभागं अवक्कमंति अवक्कमित्ता वेउव्विय-समुग्घाएणं सम्मोहणंति, सम्मोहणित्ता संखिज्जाइं जोयणाइं दंडं णिस्सरंति तंजहा-रयणाणं जाव संवट्टगवाए विउव्वंति, विउव्वित्ता तेणं सिवेणं मउएणं मारुएणं अणुद्धएणं भूमितल-विमलकरणेणं मणहरेणं सव्वोउयसुरहि-कुसुम-गंधाणुवासिएणं पिंडिमणिहारिमेणं गंधुद्धुएणं तिरियं पवाइएणं भगवओ तित्थयरस्स जम्मण-भवणस्स सव्वओ समंता जोयणपरिमंडलं से जहा णामए कम्मगरदारए सिया जाव तहेव जं तत्थ तणं वा पत्तं वा कट्ठं वा कयवरं वा असुइमचोक्खं पूइयं दुब्भिगंधं तं सव्वं आहुणिय आहुणिय एगंते एडिंति, एडित्ता जेणेव भगवं तित्थयरे तित्थयरमाया य तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता भगवओ तित्थयरस्स तित्थयरमायाए य अदूरसामंते आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठंति ॥ १ ॥

अर्थ—जिस समय महाविदेह क्षेत्र के एक एक चक्रवर्ती विजय में और भरत तथा ऐरवत क्षेत्र में तीर्थङ्कर भगवान् उत्पन्न होते है उस समय उनका जन्म महोत्सव किया जाता है। उसका वर्णन इस प्रकार है—

अधोलोक में अर्थात् इस समतल भूमिभाग पर रहे हुए चार गजदन्ताकार पर्वतों से नव सौ योजन नीचे रहने वाली महत्तरिका अर्थात् अपनी जाति मे प्रधान आठ दिशाकुमारियाँ अर्थात् दिशा-कुमार जाति की देवियाँ अपने अपने कूटों में, भवनों में, प्रासादा-

वतंसकों में अर्थात क्रीड़ा करने के स्थानों मे चार २ हजार सामानिक देवों के साथ अपने परिवार सहित चार महत्तरिका कुमारियों के साथ सात अनीक और सात अनीकाधिपति देवों के साथ और दूसरे बहुत से भवनपति और वाणव्यन्तर देव और देवियों के साथ संपरिवृत (घिरी हुई) नाच गान और वादित्रों सहित भोग भोगती हुईं विचारती है। उन आठ दिशाकुमारियों के नाम इस प्रकार है—
१ भोगंकरी, २ भोगवती, ३ सुभागा, ४ भोगमालिनी. ५ तोयधारा, ६ विचित्रा, ७ पुष्पमाला और अनिन्दिता।

जब तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म होता है उस समय उन अधोलोक मे रहने वाली आठ दिशाकुमारियों के आसन चलित होते है। तब वे अवधिज्ञान द्वारा देखती है। देख कर वे परस्पर एक दूसरी को बुलाती है और इस प्रकार कहती है कि–हे देवानुप्रियाओ ! सब द्वीप समुद्रों के मध्यवर्ती इस जम्बूद्वीप मे तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म हुआ है। तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म महोत्सव करना हमारा जीतकल्प है अर्थात् परम्परागत आचारव्यवहार है। अतः हमारे लिए यह उचित है कि हम तिर्च्छालोक में जाकर तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म महोत्सव करे। इस प्रकार परस्पर विचार कर वे अपने-अपने आभियोगिक देवो को बुलाकर उनसे कहती हैं कि–हे देवानुप्रियो ! अनेक स्तम्भो वाले और लीलासहित शालभंजिका–पुतलियो सहित एक योजन चौड़े विमान की विकुर्वणा करो और यह कार्य करके हमे वापिस इसकी सूचना दो। तब वे आभियोगिक देव विमान तैयार करके उनको वापिस सूचना देते है। तब वे दिशाकुमारियाँ हृष्ट तुष्ट होकर अपने उपरोक्त समस्त परिवार के साथ तथा अपनी समस्त ऋद्धि और द्युति के साथ उन विमानों मे बैठती है और मृदङ्ग शुषिर आदि वादित्रों के साथ तीर्थङ्कर भगवान् के जन्मनगर में आती है और तीर्थङ्कर भगवान्

के महल के चारों तरफ तीन बार प्रदक्षिणा देती हैं। फिर ईशान कोण में जाकर भूमि से चार अङ्गुल ऊपर अपने विमानों को रख देती हैं। तत्पश्चात् वे दिशाकुमारियाँ उन विमानों से नीचे उतर कर अपने समस्त परिवार के साथ तीर्थङ्कर भगवान् और तीर्थङ्कर भगवान् की माता के पास आकर तीन बार प्रदक्षिणा करके दोनों हाथ जोड़ कर मस्तक से आवर्तन करती हुई अञ्जलिसहित इस प्रकार कहती है कि हे रत्नकुक्षिधारिके! अर्थात् भगवान् रूप रत्न को अपनी कुक्षि में धारण करने वाली और जगत्प्रदीपजन्मदायी! अर्थात् समस्त जगत् को प्रकाशित करने वाले प्रदीप के समान भगवान् को जन्म देने वाली! क्योंकि समस्त संसार का मंगल करने वाले, ससार के लिए चक्षुरूप, समस्त प्राणियों के हितकारी, मोक्ष मार्ग को बतलाने वाले, समस्त श्रोताजनों के हृदय में वस्तु-तत्त्व को प्रकाशित करने वाली वाणी का कथन करने वाले राग द्वेष को जीतने वाले, विशिष्ट ज्ञान के धारक, धर्म चक्र को प्रवर्ताने वाले समस्त पदार्थों के ज्ञाता, समस्त प्राणियों को धर्म तत्त्व का बोध देने वाले, सम्पूर्ण लोक के नाथ, ममत्वरहित, श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न होने वाले एव जाति से क्षत्रियकुल में जन्म लेने वाले लोको-त्तम पुरुष की आप माता हैं। अतः आप धन्य हैं, आप पुण्यवती हैं, आप कृतार्थ हैं। हे देवानुप्रिये! हम अधोलोक में रहने वाली आठ दिशाकुमारियाँ हैं। हम तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म महोत्सव करेंगी। अतः आप डरें नहीं। इस प्रकार कह कर वे ईशान कोण में जाकर वैक्रिय समुद्घात करती हैं यावत् रत्नों के सूक्ष्म पुद्गलों को ग्रहण करके सख्यात योजन का दण्ड बनाती हैं और संवर्तक वायु की विकुर्वणा करके मृदु, ऊपर को न जाने वाली किन्तु पृथ्वी तल का स्पर्श करने वाली, सब ऋतुओं के फूलों की सुगन्धि से युक्त, तिर्च्छी चलने वाली वायु से तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म

भवन के चारों तरफ एक योजन तक जमीन को साफ करती हैं। उसमें जो कुछ तृण पत्र, काष्ठ कचरा, अशुचि तथा सड़े हुए और दुर्गन्धि युक्त पदार्थ होते हैं उन्हें ले जाकर एकान्त स्थान में डाल देती हैं। फिर वे तीर्थंङ्कर भगवान् और उनकी माता के पास आती हैं। और उनके पास उचित स्थान पर मधुर स्वर में गाती हुई खड़ी रहती हैं। १॥

(दिशाकुमारियों का आगमन)

तेणं कालेणं तेणं समएणं उड्ढलोगवत्थव्वाओ अट्ठ-दिसाकुमारी-महत्तरियाओ सएहिं सएहिं कूडेहिं, सएहिं सएहिं भवणेहिं, सएहिं सएहिं पासायवडिंसएहिं पत्तेयं पत्तेयं चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं, एवं तं चेव पुव्ववण्णियं जाव विरहंति तंजहा-मेहंकरा मेहवई, सुमेहा मेहमालिणी। सुवच्छा वच्छमित्ता य वारिसेणा बलाहगा॥

तएणं तासिं उड्ढलोगवत्थव्वाणं अट्ठण्हं दिसाकुमारी-महत्तरियाणं पत्तेयं पत्तेयं आसणाइं चलंति। एवं तं चेव पुव्ववण्णियं भणियव्वं जाव अम्हे णं देवाणुप्पिए! उड्ढलोग-वत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारी—महत्तरियाओ भग-वओ तित्थयरस्स जम्मण-महिमं करिस्सामो तेणं तुब्भं ण भीइयव्वं त्तिकट्टु उत्तरपुरच्छिमं दिसिभागं अवक्कमंति अवक्कमित्ता जाव अब्भवद्दलए विउव्वंति

 ...यं भद्दरयं पसंतरयं

करेंति, करित्ता खिप्पामेव पच्चुवसमंति, एवं पुप्फवद्दलंसि पुप्फवासं वासंति वासित्ता जाव कालागुरुपवर जाव सुर-वराभिगमणजोग्गं करेंति, करित्ता जेणेव भगवं तित्थयरे तित्थयरमाया य तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता जाव आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठंति ॥२॥

अर्थ—उस काल उस समय मे ऊर्ध्वलोक में रहने वाली आठ दिशाकुमारियाँ पूर्व वर्णन के अनुसार दिव्य भोग भोगती हुई, अपने-अपने महलों मे रहती हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—१ मेघंकरा, २ मेघवती, ३ सुमेघा, ४ मेघमालिनी, ५ सुवत्सा, ६ वत्समित्रा, ७ वारिषेणा, और ८ बलाहका।

जब तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म होता है, तब इन दिशा-कुमारियों के आसन कम्पित होते हैं। फिर वे अवधिज्ञान द्वारा तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म हुआ जानती है। इत्यादि पूर्व वर्णन सारा यहाँ भी कर देना चाहिए। फिर वे तीर्थङ्कर भगवान् की माता के पास आकर कहती है कि हे देवानुप्रिये! ऊर्ध्वलोक में रहने वाली हम आठ दिशाकुमारियाँ तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म-महोत्सव करेंगी। इससे आप डरें नहीं। ऐसा कह कर वे ईशान कोण मे जाकर मेघ की विकुर्वणा करती हैं; फिर उनसे पानी बरसा कर तीर्थङ्कर भगवान् के जन्मस्थान से एक योजन तक समस्त रज को शान्त कर देती है, फिर वे पाँच जाति के फूलों की वृष्टि करती है। तत्पश्चात् कालागुरु, कुंदरुक्क आदि धूपों से एक योजन तक की भूमि को अत्यन्त सुगन्धित गन्धवट्टी के समान बना देती हैं यावत् उस भूमि को देवलोक के इन्द्र और देवो के आने योग्य बना

देती हैं। फिर तीर्थङ्कर भगवान् की माता के पास आकर मधुर स्वर से गाती हुई खड़ी रहती हैं ॥२॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं पुरच्छिमरुयगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारी-महत्तरियाओ सएहिं सएहिं कूडेहिं तहेव जाव विहरंति, तंजहा—

णंदुत्तरा य णंदा य, आणंदा णंदिवद्धणा।
विजया य वेजयंती, जयंती अपराजिया ॥

सेसं तं चेव जाव तुब्भेहिं ण भीइयव्वं त्तिकट्टु भगवओ तित्थयरस्स तित्थयरमायाए य पुरच्छिमेणं आयंस-हत्थगयाओ आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठंति ॥३॥

अर्थ—पूर्व रुचक कूट पर रहने वाली आठ दिशाकुमारी देवियाँ अपने अपने महलों में दिव्य भोग भोगती हुई आनन्द पूर्वक रहती हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—१ नन्दुत्तरा, २ नन्दा, ३ आनन्दा, ४ नन्दिवर्द्धना, ५ विजया, ६ वैजयन्ती, ७ जयन्ती और ८ अपराजिता।

जब तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म होता है, तब इनके आसन चलित होते हैं। फिर वे अवधिज्ञान द्वारा तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म हुआ जान कर अपनी सर्व ऋद्धि और द्युति के साथ एवं अपने समस्त परिवार के साथ तीर्थङ्कर भगवान् की माता के पास आकर इस प्रकार कहती है—हे देवानुप्रिये ! हम पूर्व के रूचक कूट पर रहने वाली आठ दिशाकुमारी देवियाँ हैं। हम तीर्थङ्कर भगवान का जन्म महोत्सव करेंगी। इससे आप डरें नहीं। ऐसा

कह कर तीर्थङ्कर भगवान की माता के पूर्व की तरफ में काच लेकर यथाक्रम मन्द और उच्चस्वर से गाती हुई खड़ी रहती हैं ॥३॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं दाहिणरुयग-वत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारी महत्तरियाओ तहेव जाव विहरंति, तंजहा—

समाहारा सुप्पइण्णा, सुप्पबुद्धा जसोहरा ।
लच्छीमई सेमवई, चित्तगुत्ता वसुंधरा ॥

तहेव जाव तुब्भेहिं ण भीइयव्वं त्तिकट्टु भगवओ तित्थयरस्स तित्थयरमायाए य दाहिणेणं सिंगार हत्थ-गयाओ आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठंति ॥४॥

अर्थ—दक्षिण रुचक पर्वत पर रहने वाली आठ दिशा-कुमारी देवियाँ अपने-अपने महलों में दिव्य भोग भोगती हुई आनन्दपूर्वक रहती हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं:—

१ समाहारा, २ सुप्रदत्ता या सुप्रज्ञा, ३ सुप्रबुद्धा, ४ यशोधरा, ५ लक्ष्मीवती, ६ शेषवती, ७ चित्रगुप्ता और ८ वसुन्धरा।

तीर्थंकर भगवान् के जन्म समय में उनके आसन चलित होते हैं। तब वे अवधिज्ञान द्वारा तीर्थंकर भगवान् का जन्म हुआ जानकर तीर्थंकर भगवान की माता के पास आती हैं। उनको वन्दना नमस्कार करके हाथ में जल से भरे हुए कलश लेकर यथा-क्रम मन्द और उच्च स्वर से गाती हुई खड़ी रहती हैं ॥४॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं पच्चत्थिम-रुयग-वत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारी महत्तरियाओ सएहिं सएहिं जाव विहरंति। तंजहा—

इलादेवी सुरादेवी, पुहवी पउमावई ।
एगणासा णवमिया, भद्दा सीया य अट्ठमा ॥

तहेव जाव तुब्भेहिं, ण भीइयव्वं त्तिकट्टु भगवओ तित्थयरस्स तित्थयरमायाए य पच्चत्थिमेणं तालियंट-हत्थगयाओ आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठंति ॥५॥

अर्थ—पश्चिम दिशा के रूचक पर्वत पर रहने वाली आठ दिशाकुमारी देवियाँ अपने अपने महलों में दिव्य भोग भोगती हुई रहती है। उनके नाम इस प्रकार है—१ इलादेवी, २ सुरादेवी, ३ पृथ्वीदेवी, ४ पद्मावती, ५ एकनासा, ६ नवमिका, ७ भद्रा और ८ सीता।

जब तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म होता है तब इनका आसन चलित होता है। तब वे अवधिज्ञान द्वारा तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म हुआ जान कर उनका जन्म महोत्सव करने के लिए तीर्थङ्कर भगवान् की माता के पास आती हैं और उन्हें वन्दना नमस्कार करके हाथ में पंखा लेकर यथाक्रम मन्द और उच्च स्वर में गाती हुई पश्चिम की तरफ खड़ी रहती है ॥५॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं उत्तरिल्लरुयगवत्थव्वाओ जाव विहरंति, तंजहा—

अलंबुसा मिस्सकेसी, पुंडरीया य वारुणी ।
हासा सव्वप्पभा चेव, सिरी हिरी चेव उत्तरओ ॥

तहेव जाव वंदित्ता भगवओ तित्थयरस्स तित्थयर-

मायाए य उत्तरेणं चामरहत्थगयाओ आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठंति ॥६॥

अर्थ—उत्तरदिशा के रुचक पर्वत पर रहने वाली आठ दिशाकुमारी देवियाँ अपने-अपने महलों में दिव्य भोग भोगती हुई रहती है। उनके नाम इस प्रकार हैं—१ अलंबुसा, २ मिश्रकेशी, ३ पुण्डरीका, ४ वारुणी, ५ हासा, ६ सर्वप्रभा, ७ श्री और ८ ह्री।

तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म समय में अपने अपने आसनों के कम्पित होने पर वे अवधिज्ञान द्वारा तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म हुआ जान कर उनका जन्म महोत्सव करने के लिए तीर्थङ्कर भगवान् की माता के पास आती है और उन्हें वन्दना नमस्कार करके हाथ में चामर लेकर यथाक्रम से गीत गाती हुई उत्तर की तरफ खड़ी रहती हैं ॥६॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं विदिसरुयगवत्थव्वाओ चत्तारि दिसाकुमारी–महत्तरियाओ जाव विहरंति। तंजहा—

चित्ता य चित्तकणगा, सतेरा य सोदामिणी।

तहेव जाव तुब्भेहिं ण भीइयव्वं त्तिकट्टु भगवओ तित्थयरस्स तित्थयरमायाए य चउसु विदिसासु दीविया-हत्थगयाओ आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठंति ॥७॥

अर्थ—उस काल और उसी समय में १ चित्रा, २ चित्र-कनका, ३ शतेरा और ४ सौदामिनी। ये चार महत्तरिका विदिशा-कुमारी देविया (विद्युत्कुमारी देवियाँ) रुचक पर्वत के ऊपर ईशानकोण, आग्नेय कोण, नैऋत्य कोण और वायव्य कोण

इन चार विदिशाओं मे रहती है। अपने अपने आसन कम्पित होने पर ये अवधिज्ञान द्वारा तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म हुआ जानकर उनका जन्म महोत्सव करने के लिए तीर्थङ्कर भगवान् की माता के पास आती हैं और उन्हे वन्दना नमस्कार करके हाथ में दीपक लेकर यथाक्रम मन्द और उच्चस्वर से गाती हुई चारों विदिशाओं मे खड़ी हो जाती है ॥७॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं मज्झिमरुयगवत्थव्वाओ चत्तारि दिसाकुमारी महत्तरियाओ सएहिं सएहिं कूडेहिं तहेव जाव विहरंति। तंजहा—रूआ, रूआसिआ, सुरूआ, रूअगावई। तहेव जाव तुब्मेहिं ण भीइयव्वं त्तिकट्टु भगवओ तित्थयरस्स चउरंगुलवज्जं णाभिणालं कप्पंति, कप्पित्ता विअरगं खणंति, खणित्ता विअरगे णाभिणालं णिहणंति, णिहणित्ता रयणाण य वइराण य पूरेंति, पूरित्ता हरिआलियाए पेढं बंधंति, बंधित्ता तिदिसिं तओ कयलीहरए विउव्वंति। तए णं तेसिं कयलीहरगाणं बहुमज्झदेसभाए तओ चउस्सालए विउव्वंति। तए णं तेसिं चउस्सालगाणं बहुमज्झदेसभाए तओ सीहासणे विउव्वंति। तेसिं सीहासणाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते। सव्वो वण्णओ भणियव्वो।

तएणं ताओ मज्झिमरुयगवत्थव्वाओ चत्तारि दिसाकुमारी महत्तरियाओ जेणेव भगवं तित्थयरे तित्थयरमाया य तेणेव ... च्छित्ता भगवं तित्थयरं क

संपुडेणं गिण्हंति, तित्थयर मायरं च वाहाहिं गिण्हंति गिण्हित्ता जेणेव दाहिणिल्ले कयलीहरए जेणेव चाउस्सालए जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता भगवं तित्थयरं तित्थयरमायरं च सीहासणे णिसीयावेंति, णिसीयावित्ता सयपागसहस्सपागेहिं तिल्लेहिं अब्भंगेंति, अब्भंगित्ता सुरभिणा गंधवट्टएणं उव्वट्टेंति, उव्वट्टित्ता भगवं तित्थयरं करयलपुडेणं तित्थयरमायरं च वाहाहिं गिण्हंति, गिण्हित्ता जेणेव पुरच्छिमिल्ले कयली- हरए जेणेव चाउस्सालए जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता भगवं तित्थयरं तित्थयरमायरं च सीहासणे णिसीयावेंति, णिसीयावित्ता तिहिं उदएहिं मज्जावेंति तंजहा—गंधोदएणं पुप्फोदएणं सुद्धोदएणं। मज्जावित्ता सव्वालंकारविभूसियं करेंति, करित्ता भगवं तित्थयरं करयलपुडेणं तित्थयरमायरं च वाहाहिं गिण्हंति, गिण्हित्ता जेणेव उत्तरिल्ले कयलीहरए जेणेव चाउस्सालए जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता भगवं तित्थ- यरं तित्थयरमायरं च सीहासणे णिसीयावेंति, णिसीया- वित्ता आभिओगे देवे सद्दावेंति, सद्दावित्ता एवं वयासी— खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! चुल्लहिमवंताओ वासहर- पव्वयाओ गोसीसचंदणकट्ठाइं साहरह। तएणं ते आभि- ओगा देवा ताहिं मज्झिमरुयगवत्थव्वाहिं चउहिं दिसा-

कुमारी महत्तरियाहिं एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठा जाव विणएणं वयणं पडिच्छंति, पडिच्छित्ता खिप्पामेव चुल्लहिमवंताओ वासहरपव्वयाओ सरसाइं गोसीसचंदण-कट्ठाइं साहरंति ।

तएणं ताओ मज्झिमरुयगवत्थव्वाओ चत्तारि दिसा-कुमारी महत्तरियाओ सरगं करेंति, करित्ता अरणिं घडेंति, अरणिं घडित्ता, सरएणं अरणिं महिंति, महित्ता अग्गिं पाडेंति, पाडित्ता अग्गिं संधुक्खंति, संधुक्खित्ता गोसीस-चंदणकट्ठे पक्खिविंति, पक्खिवित्ता अग्गिं उज्जालेंति, उज्जालित्ता समिहाकट्ठाइं पक्खिविंति, पक्खिवित्ता अग्गि-होमं करेंति, करित्ता भूइकम्मं करेंति, करित्ता रक्खापोट्ट-लियं बंधंति, बंधित्ता णाणामणिरयणभत्तिचित्ते दुवे पाहाणवट्टगे गहाय भगवओ तित्थयरस्स कण्णमूलम्मि टिट्टियाविंति–भवउ भगवं पव्वयाउए, भवउ भगवं पव्व–याउए । तएणं ताओ मज्झिमरुयगवत्थव्वाओ चत्तारि दिसाकुमारी महत्तरियाओ भयवं तित्थयरं करयलपुडेणं तित्थयरमायरं च बाहाहिं गिण्हंति गिण्हित्ता जेणेव भगवओ तित्थयरस्स जम्मणभवणे तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता तित्थयरमायरं सयणिज्जंसि णिसीयावेंति, णिसीयावित्ता भगवं तित्थयरं माउए पासे ठवेंति, ठवित्ता आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठंति ॥८॥

अर्थ—रूपा, रूपासिका, सुरूपा, और रूपकावती, ये मध्यम रुचक पर्वत पर रहने वाली चार दिशाकुमारियाँ तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म समय में अपने अपने आसनों के कम्पित होने पर अवधिज्ञान द्वारा तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म हुआ जान कर उनका जन्म महोत्सव करने के लिए तीर्थङ्कर भगवान् की माता के पास आती है और कहती हैं कि 'हम तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म महोत्सव करेंगी, इससे आप डरें नहीं।' ऐसा कह कर तीर्थङ्कर भगवान् के नाभिनाल का चार अङ्गुल छोड़ कर छेदन करती है, फिर उसे खड्डे में गाड़ती है और रत्नों से तथा वज्ररत्नों से उस खड्डे को भर देती हैं तथा उस पर हरितालिका की पीठ बाँध देती हैं अर्थात् घास उगा देती है। फिर पूर्व, उत्तर और दक्षिण दिशा में तीन कदलीगृह (केले के घर) बनाती है। और उनके बीच में तीन चौशाल भवन बना कर उनके बीच में तीन सिंहासन बनाती है। सिंहासन का वर्णन जैसा रायप्रश्नीय सूत्र में बताया गया है वैसा यहाँ पर भी कह देना चाहिए।

तत्पश्चात वे दिशाकुमारी देवियाँ तीर्थङ्कर भगवान् की माता के पास आती हैं तीर्थङ्कर भगवान् को हथेली में रख कर तथा तीर्थङ्कर भगवान् की माता को भुजाओं से पकड़ कर दक्षिण दिशा के कदलीगृह के चौशाल भवन में आती हैं और सिंहासन पर बैठाती है। फिर शतपाक और सहस्रपाक तैलों से उनके शरीर का मर्दन करती है फिर महासुगन्धित गन्धद्रव्यों के उबटन से उनके उबटन करती है। वहाँ से उन दोनों को पूर्व दिशा के कदलीगृह के चौशाल भवन में पूर्ववत् लाकर सिंहासन पर बैठाती हैं और गन्धोदक, पुष्पोदक एवं शुद्धोदक इन तीन प्रकार के पानी से उन्हें स्नान कराती है। तत्पश्चात् उन दोनों को उत्तर दिशा के कदलीगृह के चौशाल भवन में पूर्ववत् लाकर सिंहासन पर बैठा कर

स्नान कराती है। फिर वे दिशाकुमारी देवियाँ अपने आभियोगिक (नौकर तुल्य) देवों को बुला कर कहती हैं कि हे देवानुप्रियो! तुम शीघ्र ही चुल्लहिमवान् वर्षधर पर्वत पर जाकर वहाँ से श्रेष्ठ गोशीर्ष चन्दन काष्ठ लाओ। तब वे आभियोगिक देव उनकी आज्ञा को प्रसन्नता से स्वीकार करते हैं और शीघ्र ही चुल्लहिमवान् वर्षधर पर्वत पर जाकर गोशीर्ष चन्दन काष्ठ लाते है। फिर वे देवियाँ अरणि की लकड़ी से अग्नि पैदा करके उसमें गोशीर्ष चन्दन काष्ठ डाल कर अग्नि होम करती हैं। उन चन्दनकाष्ठों की भस्म बना कर रक्षा पोट्टलिका अर्थात् अनिष्टों से रक्षा करने वाली पोटली बाँधती है। तत्पश्चात् अनेक मणिरत्नो की रचना से विचित्र गोल पाषाण लेकर तीर्थङ्कर भगवान के कान के पास मे उन्हें बजाती है यानी "टां-टां" शब्द करवाती है और आशीर्वाद देती है कि तीर्थङ्कर भगवान् पर्वत के समान दीर्घ आयु वाले होवें। फिर वे देवियाँ तीर्थङ्कर भगवान् को हथेली पर रख कर और उनकी माता को भुजाओं से ग्रहण करके तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म भवन मे लाती है। वहाँ तीर्थङ्कर भगवान् की माता को उनके बिछौने पर सुला कर तीर्थङ्कर भगवान् को उनके पास सुला देती है फिर वे मधुर गीत गाती हुई खड़ी रहती हैं ॥८॥

(देवेन्द्र द्वारा वन्दन)

तेणं कालेणं तेणं समएणं सक्के देविंदे देवराया वज्जपाणी पुरंदरे सयंकेऊ सहसक्खे मघवं पागसासणे दाहिणड्ढलोगाहिवई बत्तीसविमाणावाससयसहस्साहिवई एरावणवाहणे सुरिंदे अरयंबरवत्थधरे आलइयमालमउडे णवहेम-

चारुचित्तचंचलकुंडलविलिहिज्जमाणगंडे भासुरबोंदी पलंब-
वणमाले महिड्ढीए महज्जुईए महब्बले महायसे महाणु-
भागे महासोक्खे सोहम्मे कप्पे सोहम्मवडिंसए विमाणे
सभाए सुहम्माए सक्कंसि सीहासणंसि से णं तत्थ बत्तीसाए
विमाणावाससयसाहस्सीणं चउरासीए सामाणियसाहस्सीणं
तेत्तीसाए तायत्तीसगाणं चउण्हं लोगपालाणं अट्ठण्हं अग्ग-
महिसीणं सपरिवाराणं तिण्हं परिसाणं सत्तण्हं अणियाणं
सत्तण्हं अणियाहिवईणं चउण्हं चउरासीणं आयरक्खदेव-
साहस्सीणं अण्णेसिं य बहूणं सोहम्मकप्पवासीणं वेमाणि-
याणं देवाणं य देवीणं य आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं
महत्तरगत्तं आणाईसरसेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे
महयाहयणट्टगीयवाइयतंतीतलताल-तुडिय-घण-मुइंग-पडु-
पडहवाइयरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुञ्जमाणे विहरइ ।

तए णं तस्स सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो आसणं
चलइ । तए णं से सक्के जाव आसणं चलियं पासइ,
पासित्ता ओहिं पउंजइ, पउंजित्ता भगवं तित्थयरं ओहिणा
आभोएइ, आभोइत्ता हट्ठतुट्ठचित्ते आणंदिए पीइमाणे परम-
सोमणस्सिए हरिसवसविसप्पमाणहियए धाराहयकयंब-
कुसुम-चंचुमालइय ऊसवियरोमकूवे वियसिय-वरकमल-
णयणवयणे पचलियवरकडग-तुडिय-केऊर-मउडे कुंडलहार-
विरायंतवच्छे पालंबपलंबमाणघोलंतभूसणधरे ससंभमं

तुरियं चवलं सुरिंदे सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता वेरुलियवरिट्ठरिट्ठ-अंजणणिउणोविय मिसिमिसंत मणिरयणमंडियाओ पाउयाओ ओमुयइ, ओमुइत्ता एगसाडियं उत्तरासंगं करेइ, करित्ता अंजलिमउलियग्गहत्थे तित्थयराभिमुहे सत्तट्ठ-पयाइं अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता वामं जाणुं अंचेइ, अंचित्ता दाहिणं जाणुं धरणीयलंसि साहट्टु तिक्खुत्तो मुद्धाणं धरणीयलंसि णिवेसेइ, णिवेसित्ता ईसिं पच्चुण्ण-मइ, पच्चुण्णमित्ता कडगतुडियथंभियाओ भुयाओ साह-रइ, साहरित्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंज-लिं कट्टु एवं वयासी—णमोत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं, आइगराणं तित्थयराणं सयंसंबुद्धाणं पुरिसुत्तमाणं पुरिस-सीहाणं पुरिसवरपुंडरियाणं पुरिसवरगंधहत्थीणं, लोगुत्त-माणं लोगणाहाणं लोगहियाणं, लोगपईवाणं, लोगपज्जोय-गराणं, अभयदयाणं, चक्खुदयाणं, मग्गदयाणं, सरणदयाणं, जीवदयाणं, बोहिदयाणं, धम्मदयाणं, धम्मदेसयाणं, धम्म-णायगाणं, धम्मसारहीणं, धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टीणं, दीवो-ताणं सरणं गई पइट्ठा अप्पडिहयवरणाणदंसणधराणं वियट्ट-छउमाणं, जिणाणं जावयाणं तिण्णाणं तारयाणं बुद्धाणं बोहियाण मुत्ताणं मोयगाणं, सव्वण्णूणं सव्वदरिसीणं सिव-

...ावाहमपुणरावित्ति . सि

णामधेयं ठाणं संपत्ताणं णमो जिणाणं जिअभयाणं, णमो-त्थुणं भगवओ तित्थयरस्स आइगरस्स जाव संपाविउ-कामस्स, वंदामि णं भगवंतं तत्थगयं इहगए, पासउ मे भगवं तत्थगए इहगयं तिकट्टु वंदइ णमंसइ वंदित्ता णमं-सित्ता सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे ॥६॥

अर्थ—तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म के समय में जब छप्पन दिशाकुमारी देवियाँ अपना अपना कार्य कर चुकती हैं, तब देवों के राजा हाथ में वज्र धारण करने वाले. पुर नामक दैत्य का विनाश करने वाले, कार्तिक सेठ के भव में सौ बार श्रावक की प्रतिमा का आराधन करने वाले, अपने पाँच सौ मन्त्रियों की सलाह लेकर कार्य करने से हजार नेत्रों वाले, पाक नामक दैत्य को शिक्षा देने वाले, मेरु पर्वत से दक्षिण दिशा के अर्द्ध लोक के अधिपति, सौधर्म देवलोक सम्बन्धी बत्तीस लाख विमानों के अधिपति ऐरावत हाथी की सवारी करने वाले, आकाश के समान स्वच्छ निर्मल वस्त्रों के धारण करने वाले, गले में माला और मस्तक पर मुकुट धारण करने वाले, नवीन एवं मनोहर चंचल कुँडलों को धारण करने वाले प्रकाशमान शरीर वाले, लटकती हुई माला को धारण करने वाले, महाऋद्धिमान्, महाद्युतिमान्, महाबलवान्, महायशस्वी, महा-नुभाव, महासुखी शक्र नाम के देवेन्द्र सौधर्मावतंसक विमान में सुधर्मा सभा में अपने सिंहासन पर विराजमान हैं। वे वहाँ पर बत्तीस लाख विमान, चौरासी हजार सामानिक देव, तेतीस त्राय-स्त्रिंशक देव, चार लोक पाल, परिवार सहित आठ अग्रमहिषियाँ, तीन परिषदा, सात अनीक (सेना), सात अनीकाधिपति. तीन लाख छत्तीस हजार आत्मरक्षक देव और दूसरे बहुत से सौधर्म

देवलोक में रहने वाले वैमानिक देव और देवियों का अधिपतिपना, स्वामीपना, अग्रगामीपना, और सेनापतिपना करते हुए अनेक वादित्रों सहित गीत और नृत्यपूर्वक भोग भोगते हुए रहते हैं।

जब तीर्थंकर भगवान् का जन्म होता है तब इनका आसन चलायमान होता है। अपने आसन को चलित देखकर वे अवधिज्ञान का प्रयोग करते है। फिर अवधिज्ञान के द्वारा तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म हुआ जानकर वे बड़े प्रसन्न होते है, आनन्दित होते है, हर्षवश उनका हृदय कमल विकसित हो जाता है, जलधारा के पड़ने से कदम्ब वृक्ष के फूल के समान उनकी समस्त रोमराजि (रोगटे) विकसित हो जाती है, उनके नेत्र और मुख श्रेष्ठ कमल के समान विकसायमान हो जाते हैं यावत् उन्हे अपार हर्ष होता है। तब शक्रेन्द्र अपने सिहासन से नीचे उतर कर विविध प्रकार के मणिरत्नों से जड़ित अपनी पादुका (खड़ाऊ) को खोल देता है और मुख पर वस्त्र का उत्तरासंग करके, मस्तक पर अञ्जलि करके और तीर्थंकर भगवान् की तरफ मुँह करके सात-आठ पैर उनके सामने जाते है। फिर बाएँ गोड़े को खड़ा करके और दाहिने गोड़े को जमीन पर टेक कर शरीर को थोड़ा संकुचित करके एवं भुजाओं को थोड़ी-सी पीछे खींचकर तीन बार भूमि पर मस्तक नमाते हैं। दोनों हाथ जोड़कर मस्तक पर आवर्तन करके इस प्रकार बोलते हैं—"अरिहन्त भगवान् को नमस्कार हो।" वे अरिहन्त भगवान् कैसे है? धर्म की आदि (शुरुआत) करने वाले, धर्म तीर्थ की स्थापना करने वाले, स्वयमेव बोध को प्राप्त करने वाले, पुरुषों मे उत्तम, पुरुषों मे सिंह के समान, पुरुषों में प्रधान पुण्डरीक कमल के समान, पुरुषों मे प्रधान गन्धहस्ती के समान, लोक में उत्तम, लोक के नाथ, लोक के हितकारी, लोक में प्रदीप के समान, लोक मे धर्म का उद्योत करने वाले, अभयदान के दाता,

ज्ञान रूप चक्षु के दाता, मोक्षमार्ग के दाता, भयभीत प्राणियों को शरण देने वाले, संयम रूप जीवितव्य के देने वाले. बोधबीज रूप समकित के देने वाले, धर्म के देने वाले, धर्मोपदेश के देने वाले, धर्म के नायक, धर्म रूप रथ के सारथि, धर्म में प्रधान, चारगति का अन्त करने मे चक्रवर्ती के समान, शरणागत को आधारभूत, केवल ज्ञान केवल दर्शन के धारण करने वाले, छद्मस्थपने से निवृत्त, स्वयं रागद्वेष को जीतने वाले, दूसरों को रागद्वेष जिताने वाले, स्वयं संसार समुद्र को तिरने वाले, दूसरों को संसार समुद्र से तिराने वाले, स्वयं तत्त्वज्ञान को प्राप्त करने वाले, दूसरों को तत्त्वज्ञान प्राप्त कराने वाले, स्वयं आठ कर्मों से मुक्त होने वाले, दूसरों को आठ कर्मों से मुक्त कराने वाले. सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, कल्याणकारी, शाश्वत, रोगरहित, अनन्त, अक्षय, बाधा पीड़ा रहित, पुनरागमन रहित, सिद्धिगति को प्राप्त करने वाले, संसार के सातों भयों को जीतने वाले, रागद्वेष के जीतने वाले, जिन भगवान् को नमस्कार हो। और धर्म की आदि करने वाले यावत् मोक्ष को प्राप्त करने की इच्छा वाले वर्तमान तीर्थङ्कर भगवान् को नमस्कार हो।

फिर शक्रेन्द्र कहते हैं कि इस समय जम्बूद्वीप में रहे हुए तीर्थङ्कर भगवान् को मैं यहां से नमस्कार करता हूं। वहाँ रहे हुए तीर्थङ्कर भगवान् मुझे देखे और मेरी वन्दना स्वीकार करें। ऐसा कह कर शक्रेन्द्र वन्दना नमस्कार करते है वन्दना नमस्कार करके पूर्व की तरफ मुँह करके शक्रेन्द्र अपने आसन पर बैठ जाते हैं ॥६॥

(इन्द्र की घोषणा)

तए णं तस्स सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो अयमेवारूवे जाव संकप्पे समुप्पज्जित्था—उप्पण्णे खलु भो जंबुद्दीवे दीवे भगवं तित्थयरे तं जीयमेयं तीयपच्चुप्पण्णमणागयाणं सक्काणं देविंदाणं देवराईणं तित्थयराणं जम्मणमहिमं करित्तए। तं गच्छामि णं अहं वि भगवओ तित्थयरस्स जम्मणमहिमं करेमि त्तिकट्टु एवं संपेहेइ, संपेहित्ता हरिणेगमेसिं पायत्ताणीयाधिवइं देवं सद्दावेति सद्दावित्ता एवं वयासी खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! सभाए सुहम्माए मेघोघरसियं गंभीरमहुरयरसद्दं जोयणपरिमंडलं सुघोसं सुसरं तिक्खुत्तो उल्लालेमाणे उल्लालेमाणे महया महया सद्देणं उग्घोसेमाणे उग्घोसेमाणे एवं वयाहि—आणवेइ णं भो सक्के देविंदे देवराया, गच्छइ णं भो सक्के देविंदे देवराया जंबुद्दीवे दीवे भगवओ तित्थयरस्स जम्मणमहिमं करित्तए, तं तुब्भे वि णं देवाणुप्पिया!, सव्विड्ढीए सव्वजुईए सव्वबलेणं सव्वसमुदएणं सव्वायरेणं सव्वविभूईए सव्वविभूसाए सव्वसंभमेणं सव्वणाडएहिं सव्वोवरोहेहिं सव्वपुप्फ-गंधमल्लालंकारविभूसाए सव्व-दिव्व-तुडियसद्दसण्णिणाएणं महया इड्ढीए जाव रवेणं णिययपरियालसंपरिवुडा सयाइं सयाइं जाण विमाणवाहणाइं दुरुढा समाणा

अकाल परिहीणं चेव सक्कस्स जाव पाउब्भवह ॥१०॥

अर्थ—उस समय यानी अपने सिंहासन पर बैठने के पश्चात् शक्र देवेन्द्र देवराजा के मन मे ऐसा विचार उत्पन्न होता है कि जम्बूद्वीप मे तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म हुआ है। तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म महोत्सव करना यह भूत भविष्य और वर्तमान काल के शक्र देवेन्द्र देवराजाओं का जीताचार है यानी यह उनकी परम्परागत रीति है। अतः मैं भी जम्बूद्वीप में जाऊँ और तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म महोत्सव करूँ। ऐसा विचार करके शक्रेन्द्र पदाति सेना के स्वामी हरिणगमेषी देव को बुलाते है और बुला कर ऐसा कहते है कि हे देवानुप्रिय! सुधर्मासभा में जाकर मेघ की गर्जना के समान गम्भीर और अतिमधुर शब्द करने वाला तथा जिसकी आवाज एक योजन तक फैलती है उस सुस्वर वाली सुघोष घण्टा को तीन बार बजा कर इस तरह उद्घोषणा करो कि हे देवानुप्रियो! शक्र देवेन्द्र देवराजा आज्ञा देते हैं कि वे स्वयं तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म महोत्सव करने के लिए जम्बूद्वीप मे जाते है। अतः तुम भी अपनी सब ऋद्धि, द्युति, कान्ति और विभूति सहित फूलमाला, गन्ध, अलङ्कार से विभूषित होकर सब नाटक और वादित्रो के शब्दो के साथ अपने अपने परिवार सहित यान विमानों पर बैठ कर शीघ्र ही शक्रेन्द्र के पास उपस्थित होओ ॥१०।

तए णं से हरिणेगमेसी देवे पाइत्ताणाहिवई सक्केणं देविंदेणं देवरण्णा एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठ जाव एवं देवो त्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता सक्कस्स देविंदस्स देवरायस्स अंतियाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्ख-

मित्ता जेणेव सभाए सुहम्माए मेघोघरसियगंभीरमहुरयर-सद्दा जोयणपरिमंडला सुघोसा घंटा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मेघोघरसियगंभीरमहुरयरसद्दं जोयणपरिमंडलं सुघोसं घंटं तिक्खुत्तो उल्लालेइ। तए णं तीसे मेघोघ-रसियगंभीरमहुरयरसद्दाए जोयण परिमंडलाए सुघोसाए घंटाए तिक्खुत्तो उल्लालियाए समाणीए सोहम्मे कप्पे अण्णेहिं एगूणेहिं बत्तीसविमाणावाससयसहस्सेहिं अण्णाइं एगूणाइं बत्तीसघंटासयसहस्साइं जमगसमगं कणकणारावं काउं पयत्ताइं हुत्था। तए णं सोहम्मे कप्पे पासायविमाण-णिक्खुडावडियसद्दसमुट्ठिय घंटा पडिसुया सयसहस्ससंकुले जाए यावि होत्था ॥११॥

अर्थ—इसके बाद पदाति (पैदल) सेना का स्वामी वह हरिणगमेषी देव शक्रेन्द्र की उपरोक्त आज्ञा को सुन कर हृष्टतुष्ट होता है और विनयपूर्वक उस आज्ञा को स्वीकार करता है। तत्पश्चात् वह हरिणगमेषी देव सुधर्मा सभा मे उस घंटा के पास जाकर मेघ की गर्जना के समान गम्भीर और अति मधुर शब्द करने वाली तथा एक योजन तक शब्द विस्तृत करने वाली उस सुघोषा घण्टा को तीन बार बजाता है। उसको बजाने से सौधर्म देवलोक के दूसरे एक कम बत्तीस लाख विमानों मे रही हुई एक कम बत्तीस लाख घण्टा एक साथ शब्द करती हैं। वह शब्द सौधर्म देवलोक के प्रासाद, विमान और गुफाओ में जाकर टकराता है जिससे उठी हुई प्रतिध्वनि के लाखों शब्दो से सम्पूर्ण सौधर्म देवलोक व्याप्त हो जाता है ॥११॥

तए णं तेसिं सोहम्मकप्पवासीणं बहूणं वेमाणियाणं देवाणं य देवीणं य एगंतरइपसत्तणिच्चपमत्तविसयसुहमुच्छियाणं सुसरघंटारसियविउलबोलतुरियचवलपडिबोहणे कए समाणे घोसणकोऊहलदिण्णकण्ण एगग्गचित्तउवउत्तमाणसाणं से पायत्ताणाहिवई देवे तंसि घंटारवंसि णिसंतपडिसंतंसि समाणंसि तत्थ तत्थ तहिं तहिं देसे महया महया सद्देणं उग्घोसेमाणे उग्घोसेमाणे एवं वयासी—हंत ! सुणंतु भवंतो बहवे सोहम्मकप्पवासी वेमाणिया देवा य देवीओ य सोहम्मकप्पवइणो इणमो वयणं हियसुहत्थं, आणवेइ णं भो सक्के तं चेव जाव पाउब्भवह ॥ १२ ॥

अर्थ—सौधर्म देवलोक में रहने वाले बहुत से देव और देवियाँ रति क्रीड़ा में अत्यन्त आसक्त होते हैं और विषय सुख में अत्यन्त मूर्च्छित होते हैं। उस मधुर शब्द करने वाली सुघोषा घण्टा की आवाज से सावधान बन कर उद्घोषणा को सुनने के लिए अपने कान उधर लगाते हैं और चित्त को एकाग्र करके उधर ध्यान लगाते हैं। तब उस सुघोषा घण्टा की आवाज शान्त हो जाने पर पदाति सेना का अधिपति वह हरिणगमेषी देव बड़े जोर जोर से उद्घोषणा करता हुआ इस प्रकार कहता है कि—हे सौधर्म देवलोक में रहने वाले वैमानिक देव और देवियो ! आप सब लोग सौधर्म देवलोक के स्वामी शक्रेन्द्र के इन हितकारी एवं कल्याणकारी और सुखकारी वचनों को सुनो। शक्रेन्द्र यह आज्ञा देते हैं कि—मैं तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म महोत्सव करने के लिए

जम्बूद्वीप में जाता हूँ। अतः तुम भी सभी लोग अपनी-अपनी सर्व ऋद्धि से युक्त होकर मेरे पास आओ ॥१२॥

तए णं ते देवा य देवीओ य एयमट्ठं सोच्चा हट्ठतुट्ठ जाव हियया अप्पेगइया वंदणवत्तियं एवं पूयणवत्तियं सक्कारवत्तियं सम्माणवत्तियं दंसणवत्तियं कोऊहलवत्तियं जिणभत्तिरागेणं, अप्पेगइया सक्कस्स वयणमणुवट्टमाणा अप्पेगइया अण्णमण्णमणुवट्टमाणा अप्पेगइया जीयमेयं एवमाइ त्तिकट्टु जाव पाउब्भवंति ॥१३॥

अर्थ—हरिणगमेषी देव द्वारा की गई उपरोक्त उद्घोषणा को सुन कर सौधर्म विमानवासी देव और देवियाँ अत्यन्त प्रसन्न होते है। उनके हृदय हर्ष से विकसित हो जाते है। तब उनमें से कितनेक तीर्थङ्कर भगवान् को वन्दना करने के लिए और कितनेक पूजा सत्कार, सम्मान एवं दर्शन के लिए, कितनेक कुतूहल के लिए यानी 'वहाँ जाकर शक्रेन्द्र क्या करेंगे' यह देखने के लिए, कितनेक शक्रेन्द्र की आज्ञा का पालन करने के लिए, कितनेक एक दूसरे के अनुवर्ती बने हुए और कितनेक "यह हमारा जीताचार है अर्थात तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म महोत्सव में शामिल होना यह सम्यग्दृष्टि देवों का कर्त्तव्य है, यह उनकी परम्परागत रीति है" ऐसा मान कर शक्रेन्द्र के सन्मुख उपस्थित होते है ॥१३॥

(दिव्यविमान का निर्माण)

तए णं से सक्के देविंदे देवराया ते विमाणिए देवे य देवीओ य अकालपरिहीणं चेव अंतियं पाउब्भवमाणे

पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठे पालयं णामं आभिओगियं देवं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! अणेगखंभ-सय-सण्णिविट्ठं लीलट्ठिय-सालभंजिया-कलियं ईहामिय-उसभ-तुरग-णरमगरविहग-वालग-किण्णर-रुरु-सरभचमर-कुंजरवणलय-भत्तिचित्तं खंभुग्गयवइरवेइया-परिगयाभिरामं विज्जाहरजमलजुयलजंतजुत्तं विव अच्ची-सहस्समालिणीयं रूवगसहस्सकलियं भिसमाणं भिब्भि-समाणं चक्खुलोयणलेसं, सुहफासं सस्सिरीयरूवं घंटावलिय-महुरमणहरसरं सुहं कंतं दरिसणिज्जं णिउणोविय मिसि-मिसंत-मणिरयण-घंटिया-जाल-परिक्खित्तं जोयणसय-सहस्स-विच्छिण्णं पंचजोयणसयमुव्विद्धं सिग्घं तुरियं जइणं णिव्वाहि दिव्वं जाणविमाणं विउव्वाहि, विउव्वित्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणाहि ॥१४॥

अर्थ—इसके पश्चात् वह शक्र देवेन्द्र देवराजा उन बहुत से देव और देवियों को शीघ्र ही अपने पास आये हुए देखकर बहुत प्रसन्न होते हैं। फिर पालक नामक आभियोगिक देव को बुलाते हैं। बुलाकर उसे कहते हैं कि हे देवानुप्रिय! अनेक स्तम्भों वाला क्रीड़ा करती हुई पुतलियों सहित, ईहामृग (भेड़िया), वृषभ (बैल), तुरंग (घोड़ा), नर (मनुष्य), मगर (मगरमच्छ) विहग (पक्षी), व्यालक (सर्प), किन्नर (गन्धर्व जाति का देव), रुरु (कृष्ण मृग), शलभ (पतगा), चमर, कुञ्जर (हाथी), वनलता और पद्मलता आदि के चित्रों से चित्रित तथा स्तम्भों पर वज्रमय वेदिका से

चित्रित अतएव सुन्दर विद्याधर देवों के युगल चित्रों से चित्रित हजारों सूर्यों से युक्त, अत्यन्त रूप युक्त, अतिशय प्रकाश युक्त, अवलोकनीय, सुखकारी, स्पर्शवाला, घण्टा की पंक्ति से मनोहर और मधुर स्वर वाला, सुखकारी, कान्तिकारी, दर्शनीय, निपुण कारीगरों द्वारा बनाया हुआ, मणिरत्नों से जडा हुआ, एक लाख योजन विस्तार वाला, पाँच सौ योजन की ऊँचाई वाला और प्रस्तुत कार्य को शीघ्र सम्पादित करने वाला ऐसे दिव्य यान विमान की विकुर्वणा करो। विकुर्वणा करके मुझे मेरी आज्ञा वापिस सौंपो अर्थात इसकी मुझे वापिस सूचना दो ॥१४॥

तए णं से पालए देवे सक्केणं देविंदेणं देवरण्णा एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठे जाव वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणइ, समोहणित्ता तहेव करेइ। तस्स णं दिव्वस्स जाणविमाणस्स तिदिसिं तओ तिसोवाणपडिरूवगा वण्णओ। तेसि णं पडिरूवगाणं पुरओ पत्तेयं पत्तेयं तोरणा वण्णओ जाव पडिरूवा। तस्स णं जाणविमाणस्स अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे, से जहा णामए आलिंग पुक्खरेइ वा जाव दीवियचम्मेइ वा, अणेगसंकुकीलकसहस्सवियए आवड-पच्चावडसेढिपसेढिसुत्थियसोवत्थिय—वद्धमाण—पूसमाणव मच्छंडयमगरडगजारमारफुल्लावली पउमपत्तसागरतरंग-वसंतलयपउमलयभत्तिचित्तेहिं सच्छाएहिं सप्पभेहिं समरी-इएहि सउज्जोएहिं णाणाविहपंचवण्णेहिं मणीहिं उवसोभिए। तेसि णं मणीणं वण्णे गंधे फासे य भणियव्वे जहा रायपसेणइज्जे।

तस्स णं भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए पिच्छाघरमंडवे अणेगखंभसयसण्णिविट्ठे वण्णओ जाव पडिरूवे । तस्स उल्लोए पउमलयभत्तिचित्ते जाव सव्वतवणिज्जमए जाव पडिरूवे । तस्स णं मंडवस्स बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभागंसि महं एगा मणिपेढिया अट्ठ जोयणाइं आयामविक्खंभेणं चत्तारि जोयणाइं बाहल्लेणं सव्वमणि-मई वण्णओ । तीए उवरिं महं एगे विजयदूसए सव्वर-यणामए वण्णओ । तस्स बहुमज्झदेसभाए एगे वइरामए अंकुसे । एत्थ णं महं एगे कुंभिक्के मुत्तादामे । से णं अण्णेहिं तदद्धुच्चत्तप्पमाणमित्तेहिं चउहिं अद्धकुंभिक्केहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते, ते णं दामा तवणिज्जलंबूसगा सुवण्ण-पयरगमंडिया णाणामणिरयणविविहहारद्धहारउवसोभिया समुदया ईसिं अण्णमण्णमसंसत्ता पुव्वाइएहिं वाएहिं मंदं एइज्जमाणा एइज्जमाणा जाव णिव्वुइकरेणं सद्देणं ते पएसे आपूरेमाणा आपूरेमाणा जाव अईव उवसोभेमाणा उवसो-भेमाणा चिट्ठंति ।

तस्स णं सीहासणस्स अवरुत्तरेणं उत्तरेणं उत्तरपुरच्छि-मेणं एत्थ णं सक्कस्स चउरासीए सामाणियसाहस्सीणं चउरासीए भद्दासणसाहस्सीओ पुरच्छिमेणं अट्ठण्हं अग्ग-महिसीणं एवं दाहिणपुरच्छिमेणं अब्भितरपरिसाए दुवाल-सण्हं देवसाहस्सीणं दाहिणेणं मज्झिमाए चउदसण्हं देव-

साहस्सीणं दाहिणपच्चत्थिमेणं बाहिर परिसाए सोलसण्हं देवसाहस्सीणं पच्चत्थिमेणं सत्तण्हं अणियाहिवईणं त्ति। तए णं तस्स सीहासणस्स चउद्दिसिं चउण्हं चउरासीणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं एवमाइ विभासियव्वं सूरियाभिगमेणं जाव पच्चप्पिणंति ॥१५॥

अर्थ—तत्पश्चात् वह पालक देव शक्रेन्द्र की उपरोक्त आज्ञा को सुन कर प्रसन्न होता है और वैक्रिय समुद्घात करके दिव्य यान विमान की विकुर्वणा करता है। उस विमान में पूर्व, दक्षिण और उत्तर इन तीन दिशाओ मे तीन सोपान होते हैं और उनके आगे सुन्दर तोरण होते हैं। उस विमान का मध्य भाग बहुत रमणीय होता है और अनेक कीलो के जड़ने से खूब अच्छी तरह तने हुए मृदङ्ग तथा गेंडे के चमड़े के समान समतल होता है। वह आवर्त्त, प्रत्यावर्त्त, श्रेणी, प्रश्रेणी, स्वस्तिक, वर्द्धमान, पुष्यमान, पुष्पावली, पद्मपत्र, सागरतरंग, वसन्तलता, पद्मलता आदि शुभ चित्रों से चित्रित होता है। कान्ति, प्रभा और उद्योत युक्त पाँच वर्णों को मणियो से सुशोभित होता है। उन मणियो का वर्ण गन्ध, रस और स्पर्श आदि का वर्णन राजप्रश्नोय सूत्र के अनुसार जानना चाहिये। उस बहुसमरमणीय भूमिभाग के बीच में अनेक खम्भो से युक्त एक प्रेक्षागृह मण्डप होता है। उस प्रेक्षागृह मण्डप के मध्य मे एक बड़ी मणिपीठिका होती है। वह मणिपीठिका आठ योजन की लम्बी चौड़ी और चार योजन की मोटी होती है एवं मणिनिर्मित होती है उसके ऊपर एक सिंहासन होता है जो दिव्य देव दूष्य वस्त्र से ढका हुआ होता है। वह सिंहासन रत्न निर्मित होता है। उसके मध्य में वज्ररत्नमय एक अंकुश होता है। वहाँ पर एक मोतियो की माला होती है। उसके चारो तरफ उससे आधे

परिणाम वाली अर्द्धकुम्भ के समान चार मुक्तामालाएँ होता हैं। वे मालाएँ सुवर्ण निर्मित प्राकार से वेष्टित और मणियों तथा रत्नों के विचित्र प्रकार के हार, अर्द्धहारों से सुशोभित होती है। पूर्वादि दिशाओं के पवन से मन्द मन्द प्रेरित होती हुई उन मालाओं से चित्त को आनन्दित करने वाला और कानों को प्रिय लगने वाला मधुर शब्द निकलता है।

उस सिंहासन के वायव्यकोण में, उत्तर दिशा में और ईशान कोण में शक्रेन्द्र के चौरासी हजार सामानिक देवों के चौरासी हजार भद्रासन होते है। पूर्व दिशा में आठ अग्रमहिषियों के आठ भद्रासन होते है। इसी प्रकार आग्नेय कोण में आभ्यन्तर परिषदा के बारह हजार देवों के, दक्षिण दिशा में मध्यम परिषदा के चौदह हजार देवों के, नैऋत्य कोण में बाह्य परिषदा के सोलह हजार देवों के और पश्चिम दिशा में सात अनीकाधिपति देवों के सात भद्रासन होते हैं। उनके चारों तरफ चारों दिशाओं में तीन लाख छत्तीस हजार आत्मरक्षक देवों के तीन लाख छत्तीस हजार भद्रासन होते हैं। यान विमान का वर्णन राजप्रश्नीय सूत्र में सूर्याभ देव के प्रकरण में बहुत विस्तार के साथ किया गया है उसी के अनुसार यहाँ भी सारा वर्णन जान लेना चाहिये। इस प्रकार दिव्य यान विमान की विकुर्वणा करके वह पालक देव शक्रेन्द्र को उनकी आज्ञा वापिस सौंपता है अर्थात् वह इस बात की सूचना शक्रेन्द्र को देता है कि मैंने आपकी आज्ञा के अनुसार विक्रिया द्वारा दिव्य यान विमान बना कर तय्यार कर दिया है ॥१६॥

(देवराज का आगमन)

तए णं से सक्के देविंदे देवराया हट्ठतुट्ठहियए दिव्वं जिणिंदाभिगमणजुग्गं सव्वालंकारविभूसियं उत्तरवेउव्वियरूवं विउव्वइ, विउव्वित्ता अट्ठहिं अग्गमहिसीहिं सपरिवाराहि णट्टाणीएणं गंधव्वाणीएणं य सद्धिं तं विमाणं अणुप्पयाहिणी करेमाणे पुव्विल्लेणं तिसोवाणेणं दुरूहइ, दुरूहित्ता जाव सीहासणंसि पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे, एवं चेव सामाणिया वि उत्तरेणं तिसोवाणेणं दुरूहित्ता पत्तेयं पत्तेयं पुव्वण्णत्थेसु भद्दासणेसु णिसीयंति, अवसेसा य देवा देवीओ य दाहिणिल्लेणं तिसोवाणेणं दुरूहित्ता तहेव णिसीयंति ॥ १७ ॥

अर्थ—पालक देव द्वारा दिव्य यान विमान के तय्यार हो जाने की सूचना पाकर शक्रेन्द्र का हृदय बहुत प्रसन्न होता है। तत्पश्चात् शक्रेन्द्र उत्तर विक्रिया द्वारा तीर्थङ्कर भगवान् के सन्मुख जाने योग्य, सब अलङ्कारों से विभूषित उत्तर वैक्रिय रूप बनाते है। फिर अपने परिवार सहित आठ अग्रमहिषियो और नृत्यानीक तथा गन्धर्वानीक अर्थात् नृत्य करने वाले और गायन करने वाले देवो के साथ उस विमान की प्रदक्षिणा करते हुए पूर्व दिशा की तरफ वाली त्रिसोपान से उस विमान पर चढ़ कर पूर्व दिशा की तरफ मुँह करके अपने सिंहासन पर बैठते है। इसी प्रकार सामानिक देव उत्तरदिशा के सोपान से चढ कर और शेष देव एवं देवियाँ दक्षिण दिशा के त्रिसोपान से चढ़ कर अपने-अपने भद्रासन पर बैठते है ॥१७॥

तए णं तस्स सक्कस्स तंसि दुरूढस्स इमे अट्ठट्ठमंगलगा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया। तयाणंतरं च णं पुण्ण-कलसभिंगारं दिव्वा य छत्तपडागा सचामरा य दंसणरइय आलोअदरिसणिज्जा वाउद्धुयविजयवेजयंती य समूसिया गगणतलमणुलिहंती पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया। तया-णंतरं छत्तभिंगार तयाणंतरं च णं वइरामयवट्टलट्ठसंठिय-सुसिलिट्ठपरिघट्ठ सुपइट्ठिए विसिट्ठे अणेगवर पंचवण्णकुडभी-सहस्सपरिमंडियाभिरामे वाउद्धुय-विजयवेजयंतीपडागा छत्ता-इछत्त-कलिए तुंगे गगणतलमणुलिहंतसिहरे जोयणसहस्स-मूसिए महइमहालए महिंदज्झए पुरओ अहाणुपुव्वीए संप-ट्ठिए। तयाणंतरं च णं सरूवणेवत्थपरिअच्छियसुसज्जा सव्वालंकार-विभूसिया पंच अणीया पंच अणीयाहिवइणो जाव संपट्ठिया। तयाणंतरं च णं वहवे आभिओगिया देवा य देवीओ य सएहिं सएहिं रूवेहिं जाव णिओगेहिं सक्कं देविंदं देवरायं पुरओ य मग्गओ य पासओ य अहाणु-पुव्वीए संपट्ठिया। तयाणंतरं च वहवे सोहम्मकप्पवासी देवा य देवीओ य सव्विड्ढीए जाव दुरूढा समाणा मग्गओ य जाव संपट्ठिया॥ १८॥

अर्थ—जब शक्रेन्द्र अपने सिंहासन पर वैठ जाते हैं, तब उनके आगे आठ मङ्गल यथाक्रम से चलते हैं—पूर्णकलश, झारी, दिव्य छत्र, चमर और पताका आदि। इसके वाद उन्नत गगनतल

को स्पर्श करती हुई, आँखों को सुखकारी एवं दर्शनीय. वायु से प्रेरित विजय वैजयन्ती नामक पताकाएँ चलती है। तदनन्तर छत्रसहित कलश चलता है। इसके आगे अनेक प्रकार की पाँच वर्ण वाली अन्य छोटी ध्वजाओं से सुशोभित, वायु से प्रेरित वैजयन्ती नामक पताकाओ से तथा छत्रातिछत्र से युक्त, गगनतल को स्पर्श करने वाली एक हजार योजन की महेन्द्रध्वजा चलती है। इसके बाद अपने योग्य रूप और वेशभूषा से सुसज्जित तथा सब अलङ्कारों से विभूषित पाँच अनीक और पाँच अनीकाधिपति देव चलते है। तत्पश्चात बहुत से देव और देवियाँ अपनी-अपनी ऋद्धि से युक्त होकर दिव्य यान विमानों पर बैठे हुए शक्रेन्द्र के आगे, पीछे एवं आसपास यथायोग्य चलते है ॥१८॥

तए णं से सक्के देविंदे देवराया तेणं पंचाणीयपरिक्खित्तेणं जाव परिवुडे सव्विड्ढीए जाव रवेणं सोहम्मस्स कप्पस्स मज्झंमज्झेणं तं दिव्वं देविड्ढिं जाव उवदंसेमाणे उवदंसेमाणे जेणेव सोहम्मस्स कप्पस्स उत्तरिल्ले णिज्जाणमग्गे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता साहस्सीएहिं विग्गेहिं ओवयमाणे ओवयमाणे ताए उक्किट्ठाए जाव देवगईए वीईवयमाणे वीईवयमाणे तिरियमसंखिज्जाणं दीवसमुद्दाणं मज्झंमज्झेणं जेणेव णंदीसरवरे दीवे जेणेव दाहिणपुरच्छिमिल्ले रइकरगपव्वए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता एवं जा चेव सूरियाभस्स वत्तव्वया णवरं सक्काहिगारो वत्तव्वो जाव तं दिव्वं देविड्ढिं जाव दिव्वं जाणविमाणं पडिसाहरमाणे पडिसाहरमाणे जाव जेणेव भगवओ तित्थयरस्स

जम्मणणयरे जेणेव भगवओ तित्थयरस्स जम्मण भवणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता भगवओ तित्थयरस्स जम्मणभवणं तेणं दिव्वेणं जाणविमाणेणं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता भगवओ तित्थयरस्स जम्मण भवणस्स उत्तरपुरच्छिमे दिसीभाए चउरंगुलमसंपत्ते धरणीयले तं दिव्वं जाणविमाणं ठवइ, ठवित्ता अट्ठहिं अग्गमहिसीहिं दोहिं अणीएहिं गंधव्वाणीएण य णट्टाणीएण य सद्धिं ताओ दिव्वाओ जाणविमाणाओ पुरच्छिमिल्लेणं तिसोवाणपडिरूवएणं पच्चोरुहइ ।

तए णं सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो चउरासीइसामाणियसाहस्सीओ ताओ दिव्वाओ जाणविमाणाओ उत्तरिल्लेणं तिसोवाणपडिरूवएणं पच्चोरुहंति । अवसेसा देवा य देवीओ य ताओ दिव्वाओ जाणविमाणाओ दाहिणिल्लेणं तिसोवाणपडिरूवएणं पच्चोरुहंति ॥ १६ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् पाँच अनीक यावत् चौरासी हजार सामानिक देवों से घिरा हुआ और महेन्द्रध्वजा जिनके आगे चलती है ऐसे शक्रेन्द्र अपनी समस्त ऋद्धि तथा वादित्रों के महान् शब्दों के साथ, सौधर्म देवलोक के बीचोबीच होकर अपनी दिव्य देवऋद्धि का प्रदर्शन करते हुए जहाँ सौधर्म देवलोक का उत्तर दिशा में रास्ता है वहाँ आते है। वहाँ एक लाख योजन का शरीर बना कर उस निर्याण मार्ग से निकल कर तिर्च्छालोक के असंख्यात द्वीप समुद्रों में होते हुए नन्दीश्वर द्वीप से आग्नेय कोण में स्थित

रतिकर पर्वत पर आते हैं। इस प्रकार राजप्रश्नीय सूत्र में सूर्याभ-देव की जैसी वक्तव्यता कही है वैसी यहाँ भी कह देनी चाहिए, किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ शक्रेन्द्र का अधिकार है, इसलिए शक्रेन्द्र का कथन करना चाहिए।

तत्पश्चात् वे शक्रेन्द्र अपनी दिव्य देव ऋद्धि तथा यान विमान का संकोच करके तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म नगर में आते हैं। वहाँ आकर उस दिव्य यान विमान द्वारा तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म भवन की तीन वार प्रदक्षिणा करते हैं। तत्पश्चात् ईशानकोण मे पृथ्वी से चार अङ्गुल ऊपर उस दिव्य यान विमान को रख देते हैं। फिर आठ अग्रमहिषियाँ और गन्धर्वानीक तथा नृत्यानीक इन दो अनीकों के साथ शक्रेन्द्र पूर्व दिशा की सीढी द्वारा उस यान विमान से नीचे उतरते है। फिर शक्रेन्द्र के चौरासी हजार सामानिक देव उत्तर दिशा की सीढी द्वारा और बाकी देव और देवियाँ दक्षिण दिशा की सीढी द्वारा उस दिव्य यान विमान से नीचे उतरते हैं ॥१६॥

(धन्य हो ! रत्नकुक्षिधारिणी को)

तए णं से सक्के देविंदे देवराया चउरासीइ सामाणिय-साहस्सीहि जाव सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्ढीए जाव दुंदुहि-णिग्घोसणारवेणं जेणेव भगवं तित्थयरे तित्थयरमाया य तेणेव उवागच्छइ, ७ [illegible] आलोए चेव पणामं करेइ, करित्ता भगवं [illegible] यरं च तिक्खुत्तो हिणं पयाहिणं [illegible] यल जाव एवं वय णमोत्थुणं ते र [illegible] एवं जहा दि[illegible]

धण्णासि पुण्णासि तं कयत्थासि । अहण्णं देवाणुप्पिए! सक्के णामं देविंदे देवराया भगवओ तित्थयरस्स जम्मण महिमं करिस्सामि तण्णं तुब्भेहिं ण भीइयव्वं त्तिकट्टु ओसोवणिं दलयइ, दलयित्ता तित्थयरपडिरूवगं विउव्वइ, विउव्वित्ता एगे सक्के भगवं तित्थयरं करयलपुडेणं गिण्हइ, एगे सक्के पिट्ठओ आयवत्तं धरेइ, दुवे सक्का उभओ पासिं चामरुक्खेवं करेंति, एगे सक्के पुरओ वज्जपाणी पकड्ढइ । तए णं से सक्के देविंदे देवराया अण्णेहिं बहूहिं भवणवइवाणमंतरजोइसियवेमाणिएहिं देवेहिं देवीहिं य सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्ढीए जाव णाइएणं ताए उक्किट्ठाए जाव वीईवयमाणे वीईवयमाणे जेणेव मंदरे पव्वए जेणेव पंडगवणे जेणेव अभिसेयसिला जेणेव अभिसेयसीहासणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे ॥ २० ॥

अर्थ—तत्पश्चात् वह शक्रेन्द्र चौरासी हजार सामानिक देवों के साथ अपनी सब ऋद्धि और द्युति सहित दुंदुभि के महान् शब्दों के साथ तीर्थङ्कर भगवान् और उनकी माता के पास आते हैं। उन्हें देखते ही शक्रेन्द्र उन्हें प्रणाम करते है और तीन बार प्रदक्षिणा करके दोनों हाथ जोड़ कर इस प्रकार कहते हैं कि हे रत्नकुक्षिधारिके! आपको नमस्कार हो । इत्यादि जैसा दिशाकुमारी देवियों ने कहा था वैसा ही शक्रेन्द्र भी कहते है कि आप धन्य हैं, पुण्यवती हैं, कृतार्थ हैं। हे देवानुप्रिये ! मैं शक्र नामक

देवेन्द्र देवराजा हूँ। मैं तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म महोत्सव करूँगा, इससे आप डरें नहीं। ऐसा कह कर वे उन्हें अवस्वापिनी निद्रा से निद्रित कर देते हैं और तीर्थङ्कर भगवान् के सदृश रूप बना कर उनके पास रख देते हैं। फिर शक्रेन्द्र अपने समान पाँच रूप बनाते हैं। एक शक्र तीर्थङ्कर भगवान् को करतल में यानी हथेली पर उठाता है। एक शक्र पीछे छत्र धारण करता है। दो शक्र दोनों तरफ चमर ढोलते हैं और एक शक्र हाथ में वज्र धारण कर आगे चलता है।

तत्पश्चात् वह शक्रेन्द्र दूसरे बहुत से भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी, और वैमानिक देव एवं देवियो के साथ अपनी सम्पूर्ण ऋद्धि और द्युति सहित उत्कृष्ट दिव्यदेवगति से चलते हुए मेरु पर्वत के पण्डकवन मे अभिषेकशिला पर स्थित अभिषेक सिंहासन के पास आते हैं और उस सिंहासन पर तीर्थङ्कर भगवान् को पूर्वाभिमुख यानी पूर्व दिशा की तरफ मुँह करवा कर बैठाते हैं। २०॥

(मेरू पर्वत पर)

तेणं कालेणं तेणं समएणं ईसाणे देविंदे देवराया सूलपाणी वसभवाहणे सुरिंदे उत्तरड्ढलोगाहिवई अट्ठावीस विमाणवाससयसहस्साहिवई अरयंबरवत्थधरे एवं जहा सक्के, इमं णाणत्तं, महाघोसा घंटा, लहुपरक्कमो पायत्ताणीयाहिवई पुप्फओ विमाणकारी, दक्खिणे णिज्जाणमग्गे, उत्तरपुरच्छिमिल्लो रइकरगपव्वओ मंदरे समोसरइ जाव पज्जुवासइ। एवं अवसिट्ठा वि इंदा भणियव्वा जाव अच्चुओत्ति, इमं णाणत्तं—

चउरासीइ असीइ, बावत्तरी सत्तरी य सट्ठी य ।
पण्णा चत्तलीसा, तीसा वीसा दस सहस्सा ॥
॥ एए सामाणिया ॥

बत्तीसट्ठावीसा बारसट्ट चउरो सयसहस्सा ।
पण्णा चत्तालीसा, छच्च सहस्सारे ॥
आणयपाणयकप्पे, चत्तारिसया आरणच्चुए तिण्णि ।
एए विमाणाणं, इमे जाण विमाणकारी देवा ॥

सोहम्मगाणं सणंकुमारगाणं बंभलोयगाणं महासुक्कयाणं पाणयगाणं इंदाणं सुघोसा घंटा । हरिणेगमेसी पायत्ताणीयाहिवई उत्तरिल्ला णिज्जाणभूमि, दाहिणपुरच्छिमिल्ले रइकरगपव्वए। ईसाणगाणं माहिंद-लंतग-सहस्सारअच्चुयगाणं य इंदाणं महाघोसा घंटा, लहुपरक्कमो पायत्ताणीयाहिवई, दक्खिणिल्ले णिज्जाणमग्गे, उत्तरपुरच्छिमिल्ले रइकरगपव्वए। परिसा णं जहा जीवाजीवाभिगमे। आयरक्खा सामाणियचउग्गुणा, सव्वेसिं जाणविमाणा सव्वेसिं जोयणसयसहस्सविच्छिण्णा, उच्चत्तेणं सविमाणप्पमाणा महिंदज्झया जोयणसहस्सीआ, सक्कवज्जा मंदरे समोसरंति जाव पज्जुवासेंति ॥२१॥

अर्थ—तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म के समय में ईशान नामक देवेन्द्र देवराजा जो कि हाथ में शूल धारण करने वाले, वृषभवाहन देवों के इन्द्र, मेरु पर्वत से उत्तर के अर्द्ध लोक के स्वामी, आकाश

के समान स्वच्छ एवं रजरहित निर्मल वस्त्रों को धारण करने वाले और अट्ठाईस लाख विमानों के स्वामी हैं, उनका आसन चलित होता है। तब वे अवधिज्ञान द्वारा तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म हुआ जान कर उनका जन्म महोत्सव करने के लिए जाते हैं इत्यादि वर्णन जैसा शक्रेन्द्र के लिए कहा है वैसा ही यहाँ पर भी समझना चाहिये किन्तु इनकी विशेषता है कि—इनके महाघोषा नामक घण्टा होता है। पदाति सेना का अधिपति लघुपराक्रम नामक देव उसे बजाता है। पुष्पक नामक देव यान विमान की विक्रिया करता है। दक्षिण दिशा के निर्याणमार्ग से ईशानेन्द्र नीचे उतरते हैं और ईशानकोण के रतिकर पर्वत पर विश्राम लेते हैं, फिर सीधे मेरु पर्वत जाते हैं और तीर्थङ्कर भगवान् की पर्युपासना करते हैं।

इसी प्रकार बारहवें अच्युत देवलोक तक के शेष सभी इन्द्रों का कथन कर देना चाहिये किन्तु उनमें जो विशेषता है वह पृथक् बताई जाती है। उनके सामानिक देवों की संख्या इस प्रकार है— सौधर्मेन्द्र के चौरासी हजार, ईशानेन्द्र के अस्सी हजार, सनत्कुमारेन्द्र के बहत्तर हजार, माहेन्द्र के सित्तर हजार, ब्रह्मलोकेन्द्र के साठ हजार, लान्तकेन्द्र के पचास हजार, शुक्रेन्द्र के चालीस हजार, सहस्रारेन्द्र के तीस हजार, आणत और प्राणत नामक नववें और दसवें दोनों देवलोकों का एक ही इन्द्र होता है, उसके बीस हजार व आरण और अच्युत नामक ग्यारहवें और बारहवें दोनों देवलोकों का एक ही इन्द्र होता है उसके दस हजार सामानिक देव होते हैं।

अब क्रमशः इन बारह देवलोकों के दस इन्द्रों के विमानों की संख्या बताई जाती है—

(१) बत्तीस लाख। अट्ठाईस लाख। (३) बारह लाख। (४) आठ लाख। (५) चार लाख (६) पचास हजार। (७) चालीस हजार (८) छह हजार (९) चार सौ (१०) तीन सौ।

अब इन दस इन्द्रों के यानविमान बनाने वाले देवों के नाम क्रमशः बतलाये जाते है—

(१) पालक (२) पुष्पक (३) सौमनस (४) श्री वत्स (५) नन्दावर्त (६ कामगम (७) प्रीतिगम (८) मनोरम (९) विमल (१०) सर्वतोभद्र।

अब इन दस इन्द्रों में समुच्चय रूप से कुछ बातों की समानता बताई जाती है—सौधर्म, सनत्कुमार, ब्रह्मलोक, महाशुक्र और आणत प्राणत इन देवलोक के पांच इन्द्रों के सुघोषा घण्टा, हरिणगमेषी नामक देव पदाति सेना का अधिपति उत्तर दिशा का निर्याणमाग और आग्नेयकोण का रतिकर पर्वत विश्रामस्थान होता है।

ईशान, माहेन्द्र लान्तक, सहस्रार और आरण अच्युत इन देवलोकों के पाँच इन्द्रों के महाघोषा नामक घण्टा, लघुपराक्रम देव पदातिसेना का अधिपति, दक्षिण दिशा का निर्याण मार्ग और ईशानकोण का रतिकर पर्वत विश्राम स्थान होता है।

इन सब इन्द्रों को आभ्यन्तर, मध्य और बाह्य ये तीनों परिषदाएँ जिस प्रकार जीवाजीवाभिगम सूत्र में कही है उसी प्रकार यहाँ भी जाननी चाहिये।

सब इन्द्रो के आत्मरक्षक देव समानिक देवों से चौगुने होते है। सब इन्द्रो के यानविमान एक लाख योजन के लम्बे चौड़े होते है और अपने अपने देवलोक के विमान जितने ऊँचे होते है। सबकी माहेन्द्रध्वजा एक हजार योजन की होती है। प्रथम सौधर्म देवलोक के इन्द्र तो तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म नगर मे आते है और शेष नौ इन्द्र अपने-अपने देवलोक से सीधे मेरु पर्वत पर जाते हैं ॥२१॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं चमरे असुरिंदे असुरराया चमरचंचाए रायहाणीए सभाए सुहम्माए चमरंसि सीहासणंसि चउसट्ठीए सामाणियसाहस्सीहिं तेत्तीसाए तायतीसेहिं चउहिं लोगपालेहिं पंचहिं अग्गमहिसीहिं सपरिवाराहिं तीहि परिसाहिं सत्तहिं अणीएहिं सत्तहिं अणीयाहिवईहिं चउहिं चउसट्ठीहिं आयरक्खसाहस्सीहिं अण्णेहिं य जहा सक्के, णवरं इमं णाणत्तं-दुमो पायत्ताणीयाहिवई, ओहस्सरा घंटा, विमाणं पण्णासं जोयणसहस्साइं महिंदज्झओ पंचजोयणसयाइं, विमाणकारी आभिओगिओ देवो, अवसिट्ठं तं चेव जाव मंदरं समोसरइ पज्जुवासइ ॥२२॥

अर्थ—असुरकुमार जाति के देवों का इन्द्र चमरेन्द्र चमरचञ्चा राजधानी में चमर सिंहासन पर बैठा होता है। वह चौसठ हजार सामानिक देव तेतीस त्रायस्त्रिंशक, चार लोकपाल, परिवार सहित पाँच अग्रमहिषियाँ, तीन परिषदा, सात अनीक, सात अनीकाधिपति देव, दो लाख छप्पन हजार आत्मरक्षक देव, और अन्य बहुत देव और देवियों से परिवृत्त होकर भोग भोगता हुआ विचरण करता है। जिस समय तीथङ्कर भगवान् का जन्म होता है, उस समय उसका आसन चलित होता है, तब अवधिज्ञान से

महेन्द्रध्वजा और विमान बनाने वाला आभियोगिक देव होता है। शेष सारा वर्णन पूर्वोक्त प्रकार से जानना चाहिये। तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म महोत्सव करने के लिए चमरेन्द्र अपने स्थान से सीधा मेरु पर्वत पर जाता है ॥२२॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं बली असुरिंदे असुरराया एवमेव णवरं सट्ठी सामाणियसाहस्सीओ, चउगुणा आयरक्खा, महादुमो पायत्ताणीयाहिवई, महाओहस्सरा घंटा तं चेव परिसाओ जहा जीवाभिगमे ॥२३॥

अर्थ—बलीचञ्चा राजधानी में बलीन्द्र नामक असुरेन्द्र असुर राजा यावत् भोग भोगता हुआ विचरता है। उसका सारा वर्णन चमरेन्द्र की तरह जानना चाहिये; सिर्फ इतनी विशेषता है कि—इनके साठ हजार सामानिक देव, दो लाख चालीस हजार आत्म रक्षक देव, पदाति सेना का अधिपति महाद्रुम देव और महा ओघस्वरा घण्टा होती है। शेष सारा वर्णन पूर्वोक्त प्रकार से जानना चाहिये। परिषदाओं का वर्णन जैसा जीवाभिगम सूत्र में कहा है, वैसा ही यहाँ जानना चाहिये। वह बलीन्द्र सीधा मेरु पर्वत पर जाता है ॥२३॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं धरणे तहेव णाणत्तं छ सामाणियसाहस्सीओ छ अग्गमहिसीओ, चउग्गुणा आयरक्खा, मेघस्सरा घंटा, भद्दसेणो पायत्ताणीयाहिवई विमाणं पणवीसं जोयणसहस्साइं महिंदज्झओ अड्ढाइज्जाइं जोयणसयाइं। एवमसुरिंदवज्जियाणं भवणवासिइंदाणं, णवरं असुराणं ओघस्सरा घंटा, णागाणं मेघस्सरा, सुवण्णाणं

हंसस्सरा, विज्जूणं कोंचस्सरा, अग्गीणं मंजुस्सरा, दिसाणं मंजुघोसा, उदहीणं सुस्सरा दीवाणं महुरस्सरा, वाऊणं णंदिस्सरा, थणियाणं णंदिघोसा ।

चउसट्ठी सट्ठी खलु, छच्च सहस्सा उ असुरवज्जाणं ।
सामाणिया उ एए, चउग्गुणा आयरक्खा उ ॥
दाहिणिल्लाणं पायत्ताणीयाहिवई ।
भद्दसेणो उत्तरिल्लाणं दक्खो त्ति ॥२४॥

अर्थ—दक्षिण दिशा के नाग कुमारों का इन्द्र धरण आनन्द पूर्वक भोग भोगता हुआ विचरण करता है। तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म के समय उसका आसन चलित होता है। तब अवधिज्ञान द्वारा तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म हुआ जान कर उनका जन्म महोत्सव करने के लिये अपनी सम्पूर्ण ऋद्धि सहित वह मेरु पर्वत पर जाता है। इसका सारा वर्णन पूर्वोक्त वर्णन के समान समझना चाहिये सिर्फ इतना फर्क है कि—इसके छह हजार सामानिक देव, छह अग्रमहिषियाँ, चौबीस हजार आत्मरक्षक देव, मेघस्वरा घण्टा, पदाति सेना का अधिपति भद्रसेन, पचीस हजार योजन का लम्बा चौड़ा विमान और अढाई सौ योजन की ऊँची महेन्द्रध्वजा होती है।

चमरेन्द्र और बलीन्द्र के सिवाय दक्षिण और उत्तर दिशा के नौ जाति के भवनपति देवों के अठारह इन्द्रों का वर्णन धरणेन्द्र के समान जानना चाहिये।

दस भवनपति देवों में पारस्परिक जो विशेषता होती है अब वह बतलाई जाती है—असुरकुमारों के ओघस्वरा घण्टा, नागकुमारों के मेघस्वरा, सुवर्णकुमारों के हंसस्वरा, विद्युत्कुमारों के

क्रौंचस्वरा, अग्निकुमारों के मञ्जुस्वरा, दिशाकुमारों के मञ्जुघोषा, उदधिकुमारों के सुस्वरा, द्वीपकुमारों के मधुरस्वरा, वायुकुमारों के नन्दिघोषा नामक होती है।

अब एक संग्रहणी गाथा द्वारा भवनपति देवों के इन्द्रों के सामानिक और आत्मरक्षक देवों की संख्या बतलाई गई है—

चमरेन्द्र के ६४ हजार, बलीन्द्र के ६० हजार, और शेष भवनपति देवों के अठारह इन्द्रों के प्रत्येक के छह छह हजार सामानिक देव होते हैं और आत्मरक्षक देव इनसे चौगुने होते हैं अर्थात् चमरेन्द्र के दो लाख छप्पन हजार, बलीन्द्र के दो लाख चालीस हजार और शेष अठारह इन्द्रों के चौबीस हजार आत्म रक्षक देव होते हैं।

इस जाति के भवनपति देवों में दक्षिण दिशा के दस इन्द्र और उत्तर दिशा के दस इन्द्र, इस प्रकार बीस इन्द्र होते हैं। दक्षिण दिशा के इन्द्रों में चमरेन्द्र की पदाति सेना का अधिपति द्रुम नामक देव होता है और शेष नौ इन्द्रों की पदाति सेना का अधिपति भद्रसेन नामक देव होता है। उत्तर दिशा के इन्द्रों में बलीन्द्र की पदाति सेना का अधिपति महाद्रुम नामक देव होता है और शेष नौ इन्द्रों की पदाति सेना का अधिपति दक्ष नामक देव होता है ॥२४॥

वाणमंतर–जोइसिया णेयव्वा एवं चेव णवरं चत्तारि सामाणियसाहस्सीओ, चत्तारि अग्गमहिसीओ, सोलस आयरक्खसहस्सा, विमाणा जोयण सहस्सं, महिंदज्झया पणवीस जोयणसयं, घंटा दाहिणाणं मंजुस्सरा, उत्तराणं मंजुघोसा, पायत्ताणीयाहिवई विमाणकारी य आभियोगा

देवा। ओइसियाणं सुस्सरा सुस्सरणिग्घोसाओ घंटाओ, मंदरे समोसरणं जाव पज्जुवासंति ॥२५॥

अर्थ—वाणव्यन्तर और ज्योतिषीदेवों के इन्द्रों का वर्णन भवनपति देवों के इन्द्रो के समान जानना चाहिये। इनमें सिर्फ इतना फर्क है—उनमें प्रत्येक इन्द्र के चार हजार सामानिक देव, चार अग्रमहिषियाँ, सोलह हजार आत्मरक्षक देव होते है। इनके विमान एक हजार योजन लम्बे चौड़े होते हैं और महेन्द्रध्वजा एक सौ पच्चीस योजन की ऊँची होती है।

वाणव्यंतर जाति के देवों के बत्तीस इन्द्र होते हैं, उनमें से दक्षिण दिशा के सोलह इन्द्रो के मञ्जुस्वरा नामक घण्टा होती है और उत्तर दिशा के सोलह इन्द्रों के मञ्जुघोषा नामक घण्टा होती है। इन सब इन्द्रो के पदाति सेना का अधिपति और यानविमान बनाने वाला आभियोगिक देव ही होता है।

ज्योतिषी देवों में चन्द्र जाति के देवों के इन्द्र के सुस्वरा और सूर्य जाति के देवो के इन्द्र के सुस्वर निर्घोषा घण्टा होती है।

इस प्रकार वैमानिक देवों के दस इन्द्र, भवनपति देवों के बीस इन्द्र, वाणव्यन्तर जाति के देवों के बत्तीस इन्द्र और ज्योतिषी देवों के दो इन्द्र ये कुल मिलाकर ६४ इन्द्र मेरु पर्वत पर तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म महोत्सव करते है। इनमें से सौधर्मदेवलोक के इन्द्र तो तीर्थङ्कर भगवान् के जन्मनगर एवं जन्म स्थान मे आकर तीर्थङ्कर भगवान् को मेरु पर्वत पर ले जाते हैं। शेष ६३ इन्द्र अपने-अपने स्थान से सीधे मेरु पर्वत पर जाते है। वहाँ मेरु पर्वत पर ये चौसठ इन्द्र मिल कर तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म महोत्सव करते हैं ॥२५॥

(इन्द्रों द्वारा अभिषेक)

तए णं से अच्चुए देविंदे देवराया महं देवाहिवे आभिओगे देवे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! महत्थं महग्घं महारिहं विउलं तित्थयराभिसेयं उवट्ठवेह ॥२६॥

अर्थ—इसके बाद सब इन्द्रों में बड़े तथा सब देवों के स्वामी अच्युत नामक देवेन्द्र देवराजा आभियोगिक देवों को बुलाते हैं और बुला कर इस प्रकार कहते है कि—हे देवानुप्रियो ! महान् प्रयोजन वाला, महामूल्यवान और महापुरुषों के योग्य तीर्थङ्कर भगवान् का जन्माभिषेक यानी जन्ममहोत्सव करने योग्य समस्त सामग्री मेरे पास लाओ ॥२६॥

तए णं ते आभिओगा देवा हट्ठतुट्ठ जाव पडिसुणित्ता उत्तरपुरच्छिमं दिसीभागं अवक्कमंति, अवक्कमित्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं जाव समोहणित्ता अट्ठसहस्सं सोवण्णिय कलसाणं, एवं रुप्पमयाणं मणिमयाणं सुवण्णरुप्पमयाणं सुवण्णमणिमयाणं रुप्पमणिमयाणं सुवण्णरुप्पमणिमयाणं, अट्ठसहस्सं भोमिज्जाणं, अट्ठसहस्सं चंदणकलसाणं, एवं भिंगाराणं, आयंसाणं, थालाणं, पाईणं, सुपइट्ठगाणं, चित्ताणं. रयणकरंडगाणं, वायकरगाणं, पुप्फचंगेरीणं, एवं जहा सुरियाभस्स सव्वचंगेरीओ सव्वपडलगाइं विसेसियतराइं भणियव्वाइं, सीहासणछत्तचामरतेल्लसमुग्ग जाव

सरिसवसमुग्गा तालियंटा जाव अट्ठसहस्सं कडुच्छुगाणं विउव्वंति, विउव्वित्ता साहाविए विउव्विए य कलसे जाव कडुच्छुए य गिण्हित्ता जेणेव खीरोदए समुद्दे तेणेव खीरोदगं गिण्हंति, गिण्हित्ता जाइं तत्थ उप्पलाइं पउमाइं जाव सहस्सपत्ताइं ताइं गिण्हंत्ति, एवं पुक्खरोदाओ जाव भरहेरवयाणं मागहाइतित्थाणं उदगं मट्टियं य गिण्हंति, गिण्हित्ता एवं गंगाईणं महाणईणं जाव चुल्लहिमवंताओ सव्वतुअरे सव्वपुप्फे सव्वगंधे सव्वमल्ले जाव सव्वोसहीओ सिद्धत्थए य गिण्हंति, गिण्हित्ता पउमद्दहाओ दहोदगं उप्पलाईणि य, एवं सव्वकुलपव्वएसु वट्टवेयड्ढेसु सव्वमहद्दहेसु सव्ववासेसु सव्वचक्कवट्टिविजएसु वक्खारपव्वएसु अंतरणाईसु विभासिज्जा जाव उत्तरकुरुसु जाव सुदंसणभद्दसालवणे सव्वतुअरे जाव सिद्धत्थए य गिण्हंति, एवं णंदणवणाओ सव्वतुअरे जाव सिद्धत्थए य सरसं य गोसीसचंदणं दिव्वं य सुमणदामं गिण्हंति एवं सोमणसपंडगवणाओ य सव्वतुअरे जाव सुमणदामं दद्दरमलयसुगंधिए गंधे य गिण्हंति, गिण्हित्ता एगओ मिलंति, मिलित्ता जेणेव सामी तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता महत्थं जाव तित्थयराभिसेयं उवट्ठवेंति ॥२७॥

अर्थ—अच्युतेन्द्र की उपरोक्त आज्ञा को सुन कर वे आभियोगिक देव बड़े प्रसन्न होते हैं। तत्पश्चात् ईशान कोण में जाकर

वैक्रिय समुद्घात करते हैं। फिर वैक्रिय द्वारा १००८ सोने के कलश, १००८ चाँदी के कलश, १००८ मणियों के कलश, १००८ सोने और मणियों के कलश, १००८ चाँदी और मणियों के कलश, १००८ सोने चाँदी और मणियों के कलश, १००८ मिट्टी के कलश, १००८ चन्दन के कलश, १००८ झारी, १००८ काच, १००८ थाली, १००८ कटोरी, १००८ सुप्रतिष्ठक नामक पात्र विशेष, १००८ चित्र १००८ रत्नों के करंडिए, १००८ वातकरक अर्थात् बाहर से चित्रित और भीतर से जलरहित खाली घड़े, १००८ फूलों की टोकरियाँ, १००८ आभूषणों की टोकरियाँ, १००८ फूलों की टोकरियों को ढकने के कपड़े, १००८ आभूषणों की टोकरियों को ढकने के कपड़े, १००८ पंखे और १००८ धूप देने के कुड़छे, सिंहासन, छत्र, चामर, तथा तेल और सरसों के डिब्बे आदि बनाते है। राजप्रश्नीय सूत्र में सूर्याभदेव के इन्द्राभिषेक के समय जैसा कथन किया है, वैसा ही यहाँ भी जानना चाहिये; किन्तु यहाँ सब पदार्थों का कथन उनसे विशेष रूप से करना चाहिये। आभियोगिक देव इन सब पदार्थों को विक्रिया से बनाते है। तत्पश्चात वैक्रिय किये हुए इन कलशादि पदार्थों को और स्वाभाविक पदार्थों को ग्रहण करके क्षीरोदक समुद्र में से जल और कमल ग्रहण करते हैं। तत्पश्चात भरत और ऐरवत क्षेत्र के मागध आदि तीर्थों से जल और मिट्टी, गङ्गा आदि महानदियों से जल और मिट्टी, चुल्लहिमवान् पर्वत से सब प्रकार की औषधियाँ सुगन्धित पदार्थ, भिन्न-भिन्न प्रकार से गूंथी हुई फूलमालाएँ, राजहंसादि महौषधियाँ और सब प्रकार के मांगलिक पदार्थों को ग्रहण करते हैं। इसी प्रकार हिमालय आदि सब कुल पर्वत, वृत्तवैताढ्य पर्वत, पद्मद्रह, भरतादि सब क्षेत्र चक्रवर्तियों के सब विजय, माल्यवान् और चित्रकूट आदि सब वक्षस्कार पर्वत और ग्राहावती आदि समस्त अन्तर्नदियों के विषय

में कह देना चाहिये अर्थात् पर्वतों से तुवर आदि औषधियाँ, द्रहों में से कमल, कर्मभूमि के क्षेत्रों में रहे हुए मागध आदि तीर्थों में से जल और मिट्टी, तथा नदियों के दोनों तटों की मिट्टी और जल ग्रहण करते हैं। सुदर्शन पर्वत, भद्रशाल वन और नन्दन वन से तथा सोमनस और पण्डक वन से गोशीर्ष चन्दन, सब प्रकार की औषधियाँ यावत् फूलमालाएँ आदि तथा दर्दर पर्वत और मलय पर्वत से चन्दन एवं चन्दन से सुगन्धित पदार्थों को ग्रहण करते हैं। तत्पश्चात् इस समस्त सामग्री को ग्रहण करने के लिए इधर-उधर बिखरे हुए वे सब आभियोगिक देव एक जगह इकट्ठे होते हैं और त्रिलोकपूज्य तीर्थङ्कर भगवान् के जन्माभिषेक योग्य समस्त सामग्री को लेकर अच्युतेन्द्र के पास आते हैं ॥२७॥

तए णं से अच्चुए देविंदे देवराया दसहिं सामाणिय-साहस्सीहिं तेतीसेहिं तायतीसएहिं चउहिं लोगपालेहिं तिहिं परिसाहिं सत्तहिं अणीएहिं सत्तहिं अणियाहिवईहिं चत्ता-लीसाए आयरक्खदेवसाहस्सीहिं सद्धिं संपरिवुडे तेहिं साभा-विएहिं विउव्विहिं य वरकमलपइट्ठाणेहिं सुरभिवरवारिपडि-पुण्णेहिं चंदणकयचच्चाएहिं आविद्धकंठेगुणेहिं पउमुप्पल-पिहाणेहिं करयलसुकुमारपरिग्गहिएहिं अट्ठसहस्सेणं सोव-ण्णियाणं कलसाणं जाव अट्ठसहस्सेणं भोमेज्जाणं जाव सव्वोदएहिं सव्वमट्टियाहिं सव्वतुअरेहिं जाव सव्वोसहि-

अर्थ—जब आभियोगिक देव तीर्थङ्कर भगवान् का जन्माभिषेक करने योग्य समस्त सामग्री लाकर अच्युतेन्द्र के पास रख देते हैं तब दस हजार सामानिक देव, तेतीस त्रायस्त्रिंशक, चार लोकपाल, तीन परिषदा, सात अनीक, सात अनिकाधिपति देव और चलीस हजार आत्मरक्षक देवों से संपरिवृत्त वे अच्युतेन्द्र देवराजा उन स्वाभाविक और विक्रिया द्वारा बनाये हुए श्रेष्ठ कमलों से युक्त सुगन्धित जल से परिपूर्ण, चन्दन चर्चित, कमल के ढक्कनों से युक्त, कोमल हाथों द्वारा ग्रहण किये हुए सोने चाँदी मिट्टी आदि से बने हुए कुल आठ हजार चौंसठ कलशों से यावत् सब जल, सब मिट्टी, सब औषधि और सिद्धार्थदि सब मांगलिक पदार्थों से एव तीर्थङ्कर भगवान् का जन्माभिषेक करने योग्य समस्त सामग्री से जयनाद के महान् शब्दों के साथ तीर्थङ्कर भगवान् का जन्माभिषेक करते हैं ॥२८॥

तए णं सामिस्स महया महया अभिसेयंसि वट्टमाणंसि इंदाइया देवा छत्तचामरधूवकडुच्छुए पुप्फगंध जाव हत्थगया हट्ठतुट्ठ जाव सूलपाणी पुरओ चिट्ठंति पंजलिउडा, एवं विजयाणुसारेणं जाव अप्पेगइया देवा आसिअसंमज्जिओवलित्तसित्तसुइसम्मट्ठरत्थंतरावणवीहियं करेंति जाव गंधवट्टिभूयं, अप्पेगइया हिरण्णवासं वासंति एवं सुवण्णरयणवइरआभरणपत्तपुप्फफलबीयमल्लगंधवण्ण जाव चुण्णवासं वासंति, अप्पेगइया हिरण्णविहिं भाइंति, एवं जाव चुण्णविहिं भाइंति। अप्पेगइया चउव्विहं वज्जं वाएंति तंजहा—ततं, विततं, घणं, भूसिरं। अप्पेगइया चउव्विहं गेयं

गायंति तंजहा—उक्खित्तं, पायत्तं, मंदाइयं, रोइयावसाणं। अप्पेगइया चउव्विहं णट्टं णच्चंति तंजहा—अंचिअं दुअं, आरभडं, भसोलं। अप्पेगइया चउव्विहं अभिणयं अभिणेंति, तंजहा—दिट्ठंतियं, पाडिस्सुइयं, सामण्णोवणिवाइयं, लोगमज्झावसाणियं। अप्पेगइया बत्तीसविंह दिव्वं णट्टविहिं उवदंसेंति। अप्पेगइया उप्पयणिवयं, णिवयउप्पयं संकुचियपसारियं जाव भंतसंभंतणामं दिव्वं णट्टविहिं उवदंसेंति। अप्पेगइया तंडवेंति, अप्पेगइया लासेंति, अप्पेगइया पीणेंति, एवं बुक्कारेंति अप्फोडेंति, वग्गंति, सीहणायं णदंति, अप्पेगइया सव्वाइं करेंति। अप्पेगइया हयहेसियं एवं हत्थिगुलगुलाइयं, रहघणघणाइयं, अप्पेगइया तिण्णिवि, अप्पेगइया अच्छोलंति, अप्पेगइया पच्छोलंति, अप्पेगइया तिवइं छिंदंति पायदद्दरयं करेंति, भूमि चवेडे दलयंति, अप्पेगइया महया सद्देणं रावेंति एवं संजोगा विभासियव्वा। अप्पेगइया हक्कारेंति, एवं पुक्कारेंति थक्कारेंति ओवयंति उप्पयंति परिवयंति तवंति पयवंति, गज्जंति विज्जुयायंति वासिंति। अप्पेगइया देवुक्कलियं करेंति एवं देवकहकहगं करेंति। अप्पेगइया विकियभूयाइं रूवाइं विउव्वित्ता पणच्चंति, एवमाइ विभासिज्जा जहा विजयस्स जाव सव्वओ समंता आहावेंति परिधावेंति ॥२६॥

अर्थ—जब तीर्थङ्कर भगवान् का जन्माभिषेक किया जाता है

उस समय सब देव बड़े प्रसन्न होते हैं। कितनेक देव हाथों में छत्र, चामर, धूप के कूड़छे, फूल और सुगन्धित पदार्थ लेकर तथा शक्रेन्द्र वज्र, और ईशानेन्द्र त्रिशूल लेकर एवं अन्य देव दोनों हाथ जोड़ कर तीर्थङ्कर भगवान् के सन्मुख खड़े रहते है। कितनेक देव पण्डक वन की सफाई करते हैं और कितनेक देव पानी का छिड़काव करते हैं तथा चन्दन आदि का लेप करते हैं। इस प्रकार पण्डक वन को साफ, पवित्र और सुगन्धित बना देते हैं। भिन्न-भिन्न स्थानों से लाई हुई चन्दन आदि वस्तुओं का इस तरह ढेर करते है जैसे मानो क्रमशः दूकानें लगाई हों। इस प्रकार जगह जगह चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थों का ढेर करते पण्डक वन को गन्धवट्टी के समान अत्यन्त सुगन्धित बना देते हैं। कितनेक देव चाँदी, सोना, रत्न, वज्र, आभूषण, पत्र, पुष्प, फल, बीज, माला, गन्ध, हिङ्गलू आदि वर्ण और सुगन्धित पदार्थों की वृष्टि करते हैं। कितनेक देव परस्पर में चाँदी, चूर्ण एवं माङ्गलिक पदार्थ देते हैं। अथवा इन पदार्थों से अपने शरीर को सुशोभित करते हैं। कितनेक देव (१) तत-वीणा आदि, (२) वितत-ढोल आदि, (३) घन-ताल आदि, (४) झुपिर-बाँसुरी आदि ये चार प्रकार के बाजे बजाते है। कितनेक देव (१) उत्क्षिप्त, (२) पादवद्ध, (३) मन्दाक और (४) रोचितावसान ये चार प्रकार के गाने गाते है। कितनेक देव (१) आञ्चत (२) द्रुत (३) आरभट और (४) भसोल यह चार प्रकार के नाच करते है। कितनेक देव (१) दार्ष्टान्तिक, (२) प्रातिश्रुतिक, (३) सामन्तोपनिपातिक या सामान्यतो विनिपातिक और (४) लोकमध्यावसानिक—यह चार प्रकार का अभिनय करते हैं। जिस प्रकार भगवान् महावीर स्वामी के सामने सूर्याभदेव ने बत्तीस प्रकार के नाटक बताये थे, वैसे ही कितनेक देव बत्तीस प्रकार के नाटक बतलाते हैं। कितनेक देव नीचे गिरते हैं, उछलते हैं, अपने

अङ्गों को संकुचित और विस्तृत करते हैं। कितनेक देव भ्रान्त-संभ्रान्त नामक ऐसा दिव्य नाटक दिखलाते हैं जिसे देख कर दर्शक लोग आश्चर्य में पड़ कर भ्रान्तसम्भ्रान्त बन जाते हैं। कितनेक देव ताण्डव नृत्य और अभिनयशून्य लासिक नृत्य करते हैं। कितनेक देव अपने शरीर को स्थूल बनाते है। कितनेक देव थूत्कार और आस्फोटन आदि करते हैं। कितनेक देव पहलवान की तरह अपनी भुजाओं को ठोकते हैं और परस्पर मल्लयुद्ध करते है। कितनेक देव सिंहनाद करते है, घोड़े की तरह हिनहिनाहट, हाथी की तरह गुलगुलाहट और रथ की तरह घनघनाहट शब्द करते है। कितनेक देव पहलवान की तरह उछलते है, आनन्दित होकर परस्पर चपेटा और पीठ मे घूंसा मारते है। कितनेक देव पैरों से भूमि को ताड़ित करते है हाथो से भूमि पर चपेटा मारते है। कितनेक देव हकार शब्द, पूत्कार शब्द और थक्क थक्क शब्द करते है। कितनेक देव खुशी के मारे ऊपर उछलते है, नीचे गिरते है तिरछे गिरते है। कितनेक देव ज्वाला के समान तथा तप्त और दीप्त अङ्गार के समान रूप बनाते हैं। कितनेक देव मेघ के समान गर्जना करते है, बिजली के समान चमकते और वर्षा करते है। कितनेक देव आनन्द से कहकह, दुहुदुहु और हुहु शब्द करते हैं। कितनेक देव विविध प्रकार का रूप बना कर नाचते हैं। कितनेक देव खुशी के मारे इधर-उधर दौड़ते है। इस प्रकार जीवाजीवाभिगम सूत्र में जैसे विजयदेव के अभिषेक का वर्णन किया है उसी प्रकार सारा वर्णन यहाँ भी समझ लेना चाहिये ॥२६॥

तए णं से अच्चुइंदे सपरिवारे सामिं तेणं महया महया अभिसेएणं अभिसिंचइ अभिसिंचित्ता करयलपरिग्गहियं जाव मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धा-

वित्ता ताहिं इट्ठाहिं जाव जयजयसद्दं पउंजइ, पउंजिता जाव पम्हलसुकुमालाए सुरभिए गंधकासाईए गायाइं लूहेइ, लूहित्ता एवं जाव कप्परुक्खगं विव अलंकियविभूसियं करेइ, करित्ता जाव णट्टविहिं उवदंसेइ, उवदंसित्ता अच्छेहिं सण्हेहिं रययामएहिं अच्छरसातंडुलेहिं भगवओ सामिस्स पुरओ अट्ठट्ठमंगलगे आलिहइ, तंजहा—

दप्पण भद्दासणं वद्धमाण,
वरकलसमच्छ सिरिवच्छा ।
सोत्थिय णंदावत्ता,
लिहिया अट्ठट्ठ मंगलगा ॥ १ ॥

लिहिऊण करेइ उवयारं । किं ते ? पाडलमल्लियचंपग सोगपुण्णागचूअमंजरि – णवमालिय–बउल – तिलयकणवीर कुंदकुज्जग कोरंटपत्तदमणगवरसुरभिगंधगंधियस्स कयग्ग-हगहियकरयलपब्भट्ठविप्पमुक्कस्स दसद्धवण्णस्स कुसुम-णियरस्स तत्थचित्तं जण्णुस्सेहप्पमाणमित्तं ओहिणियरं करेइ, करित्ता चंदप्पहरयणवइरवेरुलियविमलदंडं कंचण-मणिरयणभत्तिचित्तं कालागुरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्क धूवगंधुत्तमाणुविद्धं धूमवट्टिं विणिम्मुअंतं वेरुलियमयं कडुच्छुअं पग्गहित्तु पयएणं धूवं दहइ, दाऊण जिणवरिं-दस्स सत्तट्ठपयाइं ओसरित्ता दसंगुलियं अंजलिं करिअ

मत्थयम्मि पयओ अट्ठसएहिं विसुद्धगंथजुत्तेहिं महावित्तेहिं अपुणरुत्तेहिं अत्थजुत्तेहिं संथुणइ संथुणित्ता वामं जाणुं अंचेइ अंचित्ता जाव करयलपरिग्गहियं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी णमोत्थुणं ते सिद्धबुद्धणीरयसमणसामाहियसमत्तसमजोगिसल्लगत्तणणिब्भयणीरागदोसणिम्ममणिसंगणिसल्लमाणमूरणगुणरयणसीलसागरमणंतमप्पमेयभविय--धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टी, णमोत्थुणं ते अरहओ त्तिकट्टु वंदइ णमंसइ वंदित्ता णमंसित्ता णच्चासण्णे णाइदूरे सुस्सूसमाणे जाव पज्जुवासइ। एवं जहा अच्चुयस्स तहा जाव ईसाणस्स भाणियव्वं। एवं भवणवइवाणमंतरजोइसिया य सूरपज्जवसाणा सएणं परिवारेणं पत्तेयं पत्तेयं अभिसिंचइ ॥३०॥

अर्थ—इसके बाद अच्युतेन्द्र उस महान् अभिषेक योग्य सामग्री से तीर्थङ्कर भगवान् का अभिषेक करते हैं। अभिषेक करके दोनो हाथ जोड़ कर जय विजय शब्दों से बधाते हुए कहते है कि हे भगवन् ! आपकी जय हो, विजय हो। फिर अत्यन्त कोमल और सुगन्धित्त कषायरङ्ग के वस्त्र से भगवान् के शरीर को पोछते हैं। पोंछने के पश्चात् उनके शरीर को अलंकृत और विभूषित करते हैं। तत्पश्चात नृत्यविधि बतलाते हैं। फिर स्वच्छ रजतमय शुद्ध चॉवलों से तीर्थङ्कर भगवान् के सामने (१) दर्पण, (२) भद्रासन, (३) वर्द्धमान, (४) श्रेष्ठ कलश, (५ मत्स्य, (६) श्रीवत्स, (७) स्वस्तिक और (८) नन्दावर्त्त ये आठ माङ्गलिक चिन्ह लिखते हैं। तत्पश्चात पाटल, मल्लिका, चम्पा, अशोक और पुन्नाग वृक्षों के

फूल, आम मञ्जरी, नवमालिका, बकुल, तिलक, कर्णवीर, कुन्द, कुब्जक आदि वृक्षों के फूल और कोरंट वृक्ष के पत्ते आदि सब सुगन्धित पदार्थों एवं उपरोक्त पाँच वर्ण के फूलों का घुटने परिमाण ढेर करते है, किन्तु जो फूल हाथ से नीचे गिर पड़ते हैं, उन्हें उसमें शामिल नही करते है। उपरोक्त उन पाँच वर्ण के फूलों से तीर्थङ्कर भगवान् की यथा योग्य सेवा करते हैं। तत्पश्चात् चन्द्रकान्त मणि, रत्न, वज्र और वैडूर्य मणि से बनी हुई डांडी वाले तथा सुवर्ण मणि और रत्नों की रचना यानी मीनाकारी से चित्रित वज्रमय कुड़छे को ग्रहण करते है उसमे कालागुरु, श्रेष्ठ कुन्दुरुक्क आदि महासुगन्धित पदार्थ डाल कर आदरपूर्वक तीर्थङ्कर भगवान् को धूप देते है। फिर दूसरों के दर्शन में बाधा न पड़े इस दृष्टि से सात-आठ पैर पीछे हट कर मस्तक पर अञ्जलि करके पुनरुक्ति दोष रहित, अर्थयुक्त एवं शुद्ध पाठ युक्त एक सौ आठ महान् श्लोकों से शुद्ध उच्चारण पूर्वक स्तुति करते हैं। फिर बाएँ घुटने को खड़ा करके और दाहिने घुटने को जमीन पर टेक कर, दोनो हाथ जोड़ कर और मस्तक पर अञ्जलि करके इस प्रकार स्तुति करते हैं—हे सिद्ध ! बुद्ध ! कर्मरजरहित ! श्रमण ! समाधिस्थ चित्त वाले, कृतकृत्य ! सम्यक् प्रकार से आप्त ! सम्यक् योग वाले ! शल्यों का विनाश करने वाले ! निर्भय ! राग द्वेष रहित ! ममत्व रहित ! सर्वसङ्ग रहित ! मान का मर्दन करने वाले ! सर्व गुणों में रत्न के समान ब्रह्मचर्य के सागर ! अनन्त ज्ञान के धारक ! अप्रमेय ! भव्य ! धर्म रूप चक्र से चारगति का अन्त करने वाले धर्मचक्रवर्तिन् ! हे अरिहन्त भगवन् ! आपको नमस्कार हो ! इस प्रकार स्तुति करते हुए वन्दना नमस्कार करते हैं। वन्दना नमस्कार करके न अति दूर और न अति नजदीक किन्तु उचित स्थान पर स्थित होकर सुश्रूषा करते हुए पर्युपासना करते हैं।

इस प्रकार जैसे अच्युतेन्द्र का कथन किया है वैसे ही ईशानेन्द्र तक भी कह देना चाहिये अर्थात् ईशानेन्द्र से लेकर अच्युतेन्द्र पर्यन्त नौ इन्द्र इसी तरह अभिषेक करते हैं और इसी प्रकार भवनपति देवों के बीस इन्द्र, वाणव्यन्तर देवों के बत्तीस इन्द्र और ज्योतिषी देवों के दो इन्द्र अभिषेक करते हैं अर्थात् शक्रेन्द्र के सिवाय त्रेसठ इन्द्र इस प्रकार उपरोक्त रीति से तीर्थङ्कर भगवान् का जन्माभिषेक करते हैं ॥३०॥

तए णं से ईसाणे देविंदे देवराया पंच ईसाणे विउव्वइ, विउव्वित्ता एगे ईसाणे भगवं तित्थयरं करयलसंपुडेणं गिण्हइ, गिण्हित्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे, एगे ईसाणे पिट्ठओ आयवत्तं धरेइ, दुवे ईसाणा उभओ पासिं चामरुक्खेवं करेंति, एगे ईसाणे पुरओ सूलपाणी चिट्ठइ ॥३१॥

अर्थ—तत्पश्चात् ईशानेन्द्र देवेन्द्र देवराजा विक्रिया द्वारा अपने पाँच रूप बनाते हैं। एक ईशानेन्द्र तीर्थङ्कर भगवान् को हथेली पर धर कर पूर्व की तरफ मुँह करके सिंहासन पर बैठते हैं। एक ईशानेन्द्र पीठ पीछे खड़ा रह कर छत्र धारण करता है। दो ईशानेन्द्र दोनों तरफ चामर ढोलते हैं और एक ईशानेन्द्र हाथ मे त्रिशूल लेकर सामने खड़े रहते हैं ॥३१॥

तए णं से सक्के देविंदे देवराया आभिओगिए देवे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एसो वि तह चेव अभिसेयआणत्तिं देइ, ते वि य तह चेव उवणेंति । तए णं से सक्के देविंदे देवराया भगवओ तित्थयरस्स चउद्दिसिं चत्तारि धवलवसभे

विउव्वेइ, सेए संखदलविमलणिम्मलदधिघणगोखीरफेणरयय-णिगरप्पगासे पासाईए दरिसणिज्जे अभिरूवे, पडिरूवे, तए णं तेसिं चउण्हं धवलवसभाणं अट्ठहिं सिंगेहिंतो अट्ठ तोयधाराओ उड्ढं वेहासं उप्पयंति, उप्पइत्ता एगओ मिलायंति, मिलाइत्ता भगवओ तित्थयरस्स मुद्धाणंसि-णिवयंति। तए णं से सक्के देविंदे देवराया चउरासीईए सामाणियसाहस्सीहिं एयस्स वि तहेव अभिसेओ भणियव्वो जाव णमोत्थुणं ते अरहओ तिकट्टु वंदइ णमंसइ जाव पज्जुवासइ ॥३२॥

अर्थ—जब ईशानेन्द्र तीर्थङ्कर भगवान् को अपने करतल में लेकर सिंहासन पर बैठ जाते हैं तब शक्रेन्द्र जो कि अब तक तीर्थङ्कर भगवान् को अपने करतल में लेकर सिंहासन पर बैठे हुए थे, वे मुक्तहस्त होकर अपने आभियोगिक देवों को बुलाते हैं, उन्हें बुला कर अच्युतेन्द्र के समान ही अभिषेक सामग्री लाने के लिए आज्ञा देते हैं। उनकी आज्ञा पाकर आभियोगिक देव अभिषेक सामग्री लाकर शक्रेन्द्र के सामने रखते हैं।

तब वे शक्रेन्द्र तीर्थङ्कर भगवान् के चारों दिशाओं में चार सफेद बैलों का रूप बना कर खड़ा करते हैं। वे बैल शंख के चूर्ण समान, अत्यन्त निर्मल दधिपिण्ड के समान और गाय के दूध के समान और गाय के दूध के फेन के समान एवं चाँदी के समूह के समान सफेद होते हैं तथा मन को प्रसन्न करने वाले दर्श-नीय, अभिरूप और प्रतिरूप होते हैं।

तत्पश्चात् उन चार बैलों के आठ सींगों से आठ जलधा-राएँ निकलती हैं। वे फव्वारे के समान आकाश में ऊपर उछलती

हैं और फिर सभी एक साथ मिल कर तीर्थङ्कर भगवान के मस्तक पर गिरती हैं तब वे शक्रेन्द्र तीर्थङ्कर भगवान् का अभिषेक करते हैं। इनके अभिषेक का वर्णन अच्युतेन्द्र के समान ही जानना चाहिए यावत् वे तीर्थङ्कर भगवान् को वन्दना नमस्कार करके पर्युपासना करते हैं ॥२२॥

तए णं से सक्के देविंदे देवराया पंचसक्के विउव्वइ, विउव्वित्ता एगे सक्के भगवं तित्थयरं करयलसंपुडेणं गिण्हइ, एगे सक्के पिट्ठओ आयवत्तं धरेइ, दुवे सक्का उभओ पासिं चामरुक्खेवं करेंति, एगे सक्के वज्जपाणी पुरओ पगड्ढइ ॥२३॥

अर्थ—जब चौसठ ही इन्द्र तीर्थङ्कर भगवान् का जन्माभिषेक कर चुकते है तब शक्रेन्द्र अपने पाँच रूप बनाते हैं। एक शक्रेन्द्र तीर्थङ्कर भगवान् को अपनी हथेली पर उठाते हैं, एक शक्रेन्द्र पीठ पीछे रह कर छत्र धारण करते है, दो शक्रेन्द्र दोनों तरफ चामर ढोलते है और एक शक्रेन्द्र हाथ में वज्र लेकर तीर्थङ्कर भगवान् के सामने खड़े रहते है ॥२३॥

(जननी के निकट)

तए णं से सक्के चउरासीईए सामाणियसाहस्सीहिं जाव अण्णेहिं य बहूहिं भवणवइवाणमंतरजोइसियवेमाणि-एहिं देवेहिं देवीहिं य सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्ढीए जाव णाइयरवेणं ताए उक्किट्ठाए दिव्वाए देवगईए जेणेव भगवओ तित्थयरस्स जम्मणणयरे जेणेव जम्मणभवणे जेणेव तित्थयरमाया य तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता

भगवं तित्थयरं माउए पासे ठवेइ, ठवित्ता तित्थयरपडिरूवगं पडिसाहरइ, पडिसाहरित्ता ओसोवणीं पडिसाहरइ, पडिसाहरित्ता एगं महं खोमजुयलं कुंडलजुयलं च भगवओ तित्थयरस्स उस्सीसगमूले ठवेइ, ठवित्ता एगं महं सिरिदामगंडं तवणिज्जलंबूसगं सुवण्णपयरगमंडियं णाणामणिरयणविविहहारद्धाहारउवसोहियसमुदयं भगवओ तित्थयरस्स उल्लोयंसि णिक्खवइ । तए णं भगवं तित्थयरं अणिमिसाए दिट्ठीए-पेहमाणे पेहमाणे सुहंसुहेणं अभिरममाणे चिट्ठइ ॥३४॥

अर्थ—तब शक्रेन्द्र अपने चौरासी हजार सामानिक देव और दूसरे बहुत से भवनपति देव वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देव और देवियों के साथ उत्कृष्ट दिव्य देवगति से तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म नगर में आते हैं। फिर तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म भवन में आकर तीर्थङ्कर भगवान् की माता के पास उन्हें रखते हैं और उनके प्रतिरूपक को अर्थात् जब जन्माभिषेक करने के लिए तीर्थङ्कर भगवान् को मेरु पर्वत पर ले गये थे, तब उनका रूप बना कर जो प्रतिरूपक उनकी माता के पास रखा था उसे हटा लेते हैं और इसी प्रकार तीर्थङ्कर भगवान् की माता को जो अवस्वापिनी निद्रा देकर निद्रित कर दिया था, उस अवस्वापिनी निद्रा को भी दूर कर देते हैं। फिर तीर्थङ्कर भगवान् के सिर के तकिये के नीचे एक महान् क्षोम युगल और एक कुण्डलयुगल यानी कुण्डलों का जोड़ा रखते हैं। फिर तीर्थङ्कर भगवान् की दृष्टि में आवे उस तरह से उनकी दृष्टि के सामने सुवर्णमय, सुवर्ण से मण्डित, नाना मणि रत्न एवं विविध हार और अर्द्धहारों के समूह से सुशोभित एक महान् श्रीदामगण्ड यानी शोभायुक्त विचित्र रत्नों

का बना हुआ गोल दड़ा रखते हैं। तीर्थङ्कर भगवान् उस दड़े को अनिमेष दृष्टि से देखते हुए और सुख पूर्वक क्रीड़ा करते हुए माता के पास शयन किये हुए रहते हैं ।।३४।।

(जिनमाता की सेवा)

तए णं से सक्के देविंदे देवराया वेसमणं देवं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! बत्तीसं हिरण्णकोडीओ बत्तीसं सुवण्णकोडीओ बत्तीसं णंदाइं बत्तीसं भद्दाइं सुभगे सुभगरूववण्णलावण्णे य भगवओ तित्थयरस्स जम्मणभवणंसि साहराहि साहरित्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणाहि।

तए णं से वेसमणे देवे सक्केणं एवं वुत्ते समाणे विणएणं वयणं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता जंभए देवे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! बत्तीसं हिरण्णकोडीओ जाव भगवओ तित्थयरस्स जम्मणभवणंसि साहरह, साहरित्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह। तए णं ते जंभगा देवा वेसमणेणं देवेणं एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठ जाव खिप्पामेव बत्तीसं हिरण्णकोडीओ जाव भगवओ तित्थयरस्स जम्मणभवणंसि साहरंति, साहरित्ता जेणेव वेसमणे देवे तेणेव जाव पच्चप्पिणंति। तए णं से वेसमणे देवे जेणेव सक्के देविंदे देवराया जाव पच्चप्पिणइ ।।३५।।

अर्थ—तत्पश्चात् वे शक्रेन्द्र वैश्रमण देव को बुला कर कहते हैं कि हे देवानुप्रिय ! तुम शीघ्र ही बत्तीस करोड़ हिरण्य, बत्तीस करोड़ सोनैया और बत्तीस सुन्दर नन्दासन तथा बत्तीस सुन्दर भद्रासनों का संहरण करके तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म भवन मे रखो। जब यह कार्य हो जाय तब आकर मुझे वापिस सूचना करो।

वैश्रमण देव शक्रेन्द्र की उपरोक्त आज्ञा को विनयपूर्वक सुन कर शिरोधार्य करते है। तत्पश्चात् वह वैश्रमण देव जृम्भक देवों को बुला कर कहते है कि हे देवानुप्रियो ! तुम शीघ्र ही बत्तीस करोड़ हिरण्य, बत्तीस करोड़ सोनैया, और बत्तीस सुन्दर नन्दासन तथा बत्तीस सुन्दर भद्रासनों का संहरण करके तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म भवन में रखो। यह कार्य करके मुझे वापिस सूचना दो।

वैश्रमण देव की उपरोक्त आज्ञा को सुन कर जृम्भक देव बड़े प्रसन्न होते हैं। तत्पश्चात् वे शीघ्र ही बत्तीस करोड़ हिरण्य, बत्तीस करोड़ सोनैया और बत्तीस सुन्दर नन्दासन तथा बत्तीस सुन्दर भद्रासनों का संहरण करके तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म भवन में रखते हैं। तत्पश्चात् वे जृम्भक देव वैश्रमण देव के पास आकर उन्हें सूचना देते हैं। इसके बाद वैश्रमण देव शक्रेन्द्र के पास आकर उनकी आज्ञा उन्हें वापिस सौपते हैं अर्थात् उन्हें यह सूचित करते हैं कि जिस कार्य के लिये आपने मुझे आज्ञा दी थी, वह कार्य पूरा हो गया है ॥३५॥

तए णं से सक्के देविंदे देवराया आभिओगिए देवे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी–खिप्पामेव भो देवाणु–प्पिया ! भगवओ तित्थयरस्स जम्मणणयरंसि सिंघाडग

जाव महापहेसु महया महया सद्देणं उग्घोसेमाणा एवं वयह–हंदि ! सुणंतु भवंतो बहवे भवणवइवाणमंतरजोइसिय-वेमाणिया देवा य देवीओ य जे णं देवाणुप्पिया ! भगवओ तित्थयरस्स तित्थयरमाऊए उवरिं असुहं मणं पहारेइ, तस्स णं अज्जगमंजरिआ इव सयहा मुद्धाणं फुट्टउ त्तिकट्टु घोसणं घोसेह, घोसइत्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह । तएणं ते आभिओगिआ देवा जाव एवं देवोत्ति आणाए पडिसुणंति, पडिसुणित्ता सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो अंतियाओ पडिणिक्खमंति, पडिणिक्खमित्ता खिप्पामेव भगवओ तित्थयरस्स जम्मणणयरंसि सिंघाडग जाव एवं वयासी–हंदि ! सुणंतु भवंतो बहवे भवणवइ-वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया देवा य देवीओ य जे णं देवाणुप्पिया ! तित्थ-यरस्स तित्थयरमाऊए वा उवरिं असुहं मणं पहारेइ, तस्स णं अज्जगमंजरिआ इव सयहा मुद्धाणं फुट्टउ त्तिकट्टु घोसणं घोसेंति, घोसित्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणंति ॥३६॥

अर्थ—इसके पश्चात शक्रेन्द्र आभियोगिक देवों को बुलाते हैं और बुला कर इस प्रकार कहते है कि हे देवानुप्रियो ! तुम तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म नगर मे जाकर नगर के सभी चौराहो पर, सभी छोटे बड़े मार्गो पर एवं राजमार्गों पर इस प्रकार उद्-घोषणा करो कि अहो भवनपति वाणव्यन्तर ज्योतिषी और वैमा-निक देव और देवियो ! आप सब सुनें,— आप में से जो कोई देव या देवी तीर्थङ्कर भगवान् और तीर्थङ्कर भगवान् की माता के ऊपर

खोटा विचार करेगा, उनका बुरा चिन्तन करेगा तो उसका मस्तक ताड़ वृक्ष की मन्जरी के समान सौ टुकड़े करके उड़ा दिया जायगा। ऐसी उद्घोषणा करके यह मेरी आज्ञा मुझे वापिस सौंपो अर्थात् मेरी आज्ञानुसार कार्य करके मुझे वापिस सूचित करो।

तत्पश्चात् वे आभियोगिक देव शक्रेन्द्र की आज्ञा को विनयपूर्वक सुनते हैं एवं शिरोधार्य करते हैं। फिर शक्रेन्द्र के पास से निकल कर वे तीर्थङ्कर भगवान् के जन्मनगर में आते हैं। वहाँ आकर नगर के चौराहों पर, राजमार्गों पर यावत् छोटे बड़े सभी रास्ते पर शक्रेन्द्र की आज्ञानुसार उद्घोषणा करते हुए कहते हैं कि अहो! भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देव और देवियां! आप सब सुनें-आप में से कोई देव या देवी तीर्थङ्कर भगवान् और उनकी माता का किसी भी प्रकार से बुरा चिन्तन करेगा तो उसका मस्तक ताडवृक्ष की मञ्जरी के समान सैकड़ों टुकड़े करके उड़ा दिया जायगा।' ऐसी उद्घोषणा करके वे आभियोगिक देव शक्रेन्द्र के पास आकर उनको सूचित करते हैं कि हे स्वामिन्! हमने आपकी आज्ञानुसार तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म नगर में उद्घोषणा कर दी है ॥३६॥

तए णं ते बहवे भवणवइवाणमंतरजोइसियवेमाणिया देवा भगवओ तित्थयरस्स जम्मणमहिमं करेंति, करित्ता जेणेव णंदीसर दीवे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता अट्ठाहियाओ महामहिमाओ करेंति, करित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूआ तामेव दिसिं पडिगया ॥ ३७ ॥

अर्थ—इसके पश्चात वे सभी भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देव तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म महोत्सव करके नन्दीश्वर द्वीप में आते है, वहाँ आकर अष्टाह्निका महोत्सव करते हैं। आष्टाह्निका महोत्सव करके वे सभी अपने-अपने स्थान को वापिस चले जाते हैं ॥३७॥

६-तीर्थंकरों के नाम

वर्त्तमान चौवीसी के तीर्थङ्करों के नाम तथा उनके पूर्वभव के नाम बताते हैं:—

✓ जंबुद्दीवे णं दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए चउवीसं तित्थयरा होत्था। तंजहा—उसभ अजिय संभव अभिणंदण सुमइ पउमप्पह सुपास चंदप्पह सुविहि पुप्फदंत सीयल सिज्जंस वासुपुज्ज विमल अणंत धम्म संति कुंथु अर मल्लि मुणिसुव्वय णमि णेमि पास वड्ढमाणो य।

एएसिं चउवीसाए तित्थयराणं चउव्वीसं पुव्वभवया णामधेज्जा होत्था। तंजहा—

पढमेत्थ वइरणाभे, विमले तह विमलवाहणे चेव।
तत्तो य धम्मसीहे, सुमित्त तह धम्ममित्ते य॥ १॥
सुन्दरबाहू तह दीहबाहू, जुयबाहू लट्ठबाहू य।
दिण्णे य इंददत्ते, सुन्दर माहिंदरे चेव॥ २॥
सीहरहे मेहरहे वप्पी य सुदंसणे य बोद्धव्वे।
तत्तो य णंदणे खलु सिहगिरी चेव वीसइमे॥ ३॥
अदीणसत्तू संखे, सुदंसणे णंदणे य बोद्धव्वे।
इमीसे ओसप्पिणीए एए, तित्थयराणं तु पुव्वभवा॥४॥

अर्थ—इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में इस अवसर्पिणी काल में चौवीस तीर्थङ्कर हुए थे। उनके नाम इस प्रकार हैं—१ ऋषभदेव। २ अजितनाथ। ३ सम्भवनाथ। ४ अभिनन्दन। ५ सुमतिनाथ। ६ पद्मप्रभ। ७ सुपार्श्वनाथ। ८ चन्द्रप्रभ। ९ सुविधिनाथ, दूसरा नाम पुष्पदन्त। १० शीतलनाथ। ११ श्रेयांसनाथ। १२ वासुपूज्य। १३ विमलनाथ। १४ अनन्तनाथ। १५ धर्मनाथ। १६ शांतिनाथ। १७ कुंथुनाथ। १८ अरनाथ। १९ मल्लिनाथ। २० मुनिसुव्रत स्वामी। २१ नमिनाथ। २२ नेमिनाथ। २३ पार्श्वनाथ। २४ वर्द्धमान स्वामी, दूसरा नाम महावीर स्वामी। ये चौवीस तीर्थङ्कर हुए हैं।

(आगामी चौवीसी)

भरतक्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी के चौवीस तीर्थङ्करों के नाम गिनाते हुए कहा गया है:—

जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे आगामिस्साए उस्सप्पिणीए चउव्वीसं तित्थयरा भविस्संति। तंजहा—

महापउमे सूरदेवे, सुपासे य सयंपभे।
सव्वाणुभूई अरहा, देवस्सुए य होक्खइ ॥१॥
उदए पेढालपुत्ते य, पोट्टिले सत्तकित्ति य।
मुणिसुव्वए य अरहा, सव्वभावविऊ जिणे ।२।
अममे णिक्कसाए य णिप्पुलाए य णिम्ममे
चित्तउत्ते समाही य, आगामिस्सेण होक्खइ ।३।

संवरे जसोधरे अणियट्टी य विजए विमलेति य ।
देवोववाए अरहा, अणंतविजए इय ॥४॥
एए वुत्ता चउव्वीसं, भरहे वासम्मि केवली ।
आगामिस्सेण होक्खंति, धम्मतित्थस्स देसगा ॥५॥

—समवायांग सूत्र समवाय १५६

अर्थ—इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी काल में चौबीस तीर्थङ्कर होंगे। उनके नाम इस प्रकार होंगे —१ महापद्म। २ सूर्य देव। ३ सुपार्श्व। ४ स्वयंप्रभ। ५ सर्वानुभूति। ६ देवश्रुत। ७ उदय। ८ पेढालपुत्र। ९ पोट्टिल। १० शतकीर्ति। ११ मुनिसुव्रत। १२ अमम। १३ निष्कषाय। १४ निष्पुलाक। १५ निर्मम। १६ चित्रगुप्त। १७ समाधि। १८ संवर १९ यशोधर। २० अनिर्वर्तिक। २१ विजय। २२ विमल। २३ देवोपपात। २४ अनन्तविजय।

ये धर्म तीर्थ की स्थापना करने वाले धर्मोपदेशक चौवीस तीर्थङ्कर इस भरत क्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी काल में होवेंगे।

(ऐरवतक्षेत्र के तीर्थंकर)

ऐरवत क्षेत्र की वर्त्तमान चौवीसी के तीर्थङ्करों के नाम गिनाते हुए कहा है:—

जंबुद्दीवे दीवे एरवए वासे इमीसे ओसप्पिणीए चउव्वीसं तित्थयरा होत्था तंजहा—

चंदाणणं सुचंदं अग्गिसेणं च णंदिसेणं च ।
इसिदिण्णं बलहारिं वंदिमो सोमचंदं च ॥१॥

वंदामि जुत्तिसेणं अजियसेणं तहेव सिवसेणं ।
बुद्धं च देवसम्मं सययं णिक्खित्त सत्थं च ।२।
असंजलं जिणवसहं वंदे य अणंतयं अमियणाणीं ।
उवसंतं च धुयरयं वंदे खलु गुत्तिसेणं च ।।३।।
अइपासं च सुपासं देवेसरवंदियं च मरुदेवं ।
णिव्वाण गयं च धरं, खीणदुहं सामकोट्ठं च ।।४।।
जियरागमग्गिसेणं वंदे खीणरायमग्गिउत्तं च ।
वोक्कसिय पिज्जदोसं वारिसेणं गयं सिद्धिं ।।५।।

—समवायांग सूत्र समवाय १५९

अर्थ—इस जम्बूद्वीप के ऐरवतक्षेत्र मे इस अवसर्पिणी काल में चौवोस तीर्थङ्कर हुए थे। उनके नाम इस प्रकार है—१ चन्द्रानन। २ सुचन्द्र। ३ अग्निसेन। ४ नन्दीसेन। ५ ऋषिदिएण (ऋषिदत्त)। ६ बलधारी ७ सोमचन्द्र को हम वन्दना करते है। ८ युक्तिसेन (अपरनाम दीर्घबाहु या दीर्घसेन) ९ अजित सेन (अपरनाम शतायु) १० शिवसेन (अपरनाम सत्यसेन) ११ ज्ञानी देवशर्मा (अपरनाम श्रेयांस) इनको हम सदा वन्दना करते है।

१३ असंज्वलन। १४ जिनवृषभ (अपरनाम स्वयंजल) १५ अमितज्ञानी यानी सर्वज्ञ अनन्तक (अपरनाम सिंहसेन) १६ उपशान्त और कर्मरज से रहित गुप्तिसेन को हम वन्दना करते हैं।

१७ अति पार्श्व। १८ सुपार्श्व। १९ देवेश्वरों द्वारा वन्दित मरुदेव २० निर्वाण को प्राप्त धर। २१ दुःखों का विनाश करने

वाले श्याम कोष्ठ। २२ राग द्वेष के विजेता अग्निसेन (अपरनाम महासेन)। २३ रागद्वेष का क्षय करके सिद्धिगति को प्राप्त हुए वारिसेन। इन चौवीस तीर्थङ्करों को मैं वन्दना करता हूँ।

ऐरवत क्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी के चौवीस तीर्थङ्करों के नाम—

जंबुद्दीवे एरवए वासे आगमिस्साए उस्सप्पिणीए चउव्वीसं तित्थयरा भविस्संति। तंजहा—

सुमंगले य सिद्धत्थे, णिव्वाणे य महाजसे।
धम्मज्झए य अरहा आगमिस्साण होक्खइ ॥१॥
सिरिचंदे पुष्फकेऊ, महाचंदे य केवली।
सुयसागरे य अरहा, आगमिस्साण होक्खइ ॥२॥
सिद्धत्थे पुण्णघोसे य, महाघोसे य केवली।
सच्चसेणे य अरहा आगमिस्साण होक्खइ ॥३॥
सूरसेणे य अरहा, महासेणे य केवली।
सव्वाणंदे य अरहा, देवउत्ते य होक्खइ ॥४॥
सुपासे सुव्वए अरहा, अरहे य सुकोसले।
अरहा अणंतविजए आगमिस्सेण होक्खइ ॥५॥
विमले उत्तरे अरहा, अरहा य महाबले।
देवाणंदे य अरहा, आगमिस्सेण होक्खइ ॥६॥
एए वुत्ता चउव्वीसं, एरवयम्मि केवली।
आगमिस्साण होक्खंति, धम्म तित्थस्स देसगा ॥७॥

—समवायांग सूत्र समवाय १५९

अर्थ—इस जम्बूद्वीप के ऐरवत चेत्र में आगामी उत्सर्पिणी काल में चौवीस तीर्थङ्कर होगे। उनके नाम इस प्रकार होगे—१ सुमङ्गल। २ सिद्धार्थ अथवा अर्थ सिद्ध। ३ निर्वाण। ४ महायश। ५ धर्मध्वज। ६ श्रीचन्द्र। ७ पुष्पकेतु। ८ महाचन्द्र। ९ श्रुतसागर। १० सिद्धार्थ अथवा अर्थसिद्ध। ११ पूर्णघोष। १२ महाघोष। १३ सत्यसेन। १४ सूर्यसेन। १५ महासेन। १६ सर्वानन्द। १७ देवपुत्र। १८ सुव्रत अथवा सुपार्श्व। १९ सुकौशल। २० अनन्त विजय। २१ विमल २२ उत्तर। २३ महाबल। २४ देवानन्द।

धर्म तीर्थ की स्थापना करने वाले और धर्मोपदेशक ये चौवीस तीर्थङ्कर ऐरवत चेत्र में आगामी उत्सर्पिणी काल में होवेंगे।

७-महावीर के सार्थक नाम

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के तीन नाम किस प्रकार हुए ? सो बताते हुए कहा है:—

समणे भगवं महावीरे कासवगोत्ते । तस्स णं इमे तिण्णि णामधेज्जा एवं आहिज्जंति—अम्मा पिउसंतिए वद्धमाणे। सहसमुदिए (सह सम्मइए) समणे। भीमं भयभेरवं उरालं अचेलयं (अचलयं) परीसहं सहइ त्ति कट्टु देवेहिं से णामं कयं समणे भगवं महावीरे ।

—आचारांग अ० २४

अर्थ—श्रमण भगवान् महावीर स्वामी काश्यप गोत्र के थे। उनके तीन नाम इस प्रकार कहे जाते हैं:—

(१) वर्द्धमान—माता पिता ने उनका नाम वद्धमाण-वर्द्धमान रखा था।

(२) श्रमण—उनमें सहज स्वाभाविक रूप से अनेक गुण विद्यमान थे अतः स्वाभाविक गुणसमुदाय के कारण उनका दूसरा नाम समण-श्रमण हुआ।

(३) महावीर—अचेलकता अर्थात् नग्नता का कठोर परीषह-जिसे बड़े बड़े शक्तिशाली वीर पुरुष भी सहन नहीं कर सकते हैं, उसको तथा दूसरे भी भयंकर और कठोर परीषहों को भगवान् ने

समभाव पूर्वक सहन किया था। इस कारण से देवों ने उनका नाम "महावीर" रखा।

विवेचन–प्रश्न-परीषह किसे कहते हैं?

उत्तर—आपत्ति आने पर भी संयम में स्थिर रहने के लिए तथा कर्मों की निर्जरा के लिए जो शारीरिक और मानसिक कष्ट साधु साध्वियों को सहने चाहिए उन्हें परीषह कहते हैं। वे बाईस हैं—१ क्षुधा परीषह-भूख का परीषह। संयम की मर्यादानुसार निर्दोष आहार न मिलने पर साधु साध्वियों को भूख का कष्ट सहना चाहिए किन्तु संयम मर्यादा का उल्लंघन न करना चाहिए।

(२) पिपासा परीषह—प्यास का परीषह।

(३) शीत परीषह—ठण्ड का परीषह।

(४) उष्ण परीषह—गरमी का परीषह।

(५) दंशमशक परीषह—डांस और मच्छरों का तथा खटमल, चींटी, जूं आदि का परीषह।

(६) अचेल परीषह—शास्त्र मर्यादा के अनुसार परिमाण से अधिक वस्त्र न रखने से तथा आवश्यक वस्त्र न मिलने से होने वाला कष्ट।

(७) अरति परीषह—मन में अरति अर्थात उदासी से होने वाला कष्ट। संयम मार्ग में कठिनाइयों के आने पर उसमें मन न लगे और उसके प्रति अरति-अरुचि उत्पन्न हो तो धैर्य पूर्वक उसमें मन लगाते हुए अरति को दूर करना चाहिए।

स्त्री परीषह— संसार में स्त्रियाँ पुरुषों के लिए महती आसक्ति का कारण हैं। यदि वे अब्रत सेवन के लिए साधु से प्रार्थना करें तो भी साधु अपने ब्रह्मचर्य ब्रत मे दृढ़ रहे। विचलित न हो यह अनुकूल परीषह है।

(९) चर्या परीषह—ग्रामानुग्राम विचरते हुए विहार सम्बन्धी कष्ट।

(१०) निषद्या परीषह – स्वाध्याय आदि करने की भूमि में किसी प्रकार का उपद्रव होने पर होने वाला कष्ट निषद्या परीषह है।

(११) शय्या परीषह—रहने के स्थान अथवा संस्तारक (बिछौना) की प्रतिकूलता से होने वाला कष्ट।

(१२) आक्रोश परीषह—किसी के द्वारा धमकाया जाने पर या फटकारा जाने पर दुर्वचनों से होने वाला कष्ट।

(१३) वधपरीषह—लकड़ी आदि से पीटा जाने पर होने वाला कष्ट।

(१४) याचना परीषह—भिक्षा मांगने से होने वाला कष्ट।

(१५) अलाभ परीषह—इच्छित वस्तु के न मिलने पर होने वाला कष्ट।

(१६) रोग परीषह—रोग के कारण होने वाला कष्ट।

(१७) तृणस्पर्श परीषह—सोने के लिये बिछाये हुए तिनकों पर (सूखे घास आदि पर) सोते समय या मार्ग में चलते समय तृण आदि पैर में चुभ जाने से होने वाला कष्ट।

(१८) जल्ल परीषह—शरीर वस्त्र आदि में चाहे जितना मैल लग जाय किन्तु उद्वेग को प्राप्त न होना तथा स्नान की इच्छा न करना जल्ल (मल) परीषह कहलाता है।

(१९) सत्कार पुरस्कार परीषह-जनता द्वारा मान पूजा होने पर हर्षित न होते हुए समभाव रखना। गर्व न करना। मान पूजा के अभाव में खिन्न न होना सत्कार पुरस्कार परीषह है। (यह अनुकूल परीषह है)।

(२०) प्रज्ञा परीषह—अपने आप विचार करके किसी कार्य को करना प्रज्ञा है। प्रज्ञा होने पर उसका गर्व न करना प्रज्ञा परीषह है।

(२१) अज्ञान परीषह—अज्ञान के कारण होने वाला कष्ट।

(२२) दर्शन परीषह—सम्यग् दर्शन के कारण होने वाला परीषह अर्थात् दूसरे मत वालों की ऋद्धि तथा आडम्बर को देख कर भी अपने मत में दृढ़ रहना दर्शन परीषह है।

प्रश्न—'वर्द्धमान' शब्द का शब्दार्थ (व्युत्पत्त्यर्थ) क्या है ?

उत्तर—वर्धत्ते इति वर्द्धमान; अर्थात् जो वृद्धि को प्राप्त हो एवं जिससे धन धान्यादि की वृद्धि हो उसे 'वर्द्धमान' कहते हैं।

जब भगवान् महावीर स्वामी का जीव त्रिशला रानी की कुक्षि में आया तब उनके पिता राजा सिद्धार्थ के राज्य को, लक्ष्मी की, धन धान्य की एवं कुटुम्ब परिवार की सबकी वृद्धि हुई थी। इसलिए जब बालक का जन्म हुआ तब माता पिता ने उसका नाम 'वर्द्धमान' रखा था।

प्रश्न—'महावीर' शब्द का शब्दार्थ (व्युत्पत्त्यर्थ) क्या है ?

उत्तर—

विदारयति यत्कर्म, तपसा च विराजते।
तपो वीर्येण युक्तश्च, तस्माद् वीर इति स्मृतः॥

अर्थात्—जो आठ कर्मों का विदारण करे, तप के द्वारा विशेष शोभित हो एवं तप और वीर्य से युक्त हो उसे वीर कहते हैं। 'महांश्चासौ वीर इति महावीर' जो महान् वीर हो उसे महावीर कहते हैं।

प्रश्न—'श्रमण' शब्द का व्युत्पत्त्यर्थ क्या है ?

उत्तर—'श्रमु तपसि खेदे च' इस धातु से श्रमण शब्द बना है। इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है:—

श्राम्यति तपस्यति इति श्रमणः। श्रममानयति पञ्चेन्द्रियाणि मनश्चेति श्रमणः (स्था० ४ उ० ४)

श्राम्यति संसार विषय खिन्नो भवति तपस्यतीति वा श्रमणः।' (धर्म० अधि० २)

अर्थ—जो तपस्या में रत रहे एवं तपस्या द्वारा शरीर और कर्मों को कृश करे उसे श्रमण कहते हैं।

जो पाँच इन्द्रिय और मन को वश में रखे उसे श्रमण कहते हैं।

जो सांसारिक विषय वासना से खिन्न हो अर्थात् जो सांसारिक विषयवासना से विरक्त हो, उनका त्यागी हो तथा तपस्या में रत हो उसे श्रमण कहते हैं।
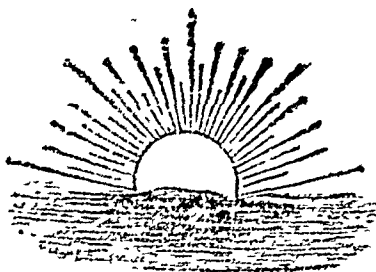
८—शरीर-सम्पदा

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के शरीर की विशिष्टता बताते हुए कहा गया है:—

सत्तहत्थुस्सेहे, समचउरंससंठाणसंठिए वज्जरिसहणाराय संघयणे अणुलोमवाउवेगे कंकग्गहणे, कवोयपरिणामे सउणिपोसपिट्ठंतरोरुपरिणए पउमुप्पलगंधसरिसणिस्सासे सुरभिवयणे छवि णिरायंके उत्तमपसत्थअइसेयणिरुवमपले जल्लमल्लकलंकसेयरयदोसवज्जियसरीरे णिरुवलेवे छाया उज्जोइयंगमंगे ॥

—औपपातिक समवसरणाधिकार

अर्थ—श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का शरीर सात हाथ ऊंचा, समचतुरस्र संस्थान से संस्थित, वज्रऋषभ नाराच संहनन युक्त, और अनुलोम–अनुकूल वायुवेग वाला था। कंकग्रहण कंकपक्षी के समान आहार को ग्रहण करने वाला और कपोत परिणाम था अर्थात जिस प्रकार कपोतपक्षी के शरीर मे कंकर का भी पाचन हो जाता है, उसी प्रकार उनके शरीर मे भी रूक्ष आदि सभी प्रकार के आहार का पाचन हो जाता था। पीठ, अन्तर और ऊरू–जंघा पक्षी के समान थी एवं पक्षी के समान उनका शरीर भाग (गुदा प्रदेश) अशुचि के लेप से रहित रहता था। उनके श्वास मे कमल के समान सुगन्ध आती थी एवं उनका मुख सुरभित सुगन्धित था। कान्ति युक्त एवं निरातंक-रोगरहित था। उत्तम

प्रशस्त अतिशय वाला था। उनके शरीर का रक्त और मांस दूध के समान श्वेत था। जल्ल-पसीना, मैल, कलङ्क, रज-धूल से रहित था। सब दोषों से रहित था। निरुपलेप-लेप रहित था। उनके शरीर के समस्त अङ्ग उपाङ्ग कान्तियुक्त और उद्योत-प्रकाशयुक्त थे।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के शरीर का शिखानख (चोटी से लेकर पैरों की अङ्गुलियों के नखों तक का) वर्णन करते हुए यों कहा गया है।

घणणिचयसुबद्धलक्खणुण्णयकूडागारणिभपिंडियग्गसिरए सामलिबोंडघणणिचयफोडियमिउविसयपसत्थसुहुमलक्खण-सुगंध-सुंदर-भुयमोयगभिंगणीलकज्जलपहिट्ठभमरगणणिद्धणिउरंबणिचियकुंचिय--पयाहिणावत्त--मुद्धसिरए, दाडिमपुप्फपगास-तवणिज्ज-सिरिस - णिम्मलसुणिद्धकेसंत - केसभूमि, घणणिच्चियछत्तागारुत्तमंगदेसे णिव्वणसमलट्ठमट्ठ-चंदद्धसमणिलाडे, उडुवइ-पडिपुण्ण-सोमवयणे, अल्लीणपमाणजुत्तसवणे सुसवणे, पीणमंसल--कवोलदेसभाए आणामियचावरुइलकिण्हब्भराइतणुकसिणणिद्धभमुहे, अवदालियपुंडरियणयणे, कोयासिय-धवलपत्तलच्छे, गरुलायतउज्जुतुङ्गणासे, उवचिय-सिलप्पवालबिंबफल-सण्णिभाधरोट्ठे, पंडुर-ससिसयलविमल णिम्मल-संख-गोखीर-फेणकुंद-दगरयमुणालियाधवलदंतसेढी अखंडदंते, अफुडियदंते, अविरलदंते, सुणिद्धदंते, सुजायदंते, एगदंतसेढीविव अणेग-

दंते, हुयवहणिद्धंतधोयतत्ततवणिज्जरत्ततलतालुजीहे, अव-ट्ठियसुविभत्तचित्तमसुमंसल-संठियपसत्थ- सद्दूलविउलहणुए, चउरंगुलसुप्पमाणे कंबुवर-सरिसगीवे, वरमहिसवराहसिंह-सद्दुल-उसभ-णागवर-पडिपुण्णविउलखंधे, जुगसण्णिभ-पीणरइय-पीवरपउट्ठे सुसंट्ठिय-सुसिलिट्ठ-विसिट्ठ-घण-थिर-सुबद्धसंधि, पुरवरफलिहवट्टियभूए, भूयइसर विउलभोग-आदाण-फलिह-उच्छूढ-दीहबाहू, रत्ततलोवइय-मउयमंसल-सुजाय-लक्खणपसत्थअछिद्दजालपाणि, पीवरकोमलवरं-गुलि-आयंब-तंब-तलिय-सुइरुइलणिद्धणखे चंदपाणिलेहे, सुरपाणिलेहे, संखपाणिलेहे, चक्कपाणिलेहे, दीसासोत्थिय-पाणिलेहे, चंदसूर-संख-चक्क-दिसा-सोत्थिय-पाणिलेहे, कणग-सिलातलुज्जल-पसत्थ-समतल -उवचियविच्छिण्ण-पिहुलवच्छे, सिरवच्छंकियवच्छे, अकरंडुय-कणगरुइय-णिम्मल-सुजाय-णिरुवहय-देहदारी, अट्ठसहस्सपडिपुण्ण-वरपुरिसलक्खणधरे सण्णयपासे, संगयपासे, सुंदरपासे, सुजायपासे, मियमाइयपीण-रइयपासे, उज्जुयसमिसहिय-जच्चतणु-कसिण-णिद्ध-आइज्ज-लडहरमणिज्ज रोमराइ, झस-विहग-सुजाय-पीणकुच्छि, झसोयरे, सुइकरणे, पउम-वियड-णाभि, गंगावत्त कपयाहेणावत्त-तरंग-भंगुर-रविकिरण-तरुण बोहियअकोसायंतपउमगंभीर-वियडणाभि, साहय-सोणंद-मूसल-दप्पण णिकरिय, वरकणगच्छरु-सरिस-वरवइर-वलिय-

मज्झे, पमुइय-वरतुरंग-सिहवरवट्टियकडि, वरतुरंगसुजायसु गुज्झदेसे, आइएणहउव्व णिरुवलेवे, वरवारण-तुल्ल-विक्क-म्म-विलसियगई, गयससणसुजाय-सण्णिभोरु, समुग्ग-णिम-ग्ग-गूढजाणू, एणिकुरुविंदावत्तवट्टाणुपुव्व-जंघे, संठिय-सुसिलिट्ठविसिट्ठगूढगुप्फे, सुपइट्ठिय-कुम्मचारुचलणे, अणु-पुव्वसुसंहयंगुलिए, उण्णय-तणुतंब-णिद्धणहे, रत्तुप्पलपत्त-पउमसुकुमालकोमलतले, अट्ठसहस्सवरपुरिसलक्खणधरे, णगणगर-मगरसागर-चक्कंक वरंकगमलंकियचलणे, विसिट्ठ-रूवे, हुयवहणिभूम-जलियतडिय-तरुण-रविकिरण-सरिसतेए।

—औपपातिक समवसरणाधिकार

अर्थ—भगवान् का मस्तक-श्रेष्ठ लोह को तपा कर खूब कूट कर घन पिण्ड बनाया हुआ कूट अर्थात् शिखर के समान था, समस्त शुभलक्षणों युक्त था। जिस प्रकार सामली वृक्ष का फल ऊपर से तो कठोर होता है किन्तु उसे फोड़ने पर अन्दर से कोमल निकलता है, इसी प्रकार भगवान् का मस्तक ऊपर से तो खूब कठोर था, किन्तु अन्दर से बड़ा कोमल था। उनके केश बहुत और शुभ लक्षणों से युक्त थे तथा सुगन्ध युक्त, उत्तम भुज-मोचक रत्न, भृङ्ग, नील-गुली, काजल, मिस्सी, मदोन्मत्त भ्रमरों के समूह के समान काले थे। स्निग्ध, निकुरंब वृक्ष के समूह के समान सघन, और दक्षिणावर्त-दाहिनी तरफ मुड़े हुए थे। दाडिम के फूल के समान लाल तपाये हुए सोने के समान मैल रहित निर्मल चिकनी केश उत्पन्न होने की भूमि थी अर्थात् ऐसी मस्तक की चमड़ी थी। इस प्रकार उनका मस्तक उत्तम छत्रके समान था। उनका ललाट

विषमपना रहित चिकना सुन्दर अर्द्धचन्द्राकार-आधे चन्द्रमा के समान गोलाकार एवं सौम्य था। उनके कान अत्यन्त सुन्दर और प्रमाण युक्त थे। कपोल भाग मांस से अतिपुष्ट था। नमाये हुए धनुष के समान टेढ़ी, मेघों की पक्ति के समान काली, सूक्ष्म और चिकनी भृकुटि थी। खिले हुए कमल के समान प्रफुल्लित आँखें थीं। खिले हुए कमल पर श्वेत पंख के समान आँख के भाँपण थे। मोटी और लम्बी एवं सीधी उन्नत नासिका (नाक) थी। प्रवाल और बिम्ब फल के समान लाल एवं पुष्ट ओष्ठ (होठ) थे। उनके दांत चन्द्रमा शंख, गाय के दूध के फेन, मोगरे का फूल, जलप्रवाह और कमलतन्तु के समान सफेद स्वच्छ एवं निर्मल थे। अखण्ड, अस्फुटित, अविरल-सघन और चिकने थे तथा एक दांत के समान सब दांतों की पंक्ति थी। अग्नि में तपाये हुए सोने के समान लाल तालुभाग और जिह्वा थी। सुन्दर तथा सदा एक समान रहने वाले उनके मुंह के बाल (केश) थे। मांस से उपचित, प्रशस्त एव विस्तीर्ण हनु (ठोडी) थी। चार अङ्गुल प्रमाण कबूतर के समान सुन्दर ग्रीवा (गर्दन) थी। उत्तम भैंसा, सुअर, शार्दूल-सिंह, बैल और हाथी के समान पुष्ट स्कन्ध-कन्धे थे। उनकी दोनों बाहु (भुजाएँ) गाड़ी के धूसरे के समान तथा नगर के दरवाजे की अर्गला (आगल) के समान लम्बी सुसंस्थित, चिकनी, पुष्ट, सुन्दर और स्थिर थी। उनकी हथेली लाल, मांस से पुष्ट, कोमल, प्रशस्त और शुभ लक्षणों से युक्त थी। उनका हाथ छिद्र रहित था अर्थात् अङ्गुलियां के बीच मे छिद्र नहीं थे। पुष्ट, कोमल और सुन्दर अङ्गुलियाँ थीं। हाथ की अङ्गुलियों के नख तांबेके समान लाल वर्ण वाले, सुन्दर और पतले थे। उनकी हथेली मे चन्द्ररेखा, सूर्य रेखा, शंख रेखा और दक्षिणावर्त्त स्वस्तिक की रेखा थी, इस प्रकार उनकी हथेली, चन्द्र-सूर्य शंख और दक्षिणावत स्वस्तिक की

रेखाओं से युक्त थी। उनका वक्षस्थल (छाती) सुवर्ण के शिलापट के समान विस्तीर्ण, विषमता रहित समतल, प्रशस्त, पुष्ट एवं मांस से उपचित था। हृदय पर श्रीवत्स-(स्वस्तिक) का चिन्ह था। करंडिये की लकड़ियों के समान दृष्टि में न आने वाली पसलियाँ थी। सुवर्ण के समान निर्मल, स्वच्छ और निरुपद्रव (रोगादि उपद्रव रहित) शरीर था। उत्तम पुरुष के एक हजार आठ लक्षणों से युक्त था। उनके पसवाड़े क्रमशः ढलते (उतरते) हुए, सुसंगत-मिले हुए, मांस से पुष्ट और सुन्दर थे। उनके वक्षस्थल (छाती) पर उज्ज्वल, सम-बराबर, सूक्ष्म पतली, सुन्दर, लावण्ययुक्त रमणीय रोमराजि (केशों की पंक्ति) थी। मछली और पक्षी के समान सुन्दर और पुष्ट कुक्षि थी। मछली के समान उदर (पेट) था। कमल के समान पवित्र और विकसित तथा गङ्गा नदी के समान विस्तीर्ण एवं दक्षिणावर्त गम्भीर तथा तरुण सूर्य की किरणों से खिले हुए कमल के समान विकसित नाभि थी। मूसल का मध्य भाग, दर्पण की मूठ का मध्यभाग, तलवार की मूठ का मध्यभाग, वज्र के मध्य-भाग के समान तथा उत्तम जाति के घोड़े और सिंह के कटि-भाग के समान उनका कटिभाग (कमर) था। उत्तम जाति के घोड़े के समान उनका गुह्य प्रदेश (पुरुषचिन्ह) गुप्त था। जिस प्रकार आकीर्ण जाति के उत्तम घोड़े का गुदा भाग लीद से लिप्त नहीं होता है उसी प्रकार उनका भी गुदा भाग निरुपलेप था अर्थात् विष्टा आदि से लिप्त नहीं होता था। पराक्रम शाली प्रधान हाथी के समान उनकी सुन्दर गति (गमन-चाल) थी। उत्तम हाथी की सूँड के समान पुष्ट एवं क्रमशः उतरती (ढलती) हुई उनकी जंघाएँ थी। डिब्बे के समान बन्द एवं गुप्त ढकनी युक्त घुटने थे। हिरन और कुरुविंद नामक पक्षी के समान गोल और क्रमशः उतरती हुई (ढलती हुई) पिण्डलियाँ थी। सुश्लिष्ट एवं सुसंस्थित और गुप्त

टकने (गिरिया) थे। पुष्ट कछुए के समान सुन्दर पैर थे। अनु० क्रम से सुसंस्थित-परस्पर मिली हुई पैर की अङ्गुलियाँ थीं। ताम्बे के समान लाल, उन्नत, चिकने और सुन्दर नख (पैरों की अङ्गुलियों के नख) थे। रक्तोपल (लाल कमल) के समान लाल और कमल के समान कोमल पैर के तलुए थे। वे पर्वत, मगरमच्छ समुद्र और चक्र आदि चिन्हों से चिन्हित थे। इस प्रकार उत्तम पुरुष के एक हजार आठ लक्षणों से युक्त थे। इस तरह शिखा से लेकर पैरों की अङ्गुलियो के नखों तक भगवान् के शरीर का रूप विशिष्ट और प्रज्वलित निर्धूम अग्नि के समान, बिजली के समान और तरुण सूर्य के समान तेजस्वी था।

९—शिविकाएँ
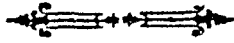
वर्तमान चौवीसी के चौवीस तीर्थङ्करों की शिविकाओं के नाम इस प्रकार हैं:—

एएसिं चउव्वीसाए तित्थयराणं चउव्वीसं सीयाओ होत्था तंजहा—

सीया सुदंसणा सुप्पभा य सिद्धत्थ सुप्पसिद्धा य ।
विजया य वेजयंती, जयंती अपराजिया चेव ॥१॥
अरुणप्पभ चंदप्पभ सूरप्पभ अग्गि सप्पभा चेव ।
विमला य पंचवण्णा, सागरदत्ता य णागदत्ता य ॥२॥
अभयकर णिव्वुइकरा मणोरमा तह मणोहरा चेव ।
देवकुरू उत्तरकुरा, विसाल चंदप्पभा सीया ॥३॥
एयाओ सीयाओ, सव्वेसिं चेव जिणवरिंदाणं ।
सव्वजगवच्छलाणं सव्वोउगसुभाए छायाए ॥४॥
पुव्विं ओक्खवित्ता माणुस्सेहिं साहट्ठु रोमकूवेहिं ।
पच्छा वहंति सीयं, असुरिंदसुरिंदणागिंदा ॥५॥
चलचवलकुंडलधरा, सच्छंद विउव्वियाभरणधारी ।
सुरअसुरवंदियाणं, वहंति सीयं जिणंदाणं ॥६॥

पुरओ वहंति देवा, णागा पुण दाहिणम्मि पासम्मि ।
पच्चत्थिमेण असुरा, गरुला पुण उत्तरे पासे ॥७॥

—समवायांग सूत्र समवाय १५७

अर्थ—इन चौबोस तीर्थङ्करों की चोवीस शिविकाएँ-पालखियाँ थीं। उनके नाम इस प्रकार थे-१ सुदर्शना। २ सुप्रभा। ३ सिद्धार्था। ४ सुप्रसिद्धा। ५ विजया। ६ वैजयंती। ७ जयंती। ८ अपराजिता। ९ अरुणप्रभा। १० चन्द्रप्रभा ११ सूर्यप्रभा। १२ अग्निप्रभा। १३ विमला। १४ पंचवर्णा। १५ सागरदत्ता। १६ नागदत्ता। १७ अभयंकरा। १८ निर्वृतिकरा। १९ मनोरमा। २० मनोहरा। २१ देवकुरा। २२ उत्तरकुरा। २३ विशाला २४ चन्द्रप्रभा।

सम्पूर्ण जगत के हितकारी सब तीर्थङ्करों को ये सब ऋतुओं मे सुख देने वाली, छाया युक्त यानो आतापना रहित पालखियां थीं।

जिनके रोम-रोम हर्षित हो रहे हैं, ऐसे मनुष्य इन पालखियो को पहले उठाते है और पीछे असुरेन्द्र सुरेन्द्र और नागेन्द्र उठाते हैं।

चञ्चल और चपल कुण्डलों को धारण करने वाले और स्वेच्छापूर्वक वैक्रिय किये हुए आभूषणों को धारण करने बाले सुरेन्द्र और असुरेन्द्र सुर और असुरा द्वारा वन्दित जिनेश्वरो की पालखियो को उठाते है।

देव आगे चलते है। नागकुमार देव दाहिनी तरफ चलते हैं। असुरकुमार जाति के देव पीछे को तरफ चलते हैं और सुवर्ण-कुमारादि देव उत्तर की तरफ यानी बाईं तरफ चलते हैं।

१०—आदिनाथ की दीक्षा

तए णं उसभे अरहा कोसलिए णयणमालासहस्सेहिं पिच्छिज्जमाणे पिच्छिज्जमाणे एवं जाव णिगच्छइ जहा उववाइए जाव आउलबोलबहुलं णभं करंते विणीयाए रायहाणीए मज्झंमज्झेणं णिगच्छइ आसियसंमज्जिय सित्तसुइगपुप्फोवयारकलियं सिद्धत्थवणविउलरायमग्गं करेमाणे हयगयरहपहकरेण पाइक्कचडकरेण य मंदं मंदं उद्धतरेणुयं करेमाणे करेमाणे जेणेव सिद्धत्थवणे उज्जाणे जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता असोगवरपायवस्स अहे सीअं ठावेइ, ठावइत्ता सीआओ पच्चोरुहइ पच्चोरुहित्ता सयमेवाभरणमल्लालंकारं ओमुअइ ओमुअइत्ता सयमेव * चउहिं मुट्ठीहिं लोअं करेइ लोअं करित्ता छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं आसाढाहिं णक्खत्तेणं जोगमुवागएणं उग्गाणं भोगाणं राइण्णाणं खत्तियाणं चउहिं सहस्सेहिं सद्धिं एगदेवदूसमादाय मुंडे भवित्ता आगाराओ अणगारियं पव्वइए ॥ —जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति दूसरा वक्षस्कार

---

* टिप्पणी—तीर्थङ्कर भगवान् पंचमुष्टि लोच करते हैं किन्तु भगवान् ऋषभदेव का चतुर्मुष्टि (चार मुष्टि) लोच कहा गया है।

अर्थ—तब हजारों लोगों के द्वारा देखे जाते हुए भगवान् ऋषभदेव राज महल से निकले। उववाई (औपपातिक) सूत्र में राजा कोणिक के निकलने का विस्तारपूर्वक वर्णन दिया गया है वैसा ही यहाँ भी समझ लेना चाहिए। यावत् जनकोलाहल से आकाश को गुंजाते हुए विनीता राजधानी के बीचोबीच होते हुए निकले और सिद्धार्थ वन की ओर जाने लगे। सिद्धार्थवन उद्यान के रास्ते को गन्धोदक छिड़क कर सुगन्धित बनाया था। कचरा निकाल कर साफ और पवित्र किया था और पुष्प डाल कर विशेष सुगन्धित और सुशोभित किया था। ऐसे राजमार्ग से चलते हुए सिद्धार्थवन उद्यान में श्रेष्ठ अशोक वृक्ष के नीचे आये। वहाँ अशोक वृक्ष के नीचे आकर शिविका (पालखी) को नीचे रख दिया। फिर भगवान् ऋषभ देव पालखी से नीचे उतरे। नीचे उतर कर स्वयमेव अपने हाथ से वस्त्र आभूषण आदि सब उतार दिये। फिर चार मुष्टि से अपने केशों का लोच किया। लोच करके

इसका खुलासा टीकाकार ने इस प्रकार किया है कि—भगवान् ऋषभदेव ने एक मुष्टि से दाढी मूछ के केशों का लोच किया था फिर शिर के केशों का तीन मुष्टि लोच किया, चौथी मुष्टि के केश बाकी रहे। वे भगवान् के कन्धों पर लटकते हुए और वायु के द्वारा हिलते हुए अत्यन्त शोभित हो रहे थे। यह देख कर शक्रेन्द्र ने भगवान् से प्रार्थना की कि हे भगवन्! ये केश बड़े ही सुन्दर लग रहे हैं। इसलिये इन्हे रहने दीजिये। शक्रेन्द्र की प्रार्थना को स्वीकार कर भगवान् ने उन केशों को रहने दिया इस लिए भगवान् ऋषभदेव का लोच चतुर्मुष्टि लोच ही हुआ।

किंवदन्ती है कि भगवान् के शिर पर जो केश रहे थे वे ठीक बीच में थे। इसलिए वे चोटी कहलाये। उसकी स्मृतिरूप हिन्दुलोग अपने शिर पर चोटी रखते हैं।

चौविहार बेला के तप से उत्तराषाढा नक्षत्र का चन्द्रमा के साथ योग मिलने पर उग्रकुल भोगकुल राजन्यकुल के चार हजार पुरुषों के साथ एक देवदूष्य वस्त्र सहित गृहस्थवास छोड़ कर अनगार धर्म स्वीकार किया अर्थात् दीक्षा अङ्गीकार की।

(दीक्षा की तैयारी)

भगवान ऋषभदेव की दीक्षा की तैयारी का वर्णन करते हुए विस्तार से कहा है:—

तए णं उसभे अरहा कोसलिए वीसं पुव्वसयसहस्साइं कुमारवासमज्झे वसइ, वसित्ता तेवट्ठिपुव्वसयसहस्साइं महारायवासमज्झे वसइ, तेवट्ठिपुव्वसयसहस्साइं महाराय-वासमज्झे वसमाणे लेहाइआओ गणियप्पहाणाओ सउण-रुअपज्जवसाणाओ बावत्तरिं कलाओ, चोसट्ठिं महिलागुणे, सिप्पसयं च कम्माणं तिण्णि वि पयाहिआए उवदिसइ, उवदिसित्ता पुत्तसयं रज्जसए अभिसिंचइ, अभिसिंचित्ता * तेसीइं पुव्वसयसहस्साइं महारायवासमज्झे वसइ, वसित्ता

* टिप्पणी—यहाँ मूल पाठ में पहले यह कहा गया है कि "भगवान् ऋषभदेव बीस लाख पूर्व तक कुमारवास (राज्याभिषेक किये बिना) में रहे और त्रेसठ लाख पूर्व महाराज पद में रहे" इसके आगे के पाठ में जब दोनों की सम्मिलित संख्या बतलाई है तब यह कहा गया है कि—'भगवान् ऋषभदेव तयासी लाख पूर्व तक महाराज पद में रहे।'

जे से गिम्हाणं पढमे मासे पढमे पक्खे चित्तबहुले तस्स णं चित्तबहुलस्स णवमी पक्खेणं दिवसस्स पच्छिमे भागे चइत्ता हिरण्णं चइत्ता सुवण्णं चइत्ता कोसं चइत्ता कोट्ठागारं चइत्ता वलं चइत्ता वाहणं चइत्ता पुरं चइत्ता अंतेउरं चइत्ता। विउलधण-कणग-रयण-मणिमोत्तिअ-संख-सिलप्प-वालरत्तरयणसंतसारसावइएज्जं विच्छड्डइत्ता विगोवइत्ता दाणं दाइआणं परिभाइत्ता सुदंसणाए सीआए सदेवमणुआसुराए परिसाए समणुगम्ममाणमग्गे संखिअचक्किअ-णंगलिय-मुहमंगलिअ-पूसमाणव-वद्धमाणग-आइक्खग लंख-मंख घंटिअ-गणेहिं ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं पियाहिं मणुण्णाहिं मणामाहिं ओरालाहिं कल्लाणाहिं सिवाहिं धण्णाहिं मंगलाहिं सस्सिरीआहिं हिययगमणिज्जाहिं हिययपल्हायणिज्जाहिं कण्णमणणिव्वुइकराहिं अपुणरुत्ताहिं

इन दोनों पाठों को देखने से यह शंका हो सकती है कि ये दो पाठ विरोधी कैसे आये ? किन्तु ऐसी शंका नहीं करनी चाहिये; क्योंकि वृत्तिकार ने इसका समाधान दिया है कि 'भाविनी भूतवदुपचारः' अर्थात् 'भावी में भूत का उपचार किया जा सकता है' इस नियम के अनुसार भगवान् ऋषभदेव महाराजा होने वाले थे इसलिए उनकी कुमारावस्था भी महाराजावस्थामें गिन ली गई है। इस अपेक्षा से 'तयासी लाख पूर्व वर्ष' महाराजावस्था कही गई है।

अतः मूल पाठ में पूर्वापर किसी प्रकार का विरोध नहीं है। दोनों पाठ सुसंगत है।

अट्ठसइआहिं वग्गूहिं अणवरयं अभिणंदंता य अभिथुणंता य एवं वयासी-जयजय णंदा! जयजय भद्दा! धम्मेणं अभीए परीसहोवसग्गेणं खंतिखमे भयभेरवाणं धम्मे ते अविग्घं भवउ तिकट्टु अभिणंदंति अ अभिथुणंति अ।

—जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति

कौशलिक भगवान् ऋषभदेव बीस लाख पूर्व वर्ष तक कुमार अवस्था में रहे, त्रेसठ लाख पूर्व वर्ष तक महाराज पद में रहते हुए प्रजा के हित के लिए गणित कला यावत् पक्षियों की बोली जानने की कला पर्यन्त पुरुष की बहत्तर कला, स्त्री की ६४ कला और एक सौ शिल्प कर्म, ये तीनों अच्छी तरह से बतलाये-सिखलाये। फिर भरत आदि सौ पुत्रों को सौ राज्यासनों पर स्थापित किया। इस तरह तयासी लाख पूर्व वर्ष तक महाराज पद में रह कर उष्णकाल के प्रथम मास में प्रथम पक्ष में चैत्र कृष्णा नवमी के दिन के पिछले पहर में सोना, चांदी, धान्य के कोठार, चतुरङ्गिणी सेना, वाहन, अन्तःपुर, विपुल धन कनक, रजत, मणि मोती, शंख, शिला, प्रवाल, रत्न आदि सब पदार्थों का त्याग कर तथा जिसको दान देना, उसे दान देकर, जिसके विभाग करना था उसका विभाग करके सुदर्शना नामक शिविका में बैठ कर मनुष्य असुर और सुर के समूह से घिरे हुए भगवान् ऋषभदेव घर से निकले। उस समय उनके आगे शंख बजाने वाले, लाङ्गलिक अर्थात सुवर्णमय हल धारण करने वाले भाट विशेष, मंगल शब्द उच्चारण करने वाले, पुष्यमाण अर्थात मागधिक, वर्द्धमानक अर्थात अपने कन्धों पर आदमी चढाने वाले, आख्यायक अर्थात् शुभाशुभ फल बतलाने वाले, लंख अर्थात् बांस के अग्रभाग पर

खेलने वाले, मंख अर्थात् हाथ में चित्र पट लिये हुए आगे आगे चल रहे थे। इष्टकारी, कान्तकारी, प्रिय, मनोज्ञ, सुन्दर, उदार, कल्याणकारी शान्तिकारी, निरुपद्रवकारी, समृद्धिकारी, मङ्गलकारी, सश्रीक, शोभायुक्त, हृदय को सुखकारी, हृदय को आल्हादित करने वाले, कानों को और मन को शान्ति पहुंचाने वाले, अनेक शुभ सूचक शब्द बोलते हुए वे कहने लगे कि हे भगवन्! आप जयवन्त होवें, विजयवन्त होवें, आप समृद्ध होवें आपके लिए कल्याण हो। आप धर्म में निर्भीक बनें, परीषह उपसर्गों के निर्भीक विजेता बनें, क्षमाशील बनें, भय भैरव शब्दों को निडरतापूर्वक सहन करने वाले बनें, धर्म में आपको किसी तरह का विघ्न न हो। इस प्रकार वे भगवान् का अभिनन्दन करते हुए स्तुति करने लगे।

११—कुमारावस्था में दीक्षित

कौन कौन से तीर्थङ्कर कुमारावस्था में दीक्षित हुए ? यह बताते हुए शास्त्रकार कहते हैं:—

पंच तित्थयरा कुमारवासमज्झे वसित्ता मुंडा जाव पव्वइया तंजहा–वासुपुज्जे मल्ली अरिट्ठनेमी पासे वीरे।

—ठाणांग ठाणा ५

अर्थ—पांच तीर्थङ्कर कुमारवास में रह कर यानी राज्य लक्ष्मी का भोग न करके मुण्डित यावत् प्रव्रजित हुए थे। यथा-वासुपूज्यजी, मल्लिनाथजी, अरिष्टनेमिजी, पार्श्वनाथजी और महावीर स्वामीजी।

प्रश्न—'कुमारवास' शब्द का क्या अर्थ है ?

उत्तर—'कुमारवास' शब्द का अर्थ टीका में इस प्रकार किया है—

"कुमाराणां अराजभावेन वासः कुमारवासः।"

अर्थात्—जिनका राज्याभिषेक नहीं हुआ है यानी जिन्होने राज्य लक्ष्मी का उपभोग नहीं किया है। ऐसी अवस्था मे रहना 'कुमारवास' कहलाता है। यहाँ 'कुमार' शब्द का ब्रह्मचारी अर्थ नहीं है क्योंकि भगवान् मल्लिनाथ और भगवान् अरिष्टनेमि ये दो तीर्थङ्कर ही ऐसे थे जिन्होंने विवाह नहीं किया था अपितु अविवाहित ही दीक्षित हुए थे।

(भ० अरिष्टनेमि का कुमारकाल)

अरिट्ठणेमी णं अरहा तिण्णि वाससयाइं कुमारवास-मज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए।

—समवायांग ३०० वां स०

अर्थ—बाईसवें 'तीर्थङ्कर भगवान् अरिष्टनेमि तीन सौ वर्ष कुमारावस्था में रह कर गृहस्थवास छोड़ कर मुण्डित एवं प्रव्रजित हुए।

जिन तीर्थङ्करों का राज्याभिषेक नहीं हुआ अर्थात् जिन्होंने राज्य स्वीकार किये बिना ही दीक्षा अङ्गीकार करली तब तक की उनकी अवस्था को 'कुमारवास-कुमारावस्था' कहा गया है।

१२—दान और फल

चौवीस तीर्थङ्करों को प्रथम भिक्षा देने वाले दाताओं के नाम गिनाते हुए कहा है:—

एएसिं चउव्वीसाए तित्थयराणं चउव्वीसं पढम-भिक्खादायारो होत्था। तंजहा—

सिज्जंस बंभदत्ते सुरिंददत्ते य इंददत्ते य।
पउमे य सोमदेवे माहिंदे तह सोमदत्ते य ॥१॥
पुस्से पुणव्वसू पुण्णचंद सुणंदे जयेय विजये य।
तत्तो य धम्मसीहे सुमित्त तह वग्गसीहे य ॥२॥
अपराजिय विस्ससेणे वीसइमे होइ उसभसेणे य।
दिण्णे वरदत्ते धणे बहुले य आणुपुव्वीए ॥३॥
एए विसुद्धलेस्सा जिणवरभत्तीइ पंजलिउडा उ।
तं कालं तं समयं पडिलाभेइ जिणवरिंदे ॥४॥
संवच्छरेण भिक्खा लद्धा उसभेण लोयणाहेण।
सेसेहिं बीयदिवसे, लद्धाओ पढमभिक्खाओ ॥५॥
उसभस्स पढमभिक्खा खोयरसो आसी लोयणाहस्स।
सेसाणं परमण्णं अमियरसोवमं आसी ॥६॥

सव्वेसिं जिणाणं जहियं लद्धाउं पढमभिक्खाउ ।
तहियं वसुधाराओ सरीरमेतीओ वुट्ठाओ ॥७॥

—समवायांग सूत्र समवाय १५७

अर्थ—इन चौवीस तीर्थङ्करों को प्रथम भिक्षा देने वाले चौवीस दाता थे। उनके नाम इस प्रकार हैं—१ श्रेयांस। २ ब्रह्मदत्त। ३ सुरेन्द्रदत्त। ४ इन्द्रदत्त। ५ पद्म। ६ सोमदेव। ७ माहेन्द्र। ८ सोमदत्त। ९ पुष्य। १० पुनर्वसु। ११ पुनर्नन्द। १२ सुनन्द। १३ जय। १४ विजय। १५ धर्मसिंह। १६ सुमित्र। १७ वर्गसिंह। १८ अपराजित। १९ विश्वसेन। २० ऋषभसेन। २१ दिण्ण-दत्त। २२ वरदत्त। २३ धन। २४ बहुल।

विशुद्ध लेश्या वाले और तीर्थङ्कर भगवान् की भक्ति से दोनों हाथ जोड़ कर खड़े हुए उपरोक्त चौवीस व्यक्तियों ने उस काल उस समय में तीर्थङ्करों को प्रतिलाभित किया अर्थात् आहार बहराया था।

लोकनाथ भगवान् ऋषभदेव स्वामी को दीक्षा लेने के एक वर्ष बाद भिक्षा मिली थी। शेष तेईस तीर्थङ्करों को दीक्षा लेने के दूसरे दिन प्रथम भिक्षा मिली थी।

लोकनाथ भगवान् ऋषभदेव स्वामी को प्रथम भिक्षा में इक्षुरस मिला था। शेष तेईस तीर्थङ्करों को अमृत रस के समान परमान्न यानी खीर मिली थी।

जब सब तीर्थङ्करों को प्रथमभिक्षाएं मिली थीं तब वहाँ पर शरीर परिमाण साढ़े बारह करोड़ सौनैयां की वृष्टि हुई थी।
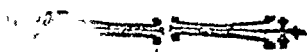
१३—अप्रतिबद्ध-विहार

भगवान् आदिनाथ चारों प्रतिबन्धों से रहित थे। वे प्रतिबन्ध कौन-कौन से हैं? यह बताते हुए गौतमस्वामी को भ० महावीर स्वामी कहते हैं:—

णत्थि णं तस्स भगवंतस्स कत्थइ पडिबंधे। से पडिबंधे चउव्विहे भवइ तंजहा—दव्वओ, खित्तओ, कालओ, भावओ। दव्वओ—इह खलु माया मे पिया मे भाया मे भगिणी मे जाव संबंधसंथुआ मे, हिरण्णं मे सुवण्णं मे जाव उवगरणं मे। अहवा समासओ—सच्चित्ते वा अच्चित्ते वा मीसए वा, दव्वजाए से एवं तस्स ण भवइ। खित्तओ—गामे वा णगरे वा अरण्णे वा खेत्ते वा खले वा गिहे वा अंगणे वा एवं तस्स ण भवइ। कालओ—थोवे वा लवे वा मुहुत्ते वा अहोरत्ते वा पक्खे वा मासे वा ऊऊ वा अयणे वा * संवच्छरे वा अण्णयरे वा दीहकालपडिबंधे एवं

---

* टिप्पणी—सात प्राण का एक स्तोक, सात स्तोक का एक लव, ७७ लव का एक मुहूर्त, तीस मुहूर्त का एक अहोरात्र, पन्द्रह अहोरात्र का एक पक्ष, दो पक्ष का एक मास, दो मास की एक ऋतु; तीन ऋतु का एक अयन और दो अयन का एक संवत्सर (वर्ष) होता है।

तस्स ण भवइ। भावओ-कोहे वा माणे वा माया वा लोहे वा भए वा हासे वा एवं तस्स ण भवइ।

—जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र

अर्थ—भगवान् ऋषभदेव स्वामी को एवं सभी तीर्थङ्करों को कहीं पर भी प्रतिबन्ध (यह मेरा है, मैं इसका हूँ इस प्रकार का ममत्व) नहीं होता है। वह प्रतिबन्ध चार प्रकार का होता है। जैसे कि—१ द्रव्य से, २ क्षेत्र से, ३ काल से और ४ भाव से। द्रव्य से प्रतिबन्ध इस प्रकार होता है। यह मेरी माता है, यह मेरा पिता है, यह मेरा भाई है, यह मेरी भगिनी (बहिन) है, यह मेरी भार्या है, यह मेरा पुत्र है, यह मेरी पुत्री है, यह मेरी पुत्रवधू है, ये मेरे परिचय वाले हैं, इत्यादि। तथा यह मेरी चाँदी है, यह मेरा सोना है, ये मेरे उपकरण हैं, इत्यादि। अथवा संक्षेप से द्रव्यप्रतिबन्ध के तीन भेद है-यथा-सचित्त, अचित्त और मिश्र। क्षेत्र की अपेक्षा प्रतिबन्ध इस प्रकार है—ग्राम, नगर, वन, खेत, खला, घर, आँगन आदि। काल की अपेक्षा प्रतिबन्ध इस प्रकार होता है—स्तोक, लव, मुहूर्त्त; अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर इत्यादि किसी प्रकार का दीर्घकाल का प्रतिबन्ध होता है" भाव से प्रतिबन्ध इस प्रकार होता है—क्रोध, मान, माया, लोभ इत्यादि।

तीर्थङ्कर भगवान् को यह चारों प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं होता है।

१४—दस स्वप्नों का फल
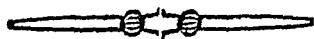
श्रमण भगवान् महावीर स्वामी द्वारा देखे गये दस स्वप्न और उनका फल—

समणे भगवं महावीरे छउमत्थकालियाए* अंतिम-राइयंसि इमे दस महासुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे तंजहा—

---

*श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने ये दस स्वप्न किस रात्रि में देखे थे ? इस विषय में कुछ की ऐसी मान्यता है कि—

छउमत्थकालियाए अंतिमराइयंसि।

अर्थात्—छद्मस्थ अवस्था की अन्तिमरात्रि में ये स्वप्न देखे थे अर्थात् जिस रात्रि में भगवान् ने ये स्वप्न देखे थे उसके दूसरे ही दिन भगवान् को केवलज्ञान उत्पन्न हो गया था।

कुछ की मान्यता ऐसी है कि 'अंतिम राइयंसि' इमे दस रात्रि के अन्तिम भाग में। यहाँ पर किसी 'रात्रिविशेष' का निर्देश नही किया गया है। इससे यह स्पष्ट नहीं होता है कि स्वप्न देखने के कितने समय बाद भगवान् को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ था। इस विषय में भिन्न भिन्न प्रतियों में जो अर्थ दिये गये हैं, वे ज्यों के त्यों यहाँ उद्धृत किये जाते हैं—

'समणे भगवं महावीरे छउमत्थकालियाए अंतिम राइयंसि इमे दस महासुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे।'

(१) अर्थ—ज्या रे श्रमण भगवन्त महावीर छद्मस्थपणा मां हतां त्यारे तेओ एक रात्रि ना छेल्ला प्रहर मां आ दस स्वप्नो जोइने जाग्या.

१ एगं च णं महाघोररूवदित्तधरं तालपिसायं सुमिणे पराजियं पासित्ता णं पडिबुद्धे। २ एगं च महं सुक्किल-पक्खगं पुंसकोइलगं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे।

(भगवती शतक १६ उद्देशा ६, जैन साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट अहमदाबाद द्वारा विक्रम संवत् १९९० में प्रकाशित गुजराती अनुवाद चतुर्थखण्ड पृष्ठ १९)

(२) श्रमण भगवन्त श्री महावीर देव छद्मस्थपणा नी रात्रिनइ अन्तिम भागे एह दस वक्ष्यमाण मोटा स्वप्न देखी ने जागई।

(हस्त लिखित भगवती ५७० पानो वाखो का टब्बा अर्थ पृष्ट ३८९। सेठिया जैन ग्रन्थालय बीकानेर की प्रति।

(३) 'अंतिम राइयंसि' रात्रेरन्तिमे भागे।

अर्थात् रात्रि के अन्तिम भाग मे।

(भगवती सूत्र, आगमोदय समिति द्वारा विक्रम संवत् १९७७ में प्रकाशित संस्कृत टीका पृष्ठ ७१०)

(४) 'अंतिम राइयंसि' अन्तिमा अन्तिम भागरूपा अवयवे समुदायोपराचात्। सा चासौ रात्रिका च इति अन्तिमरात्रिका तस्यां रात्रेरवसाने इत्यर्थः"।

अर्थात्-रात्रि के अन्तिम भाग में।

ठाणाङ्ग सूत्र ठाणा १० सूत्र ७५० पृष्ठ ५०१ आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशित संस्कृत टीका।

'अंतिमराइया' अन्तिमरात्रिका। अन्तिमा अन्तिमभाग-रूपा अवयवे समुदायोपचारात् सा चासौ रात्रिका चान्तिम रात्रिका-रात्रेरवसाने इत्यर्थः।

३एगं च महं चित्तविचित्तपक्खगं पुंसकोइलगं सुमिणे पासित्ता णं पडिवुद्धे। ४ एगं च णं महं दामदुगं सव्वरयणामयं सुमिणे पासित्ता णं पडिवुद्धे । ५ एगं च णं महं सेयं गोवग्गं सुमिणे पासित्ता णं पडिवुद्धे । ६ एगं च णं महं पउमसरं सव्वओ समंता कुसुमियं सुमिणे पासित्ता णं

अर्थात्-अन्तिम भागरूप जो रात्रि वह अन्तिम रात्रि है । यहां रात्रि के एक भाग को 'रात्रि' शब्द से कहा गया है। इस प्रकार अन्तिम भागरूप रात्रि अर्थ निकलता है अर्थात् रात्रि के अन्तिम भाग में।

(अभिधान राजेन्द्र कोप प्रथम भाग पृष्ठ १०९)

(६) 'अन्तिमराइ' रात्रि नो छेडो-छेल्लो भाग-पिछली रात ।

(शता-पं० मुनि श्री रत्नचन्द्रजी महाराज कृत अर्द्ध मागधी कोप प्रथम भाग पृष्ठ ३४)

(७) 'अतिम राइया' अर्थात् श्रमण भगवन्त श्री महावीर छद्मस्थाए छेल्ली रात्रि ना अन्ते।

(विक्रम सवत् १८८४ में हस्त लिखित सवालखी भगवती शतक १६ उ० ६)

(८) श्री श्रमण भगवन्त महावीर स्वामी छद्मस्थ अवस्था की अन्तिम रात्रि में दस स्वप्नो को देख कर जागृत हुए।

(पूज्य श्री अमोलक ऋषिजी म० कृत हिन्दी अनुवाद भगवती सूत्र पृष्ठ २२२४ तथा ठाणांग सूत्र पृष्ठ ८६४)

भिन्न भिन्न प्रतियो का अर्थ ऊपर लिखा गया है, । तत्वं केवलिगम्यम् ।

पडिबुद्धे । ७ एगं च णं महासागरं उम्मीवीइसहस्सकलियं भुयाहिं तिण्णं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे । ८ एगं च णं महं दिणयरं तेयसा जलंतं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे । ९ एगं च णं महं हरिवेरुलियवण्णाभे णं नियएणमंतेणं माणुसुत्तरं पव्वयं सव्वओ समंता आवेढियं परिवेढियं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे । १० एगं च महं मंदरे पव्वए मंदरचूलियाओ उवरिं सीहासणवरगयमत्ताणं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे ।

१ जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं महं घोररूवदित्त-धरं तालपिसायं सुमिणे पराजियं पासित्ता णं पडिबुद्धे । तण्णं समणेणं भगवया महावीरेणं मोहणिज्जे कम्मे मूलाओ उग्घाइए । २ जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं महं सुक्किलपक्खगं पुंसकोइलगं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे तण्णं समणे भगवं महावीरे सुक्कज्झाणोवगए विहरइ । ३ जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं महं चित्तविचित्तपक्खगं पुंसकोइलगं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे तण्णं समणे भगवं महावीरे ससमयपरसमयं चित्तविचित्तं दुवालसंगं गणिपिडगं आघवेइ पण्णवेइ परूवेइ निदंसेइ उवदंसेइ तंजहा—आयारं जाव दिट्ठिवायं । ४ जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं महं दामदुगं सव्वरयणामयं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे तण्णं समणे भगवं महावीरे दुविहं धम्मं पण्ण-

वेइ तंजहा–अगारधम्मं च अणगारधम्मं च । ५ जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं महं सेयं गोवग्गं सुमिणे पासित्ता णं पडिवुद्धे तण्णं समणस्स भगवओ महावीरस्स चाउवण्णाइण्णे संघे तंजहा–समणा समणीओ सावया साविआओ । ६ जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं महं 'पउमसरं सव्वओ समंता कुसुमियं सुमिणे पासित्ता णं पडिवुद्धे तण्णं समणे भगवं महावीरे चउव्विहे देवे पण्णवेइ तंजहा–भवणवासी वाणमंतरा जोइसवासी विमाणवासी । ७ जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं महं सागरं उम्मीवीइसहस्सकलियं भुयाहिं तिण्णं सुमिणे पासित्ता णं पडिवुद्धे तण्णं समणेणं भगवया महावीरेणं अणाईए अणवदग्गे दीहमद्धे चाउरंतसंसारकंतारे तिण्णे । ८ जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं महं तेयसा जलंतं सुमिणे पासित्ता णं पडिवुद्धे तण्णं समणस्स भगवओ महावीरस्स अणंते अणुत्तरे णिव्वाघाए णिरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवलवरणाणदंसणे समुप्पण्णे । ९ जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं महं हरिवेरुलियवण्णाभेणं नियएणमंतेणं माणुसुत्तरं पव्वयं सव्वओ समंता आवेढियपरिवेढियं सुमिणे पासित्ता णं पडिवुद्धे तण्णं समणस्स भगवओ महावीरस्स सदेवमणुयासुरे लोगे उराला कित्तिवण्णसद्दसिलोगा परिगुव्वंति इइ खलु समणे भगवं महावीरे इइ । १० जण्णं समणे भगवं महावीरे मंदरे पव्वए मंदरचूलियाए उवरिं

सीहासणवरगयमत्ताणं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे तण्णं समणे भगवं महावीरे सदेवमणुयासुराए परिसाए मज्झगए केवलिपएणत्तं धम्मं आघवेइ पएणवेइ परूवेइ दंसेइ निदंसेइ उवदंसेइ ।
—ठाणांगसूत्र दसवाँ ठाणा

अर्थ—श्रमण भगवान् महावीर स्वामी छद्मस्थ अवस्था कीं अन्तिम रात्रि मे इन दस महास्वप्नों को देख कर जागृत हुए। वे इस प्रकार है-१ पहले स्वप्न मे एक महा भयंकर रूप वाले ताड़ वृक्ष के समान पिशाच को पराजित किया हुआ देखा २—दूसरे स्वप्न में एक महान् सफेद पख वाले पुंस्कोकिल अर्थात् पुरुप जाति के कोयल को देखा। साधारणतया कोयल के पंख काले होते है किन्तु भगवान् ने स्वप्न मे सफेद पंख वाले कोयल को देखा। ३-तीसरे स्वप्न में एक महान् विचित्र रंगो के पुंस्कोकिल अर्थात् पुरुष जाति के कोयल को देखा। ४-चौथे स्वप्न म एक महान् सर्वरत्नमय मालायुगल अर्थात् दो मालाओ को देखा। ५-पांचवे स्वप्न मे एक विशाल सफेद गायों के झुण्ड को देखा। ६-छठे स्वप्न मे चारो तरफ से खिले हुए फूलो वाले एक विशाल पद्म सरोवर को देखा। सातवें स्वप्न मे हजारों लहरो और कल्लोलों से युक्त एक महान् सागर को भुजाओं से तिर कर पार पहुँचे ऐसा देखा। ८-आठवे स्वप्न में तेज से जाज्वल्यमान सूर्य को देखा। ९-नवनें स्वप्न में मानुष्योत्तर पर्वत को नील वैडूर्य मणि के समान अपने अन्तर्भाग को चारो तरफ से आवेष्टित परिवेष्टित देखा। १०-दसवें स्वप्न मे सुमेरु पर्वत की मंदरचूलिका नाम की चोटी पर श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठे हुए अपने आपको देखा। ये दस स्वप्न देख कर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी जागृत हुए।

इन दस स्वप्नों का फल इस प्रकार है—१ प्रथम स्वप्न में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने एक महान् भयङ्कर रूप वाले ताड़ वृक्ष के समान पिशाच को पराजित किया हुआ देखा। इसका फल यह है कि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने मोहनीय कर्म को समूल नष्ट किया। २- दूसरे स्वप्न में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने एक महान् सफेद पंख वाले पुंस्कोकिल को देखा। इसका फल यह है कि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने शीघ्र ही शुक्लध्यान ध्याया। ३-तीसरे स्वप्न में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने विचित्र पंख वाले एक महान् पुंस्कोकिल को देखा। इसका फल यह है कि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने विचित्र यानी विविध विचार युक्त स्वसमय-स्वसिद्धान्त और परसमय परसिद्धान्त को बतलाने वाली द्वादशाङ्गी रूप गणिपिटक का कथन किया, सामान्य रूप से प्रतिपादन किया, प्ररूपणा की, दर्शित किया, प्रदर्शित किया, भली प्रकार प्रदर्शित किया। द्वादशाङ्ग अर्थात् बारह अंगों के नाम इस प्रकार हैं—आचाराङ्ग सूयगडांग- (सूत्रकृताङ्ग) ठाणाङ्ग (स्थानाङ्ग) समवायाङ्ग, व्याख्या प्रज्ञप्ति (भगवती सूत्र) ज्ञाता धर्म कथांग, उपासक दशांग, अन्तगड दशांग (अन्तकृदशांग) अणुत्तरोववाई (अनुत्तरोपपातिक) प्रश्न व्याकरण, विपाकसूत्र दृष्टिवाद। ४-चौथे स्वप्न में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने सर्वरत्नमय एक महान् मालायुगल यानी दो मालाओं को देखा। इसका फल यह है कि श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने केवलज्ञानी होकर अगार धर्म-श्रावक धर्म और अनगारधर्म-साधुधर्म, यह दो प्रकार का धर्म फरमाया। ५-पांचवें स्वप्न में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने एक विशाल सफेद गायों के झुण्ड को देखा इसका फल यह है कि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के साधु साध्वी श्रावक श्राविका

१५—पच्चीस भावनाएँ

प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर के समय में पांच महाव्रतों की पच्चीस भावनाएँ।

पुरिमपच्छिमगाणं तित्थयराणं पंच जामस्स पणवीसं भावणाओ पण्णत्ताओ तंजहा—इरिआसमिई, मणगुत्ती, वयगुत्ती, आलोयभायणभोयणं, आयाणभंडमत्तणिक्खेवणा-समिई। अणुवीइभासणया, कोहविवेगे, लोहविवेगे, भय-विवेगे, हासविवेगे। उग्गह अणुण्णवणया, उग्गहसीमजाय-णया, सयमेव उग्गहं अणुगिण्हणया, साहम्मियउग्गहं अणुण्णविय परिभुंजणया, साहारणभत्तपाणं अणुण्णविय-परिभुंजणया। इत्थीपसुपंडग—संसत्तगसयणासणवज्जणया, इत्थीकहविवज्जणया, इत्थीणं इंदियाणमालोयणवज्जणया पुव्वरयपुव्वकीलियाणं अणणुसरणया, पणीयाहारविवज्ज-णया। सोइंदियरागोवरई, चक्खिदियरागोवरई, घाणिंदिय रागोवरई, जिब्भिदियरागोवरई, फासिंदियरागोवरई।

—समवायांग २५ वां सम०

अर्थ—प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव स्वामी और अन्तिम तीर्थंकर श्री वर्द्धमानस्वामी (महावीरस्वामी) के शासनकाल में

पांच महाव्रतों की पच्चीस भावनाएँ कही गई हैं। वे इस प्रकार हैं- १ ईर्यासमिति को देख कर यतनापूर्वक गमनागमनादि क्रियाएँ करना। २ मनगुप्ति-मन की अशुभ प्रवृत्ति को रोकना। ३ वचन-गुप्ति-वचन की अशुभ प्रवृत्ति को रोकना। ४ आलोकित भाजन भोजन-सदा उपयोग पूर्वक देख कर चौड़े मुख वाले पात्र में आहार पानी ग्रहण करना और प्रकाश वाले स्थान में बैठ कर भोजन करना ५ आदान भंडमात्र निक्षेपणा समिति-यतना पूर्वक भडोपकरण लेना और रखना। प्राणातिपात विरमण रूप पहले महाव्रत की ये पांच भावनाएँ हैं। ६ अनुवीचिभापणता-विचार कर बोलना। ७ क्रोधविवेक अर्थात् क्रोध का त्याग करना, क्रोध युक्त वचन न बोलना। ८ लोभविवेक अर्थात् लोभ का त्याग करना-लोभयुक्त वचन न बोलना। ९ भयविवेक अर्थात् भय का त्याग करना-भय के वश असत्य वचन न बोलना। १० हास्यविवेक अर्थात् हंसी का त्याग करना-हंसी के वश असत्य वचन न बोलना-मृपावाद विरमण रूप दूसरे महाव्रत की ये पाँच भावनाएँ है।

११ अवग्रह अनुज्ञानता अर्थात् मकान आदि में ठहरने के लिए उसके स्वामी की आज्ञा लेना। १२ अवग्रहसीमा परिज्ञान-उपाश्रय की सीमा खोल कर आज्ञा लेना। १३ स्वयमेव अवग्रह अनुग्रहणता-उपाश्रय की सीमा को स्वयं जान कर उसमें ठहरना १४ सम्भोगी साधुओं को उपाश्रय की सीमा बतला कर उसे भोगना। १५ गोचरी द्वारा लाये हुए आहार पानी को गुरु महाराज को या अपने से बड़े साधु को दिखला कर भोगना। अदत्तादानविरमण रूप तीसरे महाव्रत की ये पांच भावनाएँ है। १६ स्त्री, पशु, नपुंसक से युक्त उपाश्रय का त्याग करना। अर्थात् स्त्री-पशु-नपुंसक-रहित उपाश्रय मे ठहरना। १७ स्त्रीकथा न करना। १८ स्त्रियों के मुख, नाक, आँख कान आदि अंगो को विकार दृष्टि से न

देखना । १६ पहले भोगे हुए काम भोगों को याद न करना । २० अतिसरस और गरिष्ठ आहार का त्याग करना । मैथुन विरमण रूप चौथे महाव्रत की ये पाँच भावनाएँ हैं । २१ श्रोत्रेन्द्रिय के विषय मधुर शब्दों में राग न करना । २२ चक्षु इन्द्रिय के विषय सुन्दर रूप आदि में राग न करना । घ्राणेन्द्रिय के विषय सुगन्धित पदार्थों में राग न करना । २४ जिह्वा इन्द्रिय के विषय मनोज्ञ रस में राग न करना । २५ स्पर्शेन्द्रिय के विषय मनोज्ञ स्पर्श में राग न करना । परिग्रह विरमण रूप पाँचवें महाव्रत की ये पाँच भावनाएँ हैं (इस प्रकार पाँच महाव्रतों की ये पच्चीस भावनाएँ हैं ।)

१६—समभाव
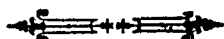
भगवान् ऋषभदेव के समभाव का वर्णन सूत्रकारों ने इस प्रकार किया है:—

उसभे णं अरहा कोसलिए संवच्छरं साहियं चीवरधारी होत्था, तेणं परं अचेलए।

जप्पभिइं च णं उसभे अरहा कोसलिए मुण्डे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वइए तप्पभिइं च णं उसभे अरहा कोसलिए णिच्चं वोसट्ठकाए चिअत्तदेहे जे केइ उवसग्गा उप्पज्जंति तंजहा-दिव्वा वा जाव पडिलोमा वा अणुलोमा वा। तत्थ पडिलोमा वेत्तेण वा जाव कसेण वा काए आउट्टेज्जा। अणुलोमा वा वंदेज्ज वा पज्जुवासेज्ज वा ते सव्वे सम्मं सहइ जाव अहियासेइ।

—जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति

अर्थ—भगवान् ऋषभदेव स्वामी एक वर्ष से कुछ अधिक (एक वर्ष और एक महीना) समय तक वस्त्रधारी रहे अर्थात उनके कन्धे पर देवदूष्य वस्त्र रहा तत्पश्चात् वे वस्त्ररहित बने।

जब से भगवान् ऋषभदेव स्वामी द्रव्य और भाव से मुण्डित बने अर्थात् दीक्षा अङ्गीकार की तब से काया के ममत्व

का त्याग कर दिया और शरीर से परीषह उपसर्ग को सहन करने वाले बने। परीषह उपसर्ग दो तरह के होते थे-प्रतिकूल और अनुकूल। बेंत,लकड़ी चाबुक आदि से मारना प्रतिकूल परीषह है और वन्दना नमस्कार करना, सत्कार सम्मान देना अनुकूल परीषह हैं। इन दोनों प्रकार के परीषहों को भगवान् समभाव से सहन करते थे। किसी प्रकार से क्रोधादि नहीं करते थे।

१७—ज्ञानियों की प्रतिष्ठा

केवलज्ञानी महापुरुषों की प्रतिष्ठा (आधारभूत अहिंसा) का वर्णन करते हैं:—

जे य बुद्धा अइक्कंता, जे य बुद्धा अणागया ।
संति तेसिं पइट्ठाणं, भूयाणं जगई जहा ॥

सूयगडांगसूत्र ११/३५

अर्थ—भूतकाल में जो अनन्त तीर्थङ्कर हो चुके हैं, उन सभी ने भावमार्ग मोक्ष का उपदेश दिया है तथा आगामी काल मे जो अनन्त तीर्थङ्कर होगे वे भी इसी भावमार्ग (मोक्ष) का उपदेश करेगे। तथा वर्तमान काल मे जो संख्यात तीर्थङ्कर हैं वे भी इसी मार्ग का उपदेश करते हैं। यह भावमार्ग ही अतीत अनागत तथा वर्त्तमान तीर्थङ्करों का आधार है। अथवा मोक्ष को शान्ति कहते है। वह मोक्ष सभी तीर्थङ्करों का आधार है परन्तु भावमार्ग के बिना उसकी प्राप्ति नहीं होती है इसलिए सभी तीर्थङ्करों ने भावमार्ग का उपदेश दिया है और तदनुसार स्वयं आचरण भी किया है। जिस प्रकार सब जीवो का आधार पृथ्वी है उसी प्रकार सब तीर्थङ्करों का आधार शान्ति (अहिंसा) है।

१८ छद्मस्थ और केवली का लक्षण

सत्तहिं ठाणेहिं छउमत्थं जाणेज्जा तंजहा—पाणे अइवाएत्ता भवइ, मुसं वइत्ता, भवइ अदिण्णमाइत्ता भवइ, सद्दफरिसरसरूवगंधे आसाइत्ता भवइ, पूयासक्कारमणुवूहेत्ता भवइ, इमं सावज्जं ति पण्णवेत्ता पडिसेवित्ता भवइ, णो जहावाई तहाकारी या वि भवइ।

सत्तहिं ठाणेहिं केवली जाणेज्जा तंजहा—णो पाणे अइवाइत्ता भवइ जाव जहावाई तहाकारी या वि भवइ।

—ठाणांग ठाणा ७

अर्थ—सात बातों से यह जाना जा सकता है कि अमुक व्यक्ति छद्मस्थ है अर्थात केवली नहीं है—

१—छद्मस्थ प्राणातिपात करने वाला होता है अर्थात उससे जानते अजानते कभी न कभी हिंसा हो जाती है। चारित्रमोहनीय के कारण वह चारित्र का पूर्ण पालन नहीं कर पाता है।

२—छद्मस्थ से कभी न कभी असत्य वचन बोला जा सकता है।

३—छद्मस्थ से अदत्तादान का सेवन भी हो जाता है।

४—छद्मस्थ जीव शब्द, रूप गन्ध, रस, स्पर्श का रागपूर्वक सेवन कर सकता है।

५—छद्मस्थ वस्त्रादि के द्वारा अपनी पूजा सत्कार का अनुमोदन करता है अर्थात् अपनी पूजा सत्कार होने पर वह प्रसन्न होता है।

६—छद्मस्थ आधाकर्म आदि को सावद्य जानते हुए और कहते हुए भी वह उनका सेवन करने वाला हो जाता है।

७—छद्मस्थ साधारणतया कहता कुछ है और करता कुछ है।

इन सात बातों से छद्मस्थ पहचाना जा सकता है।

ऊपर कहे हुए छद्मस्थ पहिचानने के सात बोलों से विपरीत सात बोलो से केवली पहिचाने जा सकते हैं। केवली हिंसा आदि नहीं करते हैं यावत् वे जैसा कहते है वैसा ही करते हैं।

विवेचन—ऊपर छद्मस्थ पहचानने के जो सात बोल कहे गये हैं, वे समुच्चय रूप से हैं। सभी छद्मस्थ एक सरीखे नहीं होते है। कोई कोई छद्मस्थ इस प्रकार के दोषों का सेवन कर लेते हैं। तीर्थङ्कर भगवान् को जब तक केवलज्ञान नहीं होता, तब तक वे भी छद्मस्थ ही कहलाते हैं; किन्तु वे किसी भी प्रकार के दोष का सेवन कदापि नहीं करते है।

केवली भगवान् के तो चारित्र मोहनीय कर्म का सर्वथा क्षय हो जाता है। इसलिए वे मूल गुण और उत्तर गुण सम्बन्धी दोषों का सेवन नहीं करते है। उनका संयम सर्वथा निरतिचार होता है।

१९-आदिजिन को कैवल्य

भ० आदिजिन को केवलज्ञान की प्राप्ति कैसे कब कहाँ और किस अवस्था में हुई ? यह बताते हुए शास्त्रकार कहते हैं:—

से णं भगवं वासावासवज्जं हेमंत-गिम्हासु गामे एगराईए णगरे पंचराइए ववगयहाससोगअरइरइभयपरित्तासे णिम्ममे णिरहंकारे लहुभूए अगंथे वासीतच्छणे अदुट्ठे चंदणाणुलेवणे अरत्ते लेट्ठुम्मि कंचणम्मि अ समे इहलोएपरलोए अपडिबद्धे जीवियमरणे णिरवकंखे संसारपारगामी कम्मसंघणिग्घायणट्ठाए अब्भुट्ठिए विहरइ।

तस्स णं भगवंतस्स एएणं विहारेणं विहरमाणस्स एगे वाससहस्से विइक्कंते समाणे पुरिमतालस्स णगरस्स बहिया सगडमुहंसि उज्जाणंसि, णग्गोहवरपायवस्स अहे, झाणंतरियाए वट्टमाणस्स फग्गुणबहुलस्स एक्कारसीए पुव्वण्हकाल समयंसि, अट्ठमेणं भत्तेणं अपाणएणं, उत्तरासाढा णक्खत्तेणं जोगमुवागएणं, अणुत्तरेणं णाणेणं, अणुत्तरेणं दंसणेणं, अणुत्तरेणं चरित्तेणं, अणुत्तरेणं तवेणं, बलेणं वीरिएणं आलएणं विहारेणं भावणाए खंतीए गुत्तीए मुत्तीए तुट्ठीए अज्जवेणं मद्दवेणं लाघवेणं सुचरिय सोवचिय-

फलणिव्वाणमग्गेणं अप्पाणं भावेमाणस्स, अणंते अणुत्तरे णिव्वाघाए णिरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवलवरणाणदंसणे समुप्पण्णे. जिणे जाए केवली सव्वण्णू सव्वदरिसी णेरइय-तिरियणरामरस्स लोगस्स पज्जवे जाणइ पासइ तंजहा—आगइं गइं ठिइं उववायं भुत्तं कडं पडिसेवियं आवीकम्मं रहोकम्मं तं तं कालं मणवयकायजोगे एवमाइं जीवाण वि सव्वभावे अजीवाण वि सव्वभावे मोक्खमग्गस्स विसुद्ध-तराए भावे जाणमाणे पासमाणे, एस खलु मोक्खमग्गे मम अण्णेसिं च जीवाणं हियसुहणिस्सेअसकरे सव्वदुक्खवि-मोक्खणे परमसुहसमाणणे भविस्सइ ॥

—जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र दूसरा वक्षस्कार

अर्थ—भगवान् ऋषभदेव स्वामी वर्षा काल (चतुर्मास) को छोड़ कर शेष हेमन्त ऋतु (शीतकाल) और ग्रीष्म ऋतु (उष्णकाल) में, इन आठ मास में छोटे गाँव मे एक रात्रि और नगर मे पांच रात्रि से अधिक नहीं ठहरते थे। वे भगवान् हास्य, शोक, अरति, रति, भय और परित्रास से रहित थे। वे ममत्व रहित थे, अहंकार रहित थे, लघुभूत थे, वे अग्रन्थ थे अर्थात् वाह्य और आभ्यन्तर परिग्रह से रहित थे। यदि कोई उन्हें वसूले से (कुल्हाड़ी से) छेदन करे तो भी उस पर द्वेष नहीं करते थे। इसी तरह यदि कोई उनके चन्दन लगा कर पूजा सत्कार करे तो उस पर राग भी नहीं करते थे। सोना और मिट्टी दोनों में समान भाव रखते थे। इस लोक और परलोक में वे प्रतिबन्ध रहित थे। अर्थात् उन्हें इस मनुष्य भव सम्बन्धी सुखों की और परभव सम्बन्धी

स्वर्गलोक के सुखों की वांच्छा नहीं थी। वे जीवन और मरण की वांच्छा रहीत थे अर्थात् इन्द्र नरेन्द्रादि द्वारा पूजा प्राप्त होने पर वे अधिक जीने की इच्छा नहीं करते थे और भयंकर से भयंकर परीषह उपसर्ग आने पर वे शीघ्र मर जाने की इच्छा नहीं करते थे। वे संसार पारगामी थे। वे कर्मसमूह को नष्ट करने में निरन्तर उद्योग करते हुए विचरते थे।

इस प्रकार विचरण करते हुए भगवान् के एक हजार वर्ष व्यतीत हो गये। एक समय भगवान् पुरिमताल नगर के बाहर शकट-मुख उद्यान मे वट वृक्ष के नीचे शुक्लध्यान ध्याते हुए बैठे थे। चौविहार तेले की तपस्या थी उस समय फाल्गुन कृष्ण एकादशी के दिन के पूर्व भाग में उतराषाढा नक्षत्र का चन्द्रमा के साथ योग होने पर प्रधान ज्ञान दर्शन चारित्र तप बल वीर्य, निर्दोष वसति-विहार, उत्तम भावना, क्षमा, गुप्ति, निर्लोभता, तुष्टि-इच्छा निवृत्ति आर्जव-(सरलता) मार्दव-(कोमलता) लाघव, सुचरित-(सदाचार) एवं सोपचित-(पुष्ट) निर्वाण मार्ग मे अपनी आत्मा को भावित करते हुए भगवान् ऋषभदेव को अनन्त अनुत्तर व्याघात रहित, आवरण रहित, कृत्स्न, प्रतिपूर्ण केवलज्ञान केवल दर्शन उत्पन्न हुए। तब वे पूर्ण रूप से राग द्वेष के विजेता हुए, केवल-ज्ञानी, सर्वज्ञ सर्वदर्शी हुए। वे नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य, देवलोक इन चारो गतियों के सब पर्यायों को जानने देखने लगे। वे सब जीवो की आगति, गति, स्थिति, उपपात, भुक्त, (खाया हुआ) कृत (किया हुआ), प्रतिसेवित (आचरण किया हुआ), प्रकट

में किये हुए कार्य और गुप्त एकान्त में छुपा कर किये हुए कार्य सबको जानने देखने लगे। इसी प्रकार वे मन वचन काया के योगों को, जीवों के सब भावों को और अजीवों के सब भावों को अर्थात् अजीवों के रूपादि सब धर्मों को तथा मोक्षमार्ग के विशुद्ध भावों को जानने देखने लगे कि यह मोक्षमार्ग मुझे और अन्य सब जीवों को हितकारी, सुखकारी, निःश्रेयसकारी,-कल्याणकारी, सब दुःखों से छुड़ाने वाला और निर्वाण सुख को देने वाला होगा।

२०—देवेन्द्रों का आगमन
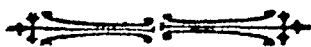
तीन कारणों से देवेन्द्र मनुष्यलोक में आते हैं:—

तिहिं ठाणेहिं देविंदा माणुसं लोगं हव्वमागच्छंति तंजहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु।

—स्थानांग सूत्र ठाणा ३

अर्थ—तीन कारणों से देवेन्द्र मनुष्य लोक में शीघ्र आते हैं। जैसे कि-जब अरिहंत (तीर्थङ्कर) भगवान् जन्म लेते हैं तब, जब अरिहन्त भगवान् दीक्षा लेते हैं तब और जब अरिहन्त भगवान् को केवलज्ञान केवलदर्शन उत्पन्न होता है तब देवकृत महोत्सव मनाते समय देवेन्द्र इस मनुष्यलोक में आते हैं।

विवेचन-प्रश्न-अरिहन्त किसे कहते हैं?

उत्तर-कर्म आठ हैं-१ ज्ञानावरणीय, २ दर्शनावरणीय, ३ वेदनीय, ४ मोहनीय, ५ आयुष्य, ६ नाम, ७ गोत्र, ८ अन्तराय। इन आठ कर्मों मे से ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय इन चार कर्मों को घाती कर्म कहते हैं और बाकी चार (वेदनीय, आयुष्य, नाम गोत्र) कर्मों को अघाती कर्म कहते हैं। चार सर्वघाती कर्म रूप शत्रुओं को नाश करने वाले महापुरुष,

अरिहन्त कहलाते है। ये देवेन्द्रकृत अष्ट महाप्रातिहार्य से युक्त होते हैं। केवलज्ञान और केवलदर्शन से तीन लोक को और तीन काल की बात को जानते देखते है। ऐसे हितोपदेशक सर्वज्ञ भगवान् अरिहन्त कहलाते हैं।

घाती कर्म रूप शत्रु पर विजय प्राप्त करने वाले महापुरुष वन्दना नमस्कार पूजा और सत्कार के योग्य होते हैं तथा सिद्ध गति के योग्य होते हैं इसलिए भी वे अरहन्त कहलाते हैं।
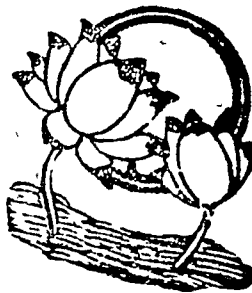
३४-अतिशय

तीर्थङ्कर भगवान् के चौंतीस अतिशयों का वर्णन करते हुए कहा गया है:—

चोतीसं बुद्धाइसेसा पएणत्ता तंजहा-(१) अवट्ठिए केसमंसुरोमणहे (२) णिरामया णिरुवलेवा गायलट्ठी (३) गोक्खीरपंडुरे मंससोणिए, (४) पउमुप्पलगंधिए उस्सासणिस्सासे (५) पच्छएणे आहारणीहारे अदिस्से मंसचक्खुणा (६) आगासगयं चक्कं (७) आगासगयं छत्तं (८) आगासगयाओ सेयवरचामराओ (९) आगास-फालियामयं सपायपीढं सीहासणं (१०) आगासगओ कुडभी-सहस्स परिमंडियाभिरामो इंदज्झओ पुरओ गच्छइ (११) जत्थ जत्थ वि य णं अरहंता भगवंतो—चिट्ठंति वा णिसीयंति वा तत्थ तत्थ वि य णं तक्खणादेव संछएणपत्त-पुप्फपल्लवसमाउलो सच्छत्तो सज्झओ सघंटो सपडागो असोगवरपायवो अभिसंजायइ । (१२) ईसिं पिट्ठओ मउडठाणम्मि तेयमंडलं अभिसंजायइ अंधकारे वि य णं दस दिसाओ पभासेइ । (१३) बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे । (१४) अहोसिरा कंटया जायंति । (१५) उऊविवरीया

सुहफासा भवंति (१६) सीयलेणं सुहफासेणं सुरभिणा मारुएणं जोयणपरिमंडलं सव्वओ समंता संपमज्जिज्जइ। (१७) जुत्तफुसिएणं मेहेण य णिहयरयरेणुयं किज्जइ। (१८) जलथलयभासुरपभूएणं विंटट्ठाइणा दसद्धवण्णेणं कुसुमेणं जाणुस्सेहप्पमाणमित्ते पुप्फोवयारे किज्जइ। (१६) अमणुण्णाणं सद्दफरिसरसरूवगंधाणं अवकरिसो भवइ। (२०) मणुण्णाणं सद्दफरिसरसरूवगंधाणं पाउब्भावो भवइ। (२१) पच्चाहरओ वि य णं हिययगमणीओ जोयण नीहारो सरो। (२२) भगवं च णं अद्धमागहीए भासाए धम्ममाइक्खइ। (२३) सा वि य णं अद्धमागही भासा भासिज्जमाणी तेसिं सव्वेसिं आरियमणारियाणं दुप्पयचउप्पयमियपसुपक्खिसरीसिवाणं अप्पणो हियसिवसुहयभासत्ताए परिणमइ। (२४) पुव्वबद्धवेरा वि य णं देवासुरनागसुवण्णजक्खरक्खसकिण्णरकिंपुरिसगरुलगंधव्वमहोरगा अरहओ पायमूले पसंतचित्तमाणसा धम्मं णिसामंति। (२५) अण्णउत्थियपावयणिया वि य णमागया वंदंति। (२६) आगया समाणा अरहओ पायमूले णिप्पलियवयणा हवंति। (२७) जओ जओ वि य णं अरहंतो भगवंतो विहरंति तओ तओ वि य णं जोयणपणवीसाएणं ईई ण भवइ। (२८) मारी ण भवइ। (३१) अइवुट्ठी ण भवइ। (३२) अणावुट्ठी ण

दुब्भिक्खं ण भवइ। (३४) पुव्वुप्पण्णा वि
। वाही खिप्पामेव उवसमंति।

—समवायांग ३४ वाँ सम०

अर्थ—तीर्थङ्कर भगवान् के चौतीस अतिशय कहे गये हैं—
१ तीर्थङ्कर भगवान् के मस्तक और दाढी मूछ के केश बढ़ते नहीं हैं। उनके शरीर के रोम और नख भी नहीं बढ़ते हैं। सदा प्रमाणोपेत अवस्थित रहते हैं। २ तीर्थंकर भगवान् का शरीर सदा नीरोग रहता है और मल आदि अशुचि का लेप नहीं लगता है। ३ उनके शरीर का मांस और रक्त गाय के दूध की तरह सफेद होते हैं। ४ उनके श्वासोच्छ्वास में पद्म और नील कमल की तथा पद्मक और उत्पलकुष्ट गन्ध द्रव्य विशेष का सुगन्ध आती है। ५ उनका आहार और नीहार–मलमूत्रादि प्रच्छन्न होता है, चर्म चक्षु वालों को दिखाई नहीं देता है। ६ तीर्थंकर भगवान् के आगे आकाश में धर्मचक्र रहता है। ७ उनके ऊपर तीन छत्र रहते हैं। ८ उनके तरफ आकाश में श्रेष्ठ सफेद चंवर विंजाते रहते हैं। ९ तीर्थंकर भगवान् के लिए आकाश के समान स्वच्छ स्फटिक मणियों का बना हुआ पाद पीठिका सहित सिंहासन होता है। १० आकाश में बहुत ऊचा छोटी छोटी हजारों पताकाओं से परिमण्डित इन्द्रध्वज तीर्थंकर भगवान् के आगे आगे चलता है। ११ जहाँ जहाँ पर तीर्थंकर भगवान् खड़े रहते हैं या बैठते हैं वहाँ वहाँ पर उसी समय पत्र पुष्प और पल्लवों से सुशोभित छत्र ध्वजा घण्टा और पताका सहित अशोक वृक्ष प्रकट होकर उन पर छाया करता है। १२ तीर्थंकर भगवान् के कुछ पीछे मस्तक के पास अत्यन्त देदीप्यमान भामण्डल रहता है वह अन्धकार में भी दसों दिशाओं को प्रकाशित करता है। १३ जहाँ भगवान् विचरते हैं वहाँ का भूमि-

भाग बहुत समतल और रमणीय हो जाता है। १४ जहाँ तीर्थंकर भगवान् विचरते हैं वहाँ कांटे अधोमुख हो जाते है। १५ जहाँ तीर्थंकर भगवान् विचरते है वहाँ ऋतुएँ सुखस्पर्श वाली यानी अनुकूल हो जाती है। १६ जहाँ तीर्थंकर भगवान् विचरते हैं वहाँ शीतल सुखस्पर्श वाले सुगन्धित संवर्तक वायु से चारों तरफ एक-एक योजन तक क्षेत्र शुद्ध (साफ) हो जाता है। १७ जहाँ तीर्थंकर भगवान् विचरते हैं वहाँ मेघ आवश्यकतानुसार बरस कर आकाश और पृथ्वी पर रही रज को शान्त कर देते है। १८ जहाँ तीर्थंकर भगवान् विचरते हैं, वहाँ देवकृत पुष्पवृष्टि होती है। ये पुष्प पांच वर्णों के होते है (अचित्त होते है, किन्तु) देखने मे ऐसे मालुम होते हैं, मानो जल मे उत्पन्न होने वाले कमल आदि और स्थल मे उत्पन्न होने वाले चम्पा आदि पुष्प हो। यह पुष्पवृष्टि जानुपरिमाण अर्थात् घुटने तक होती है। सारे पुष्प अपने विंट (डंठल) पर खड़े रहते हैं अर्थात् उनका विंट नीचे रहता है। १९ जहाँ तीर्थंकर भगवान् विचरते है वहाँ अमनोज्ञ शब्द स्पर्श रस रूप और गन्ध नहीं रहते हैं। २० जहाँ तीर्थंकर भगवान् विचरते हैं वहाँ मनोज्ञ शब्द स्पर्श रस रूप और गन्ध प्रकट होते हैं। २१ उपदेश देते समय तीर्थंकर भगवान् का स्वर अतिशय हृदय स्पर्शी होता है और एक योजन तक सुनाई देता है। २२ तीर्थंकर भगवान् अर्द्ध-मागधी भाषा मे धर्मोपदेश फरमाते है। २३ तीर्थंकर भगवान् के मुख से फरमाई हुई उस-अर्द्धमागधी भाषा में यह विशेषता है कि उसको आर्य, अनार्य, द्विपद चतुष्पद मृग सरीसृप-सांप आदि सब अपना अपनी भाषा समझते है और वह उन्हें हितकारी कल्याण-कारी एवं सुखकारी प्रतीत होती है २४ पहले से जिनमें वैर बंधा हुआ है ऐसे वैमानिक देव असुरकुमार नागकुमार, सुपर्णकुमार यक्ष राक्षस किन्नर किंपुरुष गरुड़ गन्धर्व और महोरग आदि सब

तीर्थंकर भगवान् के चरणों में आकर अपना वैर भूल जाते हैं २५ तीर्थंकर भगवान् के पास आये हुए अन्यतीर्थिक भी उन्हें वन्दना करते हैं। २६ तीर्थंकर भगवान् के चरणों में आते ही वे अन्यतीर्थिक निरुत्तर हो जाते हैं। २७ जहाँ जहाँ तीर्थंकर भगवान् विचरते हैं, वहाँ वहाँ पर पच्चीस योजन यानी एक सौ कोस के अन्दर ईति नहीं होती है अर्थात् चूहे आदि जीवों से धान्य को उपद्रव नहीं होता है। २८ मारी- जनसंहारक प्लेग आदि रोग नहीं होते हैं। २९-स्वचक्र का भय यानी अपने राज्य की सेना से उपद्रव नहीं होता है। ३०-परचक्र का भय यानी दूसरे राजा की सेना का उपद्रव नहीं होता है। ३१-अतिवृष्टि अर्थात आवश्यकता से अधिक वर्षा नहीं होती है। ३२-अनावृष्टि अर्थात वर्षा का अभाव नहीं होता है। ३३-दुर्भिक्ष-दुष्काल नहीं होता है। ३४-पहले से उत्पन्न हुए हुए उत्पात और व्याधियाँ शीघ्र ही शान्त हो जाती हैं।

इन चौतीस अतिशयों में से दूसरे से पाँचवें तक के चार अतिशय तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म से ही होते हैं। इक्कीसवें से चौतीसवें तक ये चौदह और भामण्डल ये पन्द्रह अतिशय घाती कर्मों के सर्वथा क्षय होने पर प्रकट होते हैं। शेष पन्द्रह अतिशय देवकृत होते हैं।

२२—दस अनुत्तर

केवलिस्स णं दस अणुत्तरा पण्णत्ता तंजहा-अणुत्तरे णाणे अणुत्तरे दंसणे अणुत्तरे चरित्ते, अणुत्तरे तवे अणुत्तरे वीरिए अणुत्तरा खंती, अणुत्तरा मुत्ती, अणुत्तरे अज्जवे अणुत्तरे मद्दवे अणुत्तरे लाघवे ।—ठाणांग सूत्र दसवां ठाणा

अर्थ—दूसरी कोई वस्तु जिससे बढ़ कर न हो अर्थात् जो सब से बढ़ कर हो उसे अनुत्तर कहते हैं । केवली भगवान् में दस बातें अणुत्तर (प्रधान-सर्व श्रेष्ठ) होती है । वे ये है—

(१) अनुत्तर ज्ञान-ज्ञानावरणीय कर्म के सर्वथा क्षय से केवलज्ञान उत्पन्न होता है । केवलज्ञान से बढ़कर दूसरा कोई ज्ञान नहीं है । इसलिए केवली भगवान् का ज्ञान अनुत्तर कहलाता है ।

(२) अनुत्तर दर्शन-दर्शनावरणीय और दर्शनमोहनीय कर्म के सम्पूर्ण क्षय स केवल दर्शन उत्पन्न होता है ।

(३) अनुत्तर चारित्र-चारित्रमोहनीय कर्म के सर्वथा क्षय से यह उत्पन्न होता है ।

(४) अनुत्तर तप-केवली भगवान् के शुक्लध्यानादि रूप अनुत्तर तप होता है ।

(५)अनुत्तर वीर्य-वीर्यान्तराय कर्म के सर्वथा क्षय से अनन्त वीर्य पैदा होता है ।

(६) अनुत्तरा क्षान्ति (क्षमा) क्रोध का त्याग।

(७) अनुत्तर मुक्ति-लोभ का त्याग।

(८) अनुत्तर आर्जव-(सरलता) माया का त्याग।

(९) अनुत्तर मार्दव-(मृदुता) मान का त्याग।

(१०) अनुत्तर लाघव-(हल्कापन) सब घाती कर्मों को क्षय हो जाने के कारण उनके ऊपर संसार में रुलाने वाले कर्मों का बोझ नहीं रहता है। क्षान्ति आदि पांच चारित्र के भेद हैं। ये चारित्र मोहनीय कर्म के क्षय से उत्पन्न होते हैं।

२३-केवली का ज्ञान

से किं तं केवलणाणं ? केवलणाणं दुविहं पण्णत्तं, तंजहा—भवत्थकेवलणाणं च सिद्धकेवलणाणं च।

से किं तं भवत्थकेवलणाणं ? भवत्थकेवलणाणं दुविहं पण्णत्तं तंजहा—सजोगि भवत्थकेवलणाणं च अजोगि-भवत्थकेवलणाणं च।

से किं तं सजोगिभवत्थकेवलणाणं ? सजोगिभवत्थ-केवलणाणं दुविहं पण्णत्तं, तंजहा—पढमसमयसजोगिभवत्थ केवलणाणं च अपढमसमयसजोगिभवत्थकेवलणाणं च। अहवा चरमसमयसजोगिभवत्थकेवलणाणं च अचरमसमय-सजोगिभवत्थकेवलणाणं च। से तं सजोगिभवत्थकेवलणाणं।

से किं तं अजोगिभवत्थकेवलणाणं ? अजोगिभवत्थ-केवलणाणं दुविहं पण्णत्तं, तंजहा—पढमसमयअजोगिभवत्थ-केवलणाणं च अपढमसमयअजोगिभवत्थकेवलणाणं च। अहवा चरमसमयअजोगिभवत्थकेवलणाणं च अचरमसमय-अजोगिभवत्थकेवलणाणं च। से तं अजोगिभवत्थकेवलणाणं। से तं भवत्थकेवलणाणं।

से किं तं सिद्धकेवलणाणं ? सिद्धकेवलणाणं दुविहं पण्णत्तं, तंजहा—अणंतरसिद्धकेवलणाणं च परंपरसिद्ध-केवलणाणं च।

से किं तं अणंतरसिद्धकेवलणाणं ? अणंतरसिद्धकेवल-णाणं पण्णरसविहं पण्णत्तं, तंजहा—तित्थसिद्धा, अतित्थ-सिद्धा, तित्थयरसिद्धा, अतित्थयरसिद्धा, सयंबुद्धसिद्धा, पत्तेयबुद्धसिद्धा, बुद्धबोहियसिद्धा, इत्थिलिंगसिद्धा, पुरिस-लिंगसिद्धा, णपुंसगलिंगसिद्धा, सलिंगसिद्धा, अण्णलिंग-सिद्धा, गिहिलिंगसिद्धा, एगसिद्धा, अणेगसिद्धा। से तं अणंतरसिद्धकेवलणाणं।

से किं तं परंपरसिद्धकेवलणाणं ? परंपरसिद्धकेवलणाणं अणेगविहं पण्णत्तं, तंजहा—अपढमसमयसिद्धा, दुसमय-सिद्धा तिसमयसिद्धा चउसमयसिद्धा जाव दससमयसिद्धा संखिज्जसमयसिद्धा असंखिज्जसमयसिद्धा अणंतसमयसिद्धा। से तं परंपरसिद्धकेवलणाणं। से तं सिद्धकेवलणाणं।

तं समासओ चउव्विहं पण्णत्तं, तंजहा—दव्वओ, खित्तओ, कालओ, भावओ। तत्थ दव्वओ णं केवलणाणी सव्वदव्वाइं जाणइ पासइ। खित्तओ णं केवलणाणी सव्वं-खित्तं जाणइ पासइ। कालओ णं केवलणाणी सव्वं कालं जाणइ पासइ। भावओ णं केवलणाणी सव्वे भावे जाणइ पासइ।

अह सव्वदव्वपरिणामभावविण्णत्तिकारणमणंतं ।
सासयमप्पडिवाइं, एगविहं केवलं णाणं ॥१॥
केवलणाणेणत्थे णाउं जे तत्थपण्णवणजोगे ।
ते भासइ तित्थयरो, वइजोगसुयं हवइ सेसं ॥२॥
से तं केवलणाणं । —नन्दीसूत्र

अर्थ—प्रश्न-केवलज्ञान कितने प्रकार का है ?

उत्तर—केवलज्ञान दो प्रकार का कहा गया है, जैसे कि-भवस्थकेवलज्ञान और सिद्धकेवज्ञान ।

प्रश्न-भवस्थकेवलज्ञान (संसार में रहे हुए अरिहन्तों का केवलज्ञान) कितने प्रकार का है ।

उत्तर-भवस्थ केवलज्ञान दो प्रकार का है, जैसे कि-सयोगि-भवस्थ केवलज्ञान और अयोगिभवस्थ केवलज्ञानं ।

प्रश्न-सयोगिभवस्थ केवलज्ञान कितने प्रकार का है ?

उत्तर-सयोगिभवस्थ केवलज्ञान दो प्रकार का है, जैसे कि-प्रथम समय सयोगिभवस्थ केवलज्ञान और अप्रथम समयसयोगी-भवस्थ केवलज्ञान । अथवा सयोगि भवस्थ केवलज्ञान के दूसरी तरह से दो भेद है, जैसे कि-चरमसमय सयोगि भवस्थ केवलज्ञान और अचरमसमयसयोगि भवस्थ केवलज्ञान । इस प्रकार यह सयोगिभवस्थ केवलज्ञान का वर्णन हुआ ।

प्रश्न-अयोगिभवस्थ केवलज्ञान कितने प्रकार का है ?

उत्तर-अयोगि भवस्थ केवलज्ञान दो प्रकार का कहा गया है, जैसे कि प्रथमसमय का अयोगिभवस्थ केवलज्ञान और अप्रथम-समय का अयोगिभवस्थ केवलज्ञान (अथवा अयोगिभवस्थ केवल-

ज्ञान के दूसरी तरह से दो भेद हैं, जैसे कि-चरमसमय का अयोगिभवस्थ केवलज्ञान और अचरम समय का अयोगिभवस्थ केवलज्ञान (यह अयोगिभवस्थ केवलज्ञान का वर्णन हुआ। इसके साथ ही भवस्थ केवलज्ञान का वर्णन भी पूरा हुआ।

प्रश्न-सिद्धकेवलज्ञान कितने प्रकार का है ?

उत्तर-सिद्धकेवलज्ञान दो प्रकार का कहा गया है, जैसे कि अनन्तर सिद्धकेवलज्ञान और परम्पर सिद्धकेवलज्ञान।

प्रश्न-अनन्तर सिद्धकेवलज्ञान कितने प्रकार का है ?

उत्तर-अनन्तर सिद्धकेवलज्ञान पन्द्रह प्रकार का कहा गया है, जैसे कि-१. तीर्थसिद्ध, २. अतीर्थसिद्ध, ३. तीर्थङ्कर सिद्ध, ४. अतीर्थङ्करसिद्ध, ५. स्वयंबुद्धसिद्ध, ६. प्रत्येकबुद्धसिद्ध, ७. बुद्धबोधितसिद्ध, ८. स्त्रीलिंगसिद्ध, ९. पुरुषलिंगसिद्ध, १०. नपुंसकलिंगसिद्ध, ११. स्वलिंगसिद्ध, १२. अन्यलिंगसिद्ध, १३. गृहिलिंगसिद्ध, १४. एकसिद्ध, १५. अनेकसिद्ध।

इनका केवलज्ञान अनन्तर सिद्ध केवलज्ञान है। यह अनन्तरसिद्ध केवलज्ञान का वर्णन हुआ।

प्रश्न-परम्पर सिद्धकेवलज्ञान कितने प्रकार का है ?

उत्तर—परम्परसिद्ध केवलज्ञान अनेक प्रकार का कहा गया है, जैसे कि—अप्रथमसमयसिद्ध, द्विसमयसिद्ध, त्रिसमयसिद्ध, चतुःसमयसिद्ध यावत दशसमयसिद्ध, संख्यातसमयसिद्ध, असंख्यातसमयसिद्ध, अनन्तसमयसिद्ध। इस प्रकार इनका केवलज्ञान परम्परसिद्ध केवलज्ञान कहलाता है। यह परम्परसिद्ध केवलज्ञान का वर्णन हुआ। इस प्रकार भवस्थसिद्ध केवलज्ञान और परम्परसिद्ध केवलज्ञान का वर्णन पूरा होने से सिद्धकेवलज्ञान का वर्णन पूरा हुआ।

उपरोक्त केवलज्ञान संक्षेप से चार प्रकार का कहा गया है, जैसे कि:—१ द्रव्य से, २ क्षेत्र से, ३ काल से, ४ भाव से। इनमें से द्रव्य की अपेक्षा केवलज्ञानी सब द्रव्यों को जानता और देखता है। क्षेत्र की अपेक्षा केवलज्ञानी लोकालोक रूप सब क्षेत्र को जानता और देखता है। काल की अपेक्षा—केवलज्ञानी भूत भविष्यत् वर्तमान तीनों काल के द्रव्यों को जानता और देखता है। भाव की अपेक्षा केवलज्ञानी अनन्त पर्यायात्मक द्रव्यों के सब भावों को जानता और देखता है।

उपसंहार रूप गाथा का अर्थ यह है—केवलज्ञान सभी द्रव्यों के परिणाम को और भाव को अर्थात् औदयिक आदि भावों को और वर्णगन्ध आदि को जानने वाला है। अनन्त यानी अन्त रहित और शाश्वत अर्थात सदा कालस्थायी तथा अप्रतिपाती अर्थात् उत्पन्न होने के बाद फिर कभी नहीं गिरने वाला है। यह केवलज्ञान एक ही प्रकार का है ॥१॥

केवलज्ञान से सब पदार्थों को जान कर उनमें से जो पदार्थ वर्णन करने के योग्य होते है, तीर्थङ्कर भगवान् उनका वर्णन करते है। शेष भाव वाग्योगश्रुत होता है।

यह केवलज्ञान का वर्णन पूरा हुआ।

१–केवली णं भंते ! आयाणेहिं जाणइ पासइ ? गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

२–से केणट्ठेणं भंते ! गोयमा केवली णं पुरत्थिमेणं मियं पि जाणइ, अमियं पि जाणइ जाव णिव्वुडे दंसणे केवलिस्स, से तेणट्ठेणं।

भगवती सूत्र शतक ६।१०

अर्थ—(१) प्रश्न—भगवन् ! क्या केवली भगवान् इन्द्रियों द्वारा जानते देखते हैं ?

उत्तर—हे गौतम ! केवली भगवान् इन्द्रियों द्वारा नहीं जानते, नहीं देखते हैं।

(२) प्रश्न—अहो भगवन् ! केवली भगवान् इन्द्रियों द्वारा क्यों नहीं जानते देखते हैं ?

उत्तर—हे गौतम ! केवली भगवान् पूर्व दिशा में मित (परिमित) भी जानते देखते हैं और अमित (अपरिमित) भी जानते देखते हैं यावत् केवली भगवान् का दर्शन निवृ त है। इस लिए वे इन्द्रियों के द्वारा जानते नहीं देखते नहीं हैं।

१—केवलणाणलद्धिया णं भंते ! जीवा किं णाणी अण्णाणी ? गोयमा ! णाणी, णो अण्णाणी, णियमा एगणाणी केवलणाणी ॥

—भगवती सूत्र शतक ८ उद्देशक २

अर्थ—प्रश्न—भगवन् ! केवलज्ञान लब्धि वाले जीव क्या ज्ञानी है या अज्ञानी है ?

उत्तर—हे गौतम ! केवलज्ञान लब्धि वाले जीव ज्ञानी हैं, किन्तु अज्ञानी नहीं हैं। वे नियमा (अवश्य) एक केवलज्ञान वाले हैं।

केवलणाणस्स णं भंते केवइए विसए पण्णत्ते ? गोयमा ! से समासओ चउव्विहे पण्णत्ते तंजहा—दव्वओ खेत्तओ, कालओ, भावओ। दव्वओ केवलणाणी सव्व-

दव्वाइं जाणइ पासइ, एवं जाव भावओ ॥

—भगवती सूत्र शतक ८ उद्देशक २

अर्थ—प्रश्न—भगवन् ! केवलज्ञान का विषय कितना है ?

उत्तर—हे गौतम ! केवलज्ञान का विषय चार प्रकार का कहा गया है द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से। द्रव्य से केवलज्ञानी सब द्रव्यो को जानता देखता है। इसी प्रकार क्षेत्र से सम्पूर्ण क्षेत्र को-सम्पूर्ण लोकालोक को, काल से सब काल को अर्थात् भूत भविष्यत् वर्तमान तीनो काल को और भाव से सब भावों को अर्थात् सब द्रव्यों की पर्यायों को केवलज्ञानी जानते देखते है।

१—केवली णं भंते ! छउमत्थं जाणइ पासइ ? हंता जाणइ पासइ।

२—जहा णं भंते ! केवली छउमत्थं जाणइ पासइ तहा णं सिद्धे वि छउमत्थं जाणइ पासइ ? हंता जाणइ पासइ।

भगवती सूत्र शतक १४।१०

अर्थ—(१) प्रश्न—भगवन् ! क्या केवलज्ञानी छद्मस्थ को जानते देखते हैं ?

उत्तर—हाँ, गौतम ! जानते देखते हैं।

(२) प्रश्न—भगवन् ! जैसे केवलज्ञानी छद्मस्थ को जानते-देखते हैं, वैसे ही क्या सिद्ध भगवान् भी छद्मस्थ को जानते देखते हैं ?

उत्तर—हाँ, गौतम ! जानते देखते हैं।
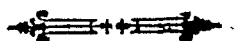
२४—गण और गणधर

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के नौ गणः—

समणस्स भगवओ महावीरस्स णव गणा होत्था तंजहा—गोदासगणे उत्तरवलिस्सहगणे उद्देहगणे चारणगणे उड्ढवाइयगणे विस्सवाइयगणे कामिड्ढियगणे माणवगणे कोडियगणे ।

—ठाणांग ठाणा ९

अर्थ—श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के नौ गण थे। यथा—

(१) गोदासगण—श्री भद्रबाहु स्वामी के प्रथम शिष्य गोदास थे। इन्हीं के नाम से पहला गण प्रचलित हुआ।

(२) उत्तार वलिस्सह गण—स्थविर महागिरि के प्रथम शिष्य का नाम उत्तारवलिस्सह था। इनके नाम से दूसरा गण प्रचलित हुआ।

(३) उद्देह गण, (४) चारणगण, (५) उद्दवातिगण, (६) विस्सवातितगण, (७) कामड्ढिगण, (८) मानवगण और (९) कोटिकगण।

भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी के आठ गण और आठ गणधरों के नामः—

पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स अट्ठ गणा अट्ठ

गणहरा होत्था तंजहा—सुभे, अज्जघोसे, वसिट्ठे, बंभयारी, सोमे, सिरिधरे, वीरिए, भद्दजसे ॥ —ठाणाँग ठाणा ८

अर्थ—पुरुषों में आदरणीय भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी के आठ गण थे और आठ ही गणधर थे। यथा—शुभ, आर्यघोष, वशिष्ठ, ब्रह्मचारी, सोम, श्रीधर, वीर्य और भद्रयश।

विवेचन—गण और गणधर किसे कहते है?

उत्तर—एक ही प्रकार के आचार वाले साधुओं के समुदाय को गण कहते हैं और उस गण को धारण करने वाले को गणधर कहते है। भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी के आठ गण थे, इसलिए आठ ही गणधर थे।

भगवान् पार्श्वनाथ के आठ गण और आठ गणधरो के नाम गिनाते हुए सूत्रकार कहते हैं:—

पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स अट्ठ गणा अट्ठ गणहरा होत्था तंजहा—

सुभे य सुभघोसे य, वसिट्ठे बंभयारी य।
सोमे सिरिधरे चेव, वीरभद्दे जसे इ य ॥

—समवायांग सूत्र ८ वां समवाय

अर्थ—पुरुषादानीय अर्थात् पुरुपों मे समादरणीय भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी के आठ गण तथा * आठ गणधर हुए थे। वे

* गण अर्थात् एक ही आचार वाले साधुओ के समुद्राय को गण कहते है। उस गण को धारण करने वाले को गणधर कहते हैं। भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी के दस गण थे और दस ही गणधर थे किन्तु दो गणधर अल्प आयुष्य वाले थे इसलिए यहां विवक्षा नही की गई है इसीलिए यहां आठ गण और आठ गणधर कहे गये हैं।

इस प्रकार थे—१ शुभ, २ शुभघोष, ३ वशिष्ठ, ४ ब्रह्मचारी, ५ सोम, ६ श्रीधर, ७ वीरभद्र और ८ यश।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के ग्यारह गण तथा ग्यारह गणधरों के नामः—

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स एक्कारस गणा एक्कारस गणहरा होत्था । तंजहा—इंदभूई, अग्गिभूई, वाउभूई, विअत्ते सोहम्मे मंडिए मोरपुत्ते अकंपिए अयलभाए मेअज्जे पभासे ।

—समवायांग सूत्र ११ वाँ समवाय

अर्थ—श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के ग्यारह गण और ग्यारह गणधर थे। वे इस प्रकार थे—१ इन्द्रभूति, २ अग्निभूति, ३ वायुभूति, ४ व्यक्त स्वामी, ५ सुधर्मास्वामी ६ मण्डितपुत्र, ७ मौर्यपुत्र, ८ अकम्पितस्वामी, ६ अचलभ्राता १० मेतार्यस्वामी ११ प्रभासस्वामी।

२५—तीर्थंकरों की सम्पदा

उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स चउरासी गणा गणहरा होत्था। उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स उसभसेण पामोक्खाओ चउलसीइं समणसाहस्सीओ * उक्कोसिया समणसंपया होत्था। उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स बंभी सुंदरी पामोक्खाओ तिण्णि अज्जियासयसाहस्सीओ उक्कोसिया अज्जियासंपया होत्था। उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स सेज्जंसपामोक्खाओ तिण्णि समणोवासगसयसाहस्सीओ पंच य साहस्सीओ उक्कोसिया समणोवासगसंपया होत्था। उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स सुभद्दापामोक्खाओ पंच समणोवासियासयसाहस्सीओ चउप्पण्णं च सहस्सा उक्कोसिया समणोवासियासंपया होत्था। उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स अजिणाणं जिणसंकासाणं सव्वक्खरसण्णिवाईणं जिणो इव अवितहं वागरमाणाणं चत्तारि चउद्दसपुव्वीसहस्सा अद्धट्ठमा य सया उक्कोसिया

---

*टिप्पणी—यहाँ पर भगवान् ऋषभदेव के साधु-साध्वी, श्रावक श्राविका आदि की जो संख्या बताई गई है वह उत्कृष्ट संख्या है अर्थात् ऋषभदेव भगवान् के पास साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका आदि की संख्या उपरोक्त संख्या से कभी अधिक नहीं हुई थी।

चउद्दसपुव्वी संपया होत्था। उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स णव ओहिणाणि सहस्सा उक्कोसिया ओहिणाणि संपया होत्था। उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स वीसं जिणसहस्सा वीसं वेउव्वियसहस्सा छच्च सया उक्कोसिया जिणवेउव्वियसंपया होत्था। वारस विउलमइसहस्सा छच्च सया पण्णासा उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स गइकल्लाणाणं ठिइकल्लाणाणं आगमेसिभद्दाणं बावीसं अणुत्तरोववाईआणं सहस्सा णव य सया, उसभस्स णं अरहओ केसलियस्स वीसं समणसहस्सा सिद्धा, चत्तालीसं अज्जियासहस्सा सिद्धा सट्ठि अंतेवासीसहस्सा सिद्धा।

—जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति दूसरा वक्षस्कार

अर्थ—कौशलिक भगवान् ऋषभदेव स्वामी के ८४ गण थे और ८४ गणधर थे। ऋषभसेन प्रमुख ८४ हजार साधुओं की उत्कृष्ट संपदा थी। ब्राह्मी सुन्दरी प्रमुख तीन लाख साध्वियों की उत्कृष्ट संपदा थी। श्रेयांस प्रमुख तीन लाख पचास हजार श्रमणोपासक (श्रावक) थे। सुभद्रा प्रमुख पांच लाख चौपन हजार श्रमणोपासिका (श्राविका) थीं।

कौशलिक भगवान् ऋषभदेव के जिन अर्थात् केवली तो नहीं किन्तु केवली के समान, सब अक्षर संयोगों के पूर्ण ज्ञाता, केवली के समान सब भाव यथार्थ कहने वाले चौदह पूर्वधारी मुनियों की चार हजार सातसौ पचास उत्कृष्ट सम्पदा थी। नव हजार अवधिज्ञानी मुनि थे। वीस हजार केवलज्ञानी थे। वीस

हजार छह सौ वैक्रिय लब्धिधारी मुनि थे। बारह हजार छह सौ पचास विपुलमति मनःपर्ययज्ञानी थे। बारह हजार छह सौ पचास वादी (वादी लब्धिधारी) मुनि थे। कल्याणकारी गति वाले कल्याणकारी स्थिति वाले आगामी भव में मोक्ष जाने वाले अनुत्तर विमानों मे लवसत्तम (लव सप्तम) देवों मे उत्पन्न होने वाले बाईस हजार नव सौ साधु थे। ऋषभदेव भगवान् के बीस हजार साधु और चालीस हजार साध्वियाँ सिद्ध हुईं। इस प्रकार साधु और साध्वी दोनो की संख्या मिला कर कुल ऋषभदेव भगवान् के साठ हजार अन्तेवासी सिद्ध हुए॥

भगवान् महावीर स्वामी और भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी की विशिष्ट मुनि-सम्पदा को इन शब्दों में कहा गया है:—

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स तिण्णि सयाणि चोद्दसपुव्वीणं होत्था। —समवायांग ३०० वां स०

अर्थ—श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के तीन सौ चौदह पूर्वधारी मुनिराज थे।

पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स अद्धुट्ठसयाइं चोद्दसपुव्वीणं होत्था। —समवायांग ३५० वां स०

अर्थ—पुरुषादानीय-पुरुषों में समादरणीय भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी के तीन सौ पचास चौदह पूर्वधारी मुनिराज थे।

पासस्स णं अरहओ छसया वाईणं सदेवमणुयासुरे लोए वाए अपराजियाणं उक्कोसिया वाइ संपया होत्था।

—समवायांग ६०० वाँ सम०

अर्थ—भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी के छह सौ ऐसे वादी मुनि थे, जो लोक में देव, मनुष्य और असुरों की सभा में वाद विवाद में किसी से भी पराजित नहीं हो सकते थे।

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स सत्तजिणसया होत्था। समणस्स णं भगवओ महावीरस्स सत्तवेउव्विय-सया होत्था। —समवायांग ७०० वाँ सम०

अर्थ—श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के सात सौ केवल-ज्ञानी साधु थे।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के सात सौ वैक्रिय लब्धि-धारी साधु थे।

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स अट्ठसया अणुत्तरो-ववाइयाणं देवाणं गइकल्लाणाणं ठिइकल्लाणाणं आगमेसि भद्दाणं उक्कोसिया अणुत्तरोववाइयसंपया होत्था

—समवायांग ८०० वाँ सम०

अर्थ—श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के समय में उत्कृष्ट आठ सौ साधु अनुत्तर विमानों में उत्पन्न होने वाले थे। जिनकी स्थिति उत्तम थी और जो आगामी भद्रक थे अर्थात् वे वहाँ से चव कर आगामी भव मे मोक्ष प्राप्त करेंगे।

पासस्स णं अरहओ दससयाइं जिणाणं होत्था।

—समवायांग १०० वाँ सम०

अर्थ—भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी के एक हजार केवल-ज्ञानी साधु थे।

पासस्स णं अरहओ दस अंतेवासी सयाइं कालगयाइं जाव सव्वदुक्खप्पहीणाइं। —समवायांग १००० वाँ सम०

अर्थ—तेईसवें तीर्थङ्कर भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी के एक हजार शिष्य मोक्ष गये यावत् सब दुःखों से रहित हुए।

पासस्स णं अरहओ इक्कारस सयाइं वेउव्वियाणं उक्कोसिया संपया होत्था। —समवायांग ११०० वाँ सम०

अर्थ—भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी के ग्यारह सौ वैक्रिय लब्धिधारी साधु थे।

पासस्स णं अरहओ तिण्णि सयसाहस्सीओ सत्तावीसं च सहस्साइं उक्कोसिया सावियासंपया होत्था।

—समवायांग ३२७००० वाँ सम०

अर्थ—तीर्थङ्कर भगवान् श्री पार्श्वनाथ स्वामी के उत्कृष्ट तीन लाख सत्ताईस हजार श्राविकाएँ थीं।

भगवान् अरिष्टनेमि और भगवान् महावीर स्वामी—इन दोनों तीर्थङ्करों के विशिष्ट साधु रूप सम्पदा का वर्णन करते हुए कहा गया हैः—

अरहओ णं अरिट्ठनेमिस्स चत्तारि सया चोद्दसपुव्वीण-मजिणाणं जिणसंकासाणं सव्वक्खरसण्णिवाईणं जिणो इव अवितहवागरमाणाणं उक्कोसिया चउद्दसपुव्विसंपया होत्था। —ठाणांग ठाणा ४

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स चत्तारि सया वाईणं सदेवमणुयासुराए परिसाए अपराजियाणं उक्कोसिया वाइसंपया होत्था । —ठाणांग ठाणा ४

अर्थ—तीर्थङ्कर भगवान् श्री अरिष्ट नेमि के उत्कृष्ट चार सौ चौदह पूर्वधारी मुनि थे । वे चौदह पूर्वों के धारक, सब अक्षरों के संयोगों को जानने वाले, जिन अर्थात् सर्वज्ञ न होते हुए भी सर्वज्ञ के समान थे । वे सर्वज्ञ के समान यथातथ्य वचन बोलने वाले और प्रश्नों का ठीक उत्तर देने वाले होते हैं ।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के उत्कृष्ट चार सौ वादी मुनि थे । देव, मनुष्य और असुरों की सभा में उन वादियों को कोई जीत नहीं सकता था ।

विवेचन—भगवान् अरिष्टनेमि के चौदह पूर्वधारी मुनियों की जो संख्या ऊपर बताई गई है, वह उत्कृष्ट संख्या है; क्योंकि इनके चार सौ से अधिक चौदह पूर्वधारी मुनि कभी नहीं हुए थे ।

प्रश्न—पूर्व किसे कहते हैं ?

उत्तर—तीर्थकरस्तीर्थप्रवर्त्तनकाले गणधरान् सकल-श्रुतार्थावगाहनसमर्थानधिकृत्य पूर्वं पूर्वगतं सूत्रार्थं भाषते ततस्तानि पूर्वाण्युच्यन्ते । गणधराः पुनः श्रुतरचनां विदधतः आचारादिक्रमेण विदधति स्थापयन्ति वा । अन्ये तु व्याचक्षते पूर्वं पूर्वगतसूत्रार्थमर्हन् भाषते, गणधरा अपि पूर्वं पूर्वगतसूत्रं विरचयन्ति, पश्चादाचारादिकम् । अत्र चोदक आह-नन्विदं पूर्वापरविरुद्धं यस्मादादौ निर्युक्तावुक्तं

'सव्वेसिं आयारो पढमो' इत्यादि। सत्यमुक्तं किन्तु तत्स्थापनामधिकृत्योक्तमक्षररचनामधिकृत्य पुनः पूर्वं पूर्वाणि कृतानि ततो न कश्चित् पूर्वापरविरोधः।

—नन्दी सूत्र ५७

अर्थ—तीर्थ का प्रवर्तन करते समय तीर्थङ्कर भगवान् समस्त श्रुत के अर्थ को धारण करने मे समर्थ गणधरों को पहले पहले पहल (सर्वप्रथम) जिस अर्थ का उपदेश देदे है उसको पूर्व कहते है। फिर श्रुत करते समय गणधर देव आचार आदि क्रम से स्थापित करते है।

कोई कोई आचार्य तो इस प्रकार कहते है कि-तीर्थङ्कर भगवान् गणधरों को पहले पहल जिस अर्थ का उपदेश देते हैं और गणधरदेव भी पहले पहल जिस अर्थ को सूत्र रूप से गूँथते है उसे पूर्व कहा जाता है।

शङ्काकार कहते है कि-पूर्व का ऐसा अर्थ करना तो पूर्वापर विरुद्ध होगा क्योंकि निर्युक्ति मे यह बात कही है कि:—

'सव्वेसिं आयारो पढमो'

अर्थात्-आचारांग सूत्र सब में प्रथम है। अतः यह अर्थ कैसे ?

समाधान-जो शङ्का उठाई गई है वह ठीक है। किन्तु इसका समाधान यह है कि यह बात स्थापना की अपेक्षा कही गई है। अर्थात् आचारांग सूत्र की स्थापना पहले की जाती है, परन्तु अक्षर रचना की अपेक्षा तो सर्व प्रथम पूर्व की ही रचना की जाती है। अतः पूर्वापर विरोध नहीं है। पूर्व चौदह है-

(१) उत्पाद पूर्व-इस पूर्व में सभी द्रव्य और सभी पर्यायों के उत्पाद को लेकर प्ररूपणा की गई है। इस में एक करोड़ पद हैं।

(२) अग्रायणीय पूर्व-इसमें सभी द्रव्य, सभी पर्याय और सभी जीवों के परिमाण का वर्णन है। इस पूर्व में छयानवे लाख पद हैं।

(३) वीर्यप्रवाद पूर्व-इसमें कर्म सहित और बिना कर्म वाले जीव तथा अजीवों के वीर्य (शक्ति) का वर्णन है। इस पूर्व में सित्तर लाख पद हैं।

(४) अस्तिनास्तिप्रवाद पूर्व-संसार में धर्मास्तिकाय आदि जो वस्तुएँ विद्यमान हैं, उन सब का वर्णन इस में है। इस पूर्व में साठ लाख पद हैं।

(५) ज्ञानप्रवाद पूर्व-इसमें मतिज्ञान आदि ज्ञान के पाँच भेदों का विस्तृत वर्णन है। इस पूर्व में एक कम एक करोड़ पद हैं।

(६) सत्यप्रवाद पूर्व-इसमें सत्य रूप संयम तथा सत्य वचन का विस्तृत वर्णन है। इसमें छह अधिक एक करोड़ पद हैं।

(७) आत्मप्रवाद पूर्व-इसमें अनेक नय तथा मतों की अपेक्षा आत्मा का प्रतिपादन किया गया है। इसमें छब्बीस करोड़ पद है।

(८) कर्मप्रवाद पूर्व-इसमें आठ कर्मों का निरूपण प्रकृति स्थिति, अनुभाग और प्रदेश आदि भेदों द्वारा विस्तृत रूप से किया गया है। इसमें एक करोड़ अस्सी लाख पद हैं।

(९) प्रत्याख्यान प्रवाद पूर्व—इसमें प्रत्याख्यानों का भेद प्रभेद पूर्वक वर्णन किया गया है। इसमें चौरासी लाख पद हैं।

(१०) विद्यानुप्रवादपूर्व—इसमें विविध प्रकार की विद्या तथा सिद्धियो का वर्णन है। इसमें एक करोड़ दस लाख पद हैं।

(११) अवन्ध्यप्रवादपूर्व—इसमे ज्ञान,तप, संयम आदि शुभ फल वाले तथा प्रमाद आदि अशुभफल वाले अवन्ध्य अर्थात निष्फल न जाने वाले कार्यों का वर्णन है। इसमें छब्बीस करोड़ पद हैं।

(१२) प्राणानुप्रवादपूर्व—इसमे दस प्राण और आयु आदि का भेद प्रभेद पूर्वक विस्तृत वर्णन है। इसमें एक करोड़ छप्पन लाख पद है।

(१३) क्रियाविशालपूर्व—इसमें कायिकी आधिकरणिकी आदि तथा संयम में उपकारक क्रियाओ का वर्णन है। इसमे नौ करोड़ पद हैं।

(१४) लोकबिन्दुसारपूर्व—लोक (संसार) मे श्रुतज्ञान में जो शास्त्र बिन्दु की तरह सब से श्रेष्ठ है, वह लोकबिन्दुसार है। इसमें साढ़े बारह करोड़ पद हैं।

पूर्वों के अध्याय विशेषों को 'वत्थु' (वस्तु) कहते है। वत्थुओं (वस्तुओं) के अवान्तर अध्यायो को चूलिका वस्तु कहते हैं।

उत्पाद पूर्व में दस वस्तु और चार चूलिकावस्तु हैं। अग्रायणीय पूर्व में चौदह वस्तु और बारह चूलिका वस्तु है। वीर्यप्रवाद पूर्व में आठ वस्तु और आठ चूलिका वस्तु है। अस्तिनास्ति प्रवाद पूर्व में आठ वस्तु और आठ चूलिका वस्तु है। ज्ञान प्रवाद पूर्व में बारह वस्तु हैं। सत्यप्रवाद पूर्व में दो वस्तु हैं। आत्मप्रवाद पूर्व में सोलह वस्तु हैं। कर्मप्रवाद पूर्व में तीस वस्तु है। प्रत्याख्यान प्रवाद पूर्व मे बीस वस्तु हैं। विद्यानुप्रवाद पूर्व मे पन्द्रह वस्तु हैं

अवन्ध्य प्रवाद पूर्व में बारह वस्तु हैं। प्राणानुप्रवाद पूर्व में तेरह वस्तु है। क्रियाविशाल पूर्व में तीन वस्तु हैं। लोक बिन्दुसार पूर्व में पच्चीस वस्तु हैं। चौथे से आगे के पूर्व में चूलिका वस्तु नहीं है।

(नन्दी सूत्र ५७ टीका)

(समवायांग १४ वाँ तथा १४७)

प्रश्न-'पूर्व' का क्या परिमाण है ?

उत्तर-(१) सूखी स्याही का ढेर किया जाय जिससे कि अंबाड़ी सहित एक हाथी डूब जाय उतनी स्याही से पहला उत्पाद पूर्व लिखा जाता है। (२) अम्बाड़ी सहित दो हाथी डूब जायँ (ढक जाय) उतनी स्याही से दूसरा अग्रायणीय पूर्व लिखा जाता है। इसी प्रकार अम्बाड़ी सहित चार हाथी डूबे उतनी स्याही से तीसरा वीर्यप्रवाद पूर्व लिखा जाता है। इस प्रकार आगे हाथी का परिमाण दुगुना दुगुना करते जाना चाहिये। अर्थात (४) अम्बाड़ी सहित आठ हाथी डूबे उतनी स्याही से चौथा अस्ति-नास्तिप्रवाद पूर्व लिखा जाता है। (५) अम्बाड़ी सहित सोलह हाथी डूबे उतनी स्याही से पाँचवां ज्ञानप्रवाद पूर्व लिखा जाता है। (६) अम्बाड़ी सहित बत्तीस हाथी डूबें उतनी स्याही से छठा सत्यप्रवाद पूर्व लिखा जाता है। (७) अम्बाड़ी सहित चौंसठ हाथी डूबे उतनी स्याही से सातवाँ आत्मप्रवाद पूर्व लिखा जाता है। (८) अम्बाड़ी सहित एक सौ अट्ठाईस हाथी डूबे उतनी स्याही से आठवां कर्मप्रवाद पूर्व लिखा जाता है। (९) अम्बाड़ी सहित दो सौ छप्पन हाथी डूबे उतनी स्याही से नववाँ प्रत्याख्यान प्रवाद पूर्व लिखा जाता है। (१०) अम्बाड़ी सहित पाँच सौ बारह हाथी डूब जायँ उतनी स्याही से दसवाँ विद्यानुप्रवाद पूर्व लिखा जाता है। (११) अम्बाड़ी सहित एक हजार चौबीस हाथी डूब जायँ

उतनी स्याही से ग्यारहवाँ अवन्ध्यपूर्व लिखा जाता है। (१२) अम्बाड़ी सहित दो हजार अड़तालीस हाथी डूब जायँ उतनी स्याही से बारहवाँ प्राणानुप्रवाद पूर्व लिखा जाता है। (१३) अम्बाड़ी सहित चार हजार छयानवे हाथी डूब जायं उतनी स्याही से तेरहवाँ क्रिया विशाल पूर्व लिखा जाता है (१४) अम्बाड़ी सहित आठ हजार एक सौ बानवे हाथी डूबे उतनी स्याही से चौदहवाँ लोक बिन्दुसार पूर्व लिखा जाता है।

इस प्रकार आगे आगे के पूर्वों के परिमाण में हाथियों की संख्या दुगुनी-दुगुनी करते जाना चाहिये।

(हस्तलिखित 'भगवती सूत्र' से)

भगवान् पार्श्वनाथ के वादी मुनियो की सम्पदा का वर्णन-

पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स छस्सया वाईणं सदेवमणुयासुराए परिसाए अपराजियाणं संपया होत्था।

—ठाणांग सूत्र ६

अर्थ—पुरुषो मे आदरणीय यानी पुरुषों में सर्वोत्तम तेईसवें तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी के छह सौ वादी मुनि थे। देव मनुष्य और असुरो को सभा मे उन वादियो को कोई भी जीत नहीं सकता था।

प्रश्न—'वादी' किसे कहते है ?

उत्तर—वादप्रतिवादीसभ्यसभापतिरूपायां चतुरङ्गायां पर्षदि प्रतिक्षेपपूर्वकं स्वपक्षस्थापनार्थमवश्यं वदतीति वादी।

निरुपमवादिलब्धिसंपन्नत्वेन वावदूक वादि-वृन्दारक-

वृन्दैरप्यमन्दीकृतवाग्विभवः परेणाजेयः ।

(अभि. रा. कोप 'वाई' शब्द)

(प्रवचन सारोद्धार १४८ वाँ)

अर्थ—वादी, प्रतिवादी, सभ्य, सभापति रूप चार अङ्गों से युक्त सभा में प्रतिवादी (प्रतिपक्षी) के मत का खण्डन करते हुए अपने पक्ष की स्थापना के लिए जो अवश्य बोलता है। वह वादी कहलाता है ।

निरुपम अर्थात् अद्‌भुत वादलब्धि से युक्त होने के कारण जिसके वचनों का खण्डन अत्यन्त वाचाल वादियों के समूह से भी न किया जा सके उसे वादी कहते हैं। अर्थात् जो चर्चा में परवादियों (प्रतिपक्षियों) से जीता न जा सके उसे वादी कहते हैं।

भगवान् अरिष्टनेमि के वादी मुनियों की संख्या का वर्णन—

अरहओ णं अरिट्ठनेमिस्स अट्ठसया वाईणं सदेवमणुयासुराए परिसाए वाए अपराजियाणं उक्कोसिया वाइसंपया होत्था ।

—ठाणांग ठांणा ८

अर्थ—बाईसवें तीर्थंकर भगवान् अरिष्टनेमि के उत्कृष्ट आठ सौ वादी मुनि थे। वे ऐसे थे जो देव मनुष्य और असुरों की सभा में वाद विवाद अर्थात् शास्त्रार्थ के विषय में किसी से भी पराजित नहीं होते थे ।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के अनुत्तरौपपातिक मुनियों की संख्या का वर्णन:—

समणस्स भगवओ महावीरस्स अट्ठसया अणुत्तरोववाइयाणं गइकल्लाणाणं ठिइकल्लाणाणं आगमेसिभद्दाणं उक्कोसिया अणुत्तरोववाइयसंपया होत्था।

—ढाणांग ठाणा ८

अर्थ—श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के शासन में विजय, वैजयन्त आदि पांच अनुत्तर विमान रूप श्रेष्ठ गति में उत्पन्न होने वाले श्रेष्ठ स्थिति वाले आगामी जन्म मे मोक्ष प्राप्त करने वाले आठ सौ मुनि थे।

प्रश्न—अनुत्तर विमान कितने हैं और उनके नाम क्या हैं?

उत्तर—अनुत्तर विमान पांच हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं— १) विजय, (२) वैजयन्त, (३) जयन्त, (४) अपराजित और (५) सर्वार्थसिद्ध।

ये विमान अनुत्तर अर्थात सर्वोत्तम होते हैं तथा इन विमानो में रहने वाले देवों के शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श सर्व श्रेष्ठ होते हैं। इसलिए ये अनुत्तर विमान कहलाते है। एक बेला (दो उपवास) तप से श्रेष्ठ साधु जितने कर्म क्षीण करता है, उतने कर्म जिन मुनियो के बाकी रह जाते हैं, वे अनुत्तर विमान में उत्पन्न होते हैं। सर्वार्थसिद्ध विमानवासी देवों के जीव तो यहाँ मनुष्य भव में मुनि अवस्था में सात लव की स्थिति कम रहने से वहाँ जाकर उत्पन्न होते हैं।

२६-तीर्थंकरों के विषय में !

(विविध प्रश्नोत्तर)

जंबूदीवे णं दीवे भारहे वासे इमीसे णं ओसप्पिणीए तेवीसं तित्थयरा पुव्वभवे एक्कारसंगिणो होत्था तंजहा- अजिय संभव अभिणंदण सुमई जाव पासो वद्धमाणो य। उसभे णं अरहा कोसलिए चोद्दसपुव्वी होत्था।

जंबूदीवे णं दीवे भारहे वासे इमीसे णं ओसप्पिणीए तेवीसं तित्थयरा पुव्वभवे मंडलियरायाणो होत्था। तंजहा- अजिय संभव अभिणंदण सुमई जाव पासा वद्धमाणो य। उसभे णं अरहा कोसलिए पुव्वभवे चक्कवट्टी होत्था।

—समवायांग सूत्र २३ वाँ समवाय

अर्थ—इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में इस अवसर्पिणी काल मे तेईस तीर्थङ्कर पूर्व भव में ग्यारह अङ्ग के पारगामी थे। जैसे कि—१ अजितनाथ, २ संभवनाथ, ३ अभिनन्दन स्वामी, ४ सुमतिनाथ, ५ पद्मप्रभ स्वामी, ६ सुपार्श्वनाथ, ७ चन्द्रप्रभस्वामी, ८ सुविधिनाथ (पुष्पदन्त स्वामी), ९ शीतलनाथ, १० श्रेयांसनाथ, ११ वासुपूज्य स्वामी, १२ विमलनाथ, १३ अनन्तनाथ, १४ धर्मनाथ, १५ शान्तिनाथ, १६ कुन्थुनाथ, १७ अरहनाथ, १८ मल्लि-

नाथ १६ मुनिसुव्रत स्वामी, २० नमिनाथ, २१ अरिष्ट नेमिनाथ, २२ पार्श्वनाथ, २३ वर्द्धमानस्वामी ।

ये तेईस तीर्थङ्कर पूर्वभव मे ग्यारह अङ्ग के पारगामी थे ।

कौशल देश मे उत्पन्न भगवान् ऋषभदेव स्वामी पूर्वभव में चौदह पूर्व के धारक थे ।

इस जम्बू द्वीप के भरतक्षेत्र मे इस अवसर्पिणी काल में तेईस तीर्थङ्कर पूर्वभव में माण्डलिक राजा थे । यथा अजितनाथ से लेकर वर्द्धमान स्वामी तक कह देने चाहिए ।

कौशल देश में उत्पन्न भगवान् ऋषभदेव स्वामी पूर्वभव में चक्रवर्त्ती थे ।

भगवान् चन्द्रप्रभ स्वामी, धर्मनाथ स्वामी, नमिनाथ स्वामी और नेमिनाथ स्वामी के आयुष्य का वर्णन:—

चंदप्पभे णं अरहा दसपुव्वसयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे जाव पहीणे ।

धम्मे णं अरहा दसवाससयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे जाव पहीणे ।

णमी णं अरहा दसवाससहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे जाव पहीणे ।

णेमी णं अरहा दस धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था । दसवाससयाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे जाव पहीणे ।

अर्थ—आठवे तीर्थंकर श्री चन्द्रप्रभ स्वामी दस लाख पूर्व

वर्ष की सर्व आयु भोग कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हुए यावत् दुःखों का अन्त कर मोक्ष पधारे।

पन्द्रहवें तीर्थंकर श्री धर्मनाथ स्वामी दस लाख वर्ष की सर्व आयु भोग कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हुए यावत् सर्व दुःखों का अन्त कर मोक्ष पधारे।

बाईसवें तीर्थंकर श्री नेमिनाथ (अरिष्टनेमि) स्वामी के शरीर की ऊँचाई दस धनुष थी। वे दस सौ वर्ष (एक हजार वर्ष) की सर्व आयु को भोग कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त यावत् सब दुःखों का अन्त कर मोक्ष पधारे॥

भगवान् वासुपूज्य स्वामी कितने पुरुषों के साथ प्रव्रजित हुए ? यह बताते हुए शास्त्रकार कहते हैं—

वासुपुज्जे णं अरहा छहि पुरिससएहिं सद्धिं मुंडे जाव पव्वइए।

—ठाणांग सूत्र

अर्थ—बारहवें तीर्थंकर भगवान् वासुपूज्य स्वामी छह सौ पुरुषों के साथ मुण्डित यावत् प्रव्रजित हुए थे।

भगवान् चन्द्रप्रभ स्वामी कितने समय तक छद्मस्थ रहे ? यह बताते हुए कहा गया है—

चंदप्पभे णं अरहा छम्मासा छउमत्थे होत्था।

—ठाणांग ठाणा ६

अर्थ—आठवे तीर्थंकर श्री चन्द्रप्रभ स्वामी छह महीने तक छद्मस्थ रहे थे।

भगवान् महावीर स्वामी के पास दीक्षित आठ राजाओं के नाम —

समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठ रायाणो मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वाविया तंजहा—

वीरंगय वीरजसे संजयए णिज्जए य रायरिसी ।
सेय-सिवे उदायणे तह संखे कासिवद्धणे ॥

—ठाणांग ठाणा ८

अर्थ—श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने आठ राजाओं को मुण्डित करके दीक्षा दी थी। उनके नाम इस प्रकार हैं-(१)वीराङ्गक, (२) वीरयश (३) संजय, (४) एणेयक गोत्र वाला राजर्षि (५) श्वेत, (६) शिव, (७) उदायन और (८) काशीवर्द्धन शंख।

विवेचन—इन राजाओं का परिचय देते हुए टीकाकार ने लिखा है कि वीराङ्गक वीरयश और संजय ये तीन राजा तो प्रसिद्ध ही है। एणेयक गोत्र वाला राजर्षि, यह राजा परदेशी का कोई निजी व्यक्ति था। श्वेत राजा आमलकल्पा नगरी का स्वामी था। शिव हस्तिनागपुर का राजा था। इन्होंने पहले संन्यासियों की प्रव्रज्या अङ्गीकार की थी। वहाँ अज्ञान तप करने से विभङ्गज्ञान पैदा हो गया था जिससे सात द्वीप समुद्र देखने लगे थे। "यह इतना मात्र ही संसार है" ऐसा मान कर लोगो को उपदेश देने लगे। फिर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी की असंख्य द्वीप समुद्रों की प्ररूपणा को सुन कर इनके मन मे शंका उत्पन्न हुई। भगवान् के के पास जाकर निर्णय किया। फिर भगवान् के पास दीक्षा लेकर ग्यारह अङ्ग का ज्ञान पढ़ा। अन्त में सिद्ध बुद्ध मुक्त हुए। उदायन,

यह सिन्धुसौवीर देश का राजा था। अपने भाणेज केशीकुमार को राजपाट सौंप कर भगवान् के पास दीक्षा ली थी।

काशी वर्द्धन शंख राजा काशी नगरी की समृद्धि को बढाने वाला था। यह किस देश का राजा था यह ज्ञात नहीं होता है। अन्तगड़ सूत्र में वर्णन आता है कि भगवान् ने काशी (वाणारसी) नगरी में अलक नाम के राजा को दीक्षा दी थी। शायद् उसी अलक राजा का दूसरा नाम काशीवर्द्धन शंख हो।

—स्थानांग स्था० ८ सूत्र ६२१ की टीका

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी द्वारा उपदिष्ट भिक्षा की नौ कोटियाँ:—

समणेणं भगवया महावीरेणं णिग्गंथाणं णिग्गंथीणं णवकोडिपरिसुद्धे भिक्खे पराणत्ते तंजहा-न हणइ न हणावेइ हणंतं णाणुजाणइ, न पयइ न पयावेइ पयंतं णाणुजाणइ, न किणइ न किणावेइ किणंतं णाणुजाणइ।

—ठाणांग ठाणा ६

अर्थ—श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने साधु साध्वियों के लिये नौकोटि विशुद्ध भिक्षा का वर्णन किया है अर्थात् साधु साध्वियों को नौ कोटियों से विशुद्ध आहारादि ग्रहण करना चाहिए। वे नौ कोटियाँ इस प्रकार है:—

(१) साधु साध्वी आहारादि के लिये स्वयं जीवों की हिंसा न करे।

(२) दूसरे द्वारा हिंसा न करावे।

(३) जीव हिंसा करने वाले का अनुमोदन न करे अर्थात उसे भला न समझे।

(४) आहारादि स्वयं न पकावे

(५) दूसरों से न पकवावे।

(६) पकाने वाले का अनुमोदन न करे।

(७) आहारादि स्वयं न खरीदे।

(८) दूसरों से न खरीदवावे।

(९) खरीदने वाले का अनुमोदन न करे।

विवेचन—ऊपर लिखी हुई सभी कोटियाँ मन, वचन और काया रूप तीनों योगों से है। ये कोटियाँ साधु साध्वी के लिए कल्पनीय आहारादि वस्त्र पात्र मकान आदि सभी के विषय में समझनी चाहिये। साधु साध्वी के लिए प्रत्येक वस्तु नौ कोटि विशुद्ध ही ग्रहण करने एव अपने उपयोग मे लेने का विधान है।

केवली णं भंते उम्मिसेज्ज वा णिम्मिसेज्ज वा ? हंता उम्मिसेज्ज वा णिम्मिसेज्ज वा। एवं चेव एवं आउटेज्ज वा पसारेज्ज वा, एवं ठाणं वा सेज्जं वा णिसीहियं वा चेएज्जा। भगवती सूत्र शतक १४।१०

अर्थ—(१) प्रश्न-भगवन्! क्या केवलज्ञानी उन्मेष निमेष करते है अर्थात् आँखो की पलकें उघाड़ते और बन्द करते है?

उत्तर—हाँ, गौतम! केवलज्ञानी उन्मेष-निमेष करते हैं अर्थात् आंखो की पलके उघाड़ते है और बन्द करते है। इसी प्रकार केवलज्ञानी शरीर को संकोचना, फैलाना, खड़े रहना, शयन (वसति), बैठना आदि क्रियाएँ करते है।

(१) केवली णं भंते ! इमं रयणप्पभं पुढवीं रयणप्पभा-पुढवीति जाणइ पासइ ? हंता जाणइ पासइ ।

(२) जहा णं भंते ! केवली इमं रयणप्पभं पुढवीं रयणप्पभापुढवीति जाणइ पासइ तहा णं सिद्धे वि इमं रयणप्पभं पुढवीं रयणप्पभा पुढवीति जाणइ पासइ ? हंता, जाणइ पासइ ।

(३) केवली णं भंते ! सक्करप्पभं पुढवीं सक्करप्पभा पुढवीति जाणइ पासइ ? एवं चेव, एवं जाव अहेसत्तमा ।

(४) केवली णं भंते ! सोहम्मं कप्पं सोहम्मकप्पेत्ति जाणइ पासइ ? हंता, जाणइ पासइ, एवं चेव, एवं ईसाणं एवं जाव अच्चुयं ।

(५) केवली णं भंते ! गेविज्जविमाणे गेविज्जविमाणेत्ति जाणइ पासइ ? हंता, एवं चेव, एवं अणुत्तरविमाणे वि ।

(६) केवली णं भंते ! ईसिपब्भारं पुढवीं ईसिपब्भारा-पुढवी ति जाणइ, पासइ? एवं चेव ।

(७) केवली णं भंते ! परमाणुपोग्गलं परमाणुपोग्गलेत्ति जाणइ पासइ ? एवं चेव; एवं दुपएसियं खंधं, एवं जाव अणंतपएसियं खंधं ।

(८) जहा णं भंते ! केवली अणंतपएसियं खंधं अणंत-

पएसिए खंधेत्ति जाणइ पासइ तहा णं सिद्धे वि अणंतपए-
सियं जाव जाणइ पासइ ? हंता जाणइ पासइ।

भगवती सूत्र शतक १४/१०

अर्थ—(१) प्रश्न भगवन् ! क्या केवलीज्ञानी रत्नप्रभा पृथ्वी को 'यह रत्नप्रभा पृथ्वी है।' ऐसा जानते देखते है ?

उत्तर—हाँ, गौतम ! जानते देखते हैं।

(२) प्रश्न—भगवन् ! जिस प्रकार केवलज्ञानी रत्नप्रभा को 'यह रत्नप्रभा पृथ्वी है' इस तरह जानते-देखते है, क्या इसी प्रकार सिद्ध भगवान् भी रत्नप्रभा पृथ्वी को 'यह रत्नप्रभा पृथ्वी है' इस तरह जानते देखते हैं।

उत्तर—हाँ, गौतम ! जानते देखते है।

(३) प्रश्न—भगवन् ! क्या केवलज्ञानी शर्कर प्रभा पृथ्वी को 'यह शर्करप्रभा पृथ्वी है' इस प्रकार जानते देखते हैं ? हाँ, गौतम ! जानते देखते है। इसी प्रकार तमस्तमः प्रभा नामक सातवीं नरक पृथ्वी तक कह देना चाहिए। इसी प्रकार सिद्ध भगवान् भी जानते देखते है। यह कह देना चाहिए।

(४) प्रश्न—भगवन् ! क्या केवलज्ञानी सौधर्मकल्प नामक पहले देवलोक को 'यह सौधर्मकल्प है' इस तरह जानते देखते है ? हाँ, गौतम ! जानते देखते है। इसी प्रकार ईशानकल्प नामक दूसरे देवलोक से लेकर अच्युतकल्प नामक बारहवें देवलोक तक कह देना चाहिए। इसी प्रकार सिद्ध भगवान् के लिए भी कह देना चाहिये।

(५) प्रश्न—भगवन् ! क्या केवलज्ञानी नवग्रैवेयक विमानों को 'ये नवग्रैवेयक विमान हैं' इस प्रकार जानते देखते हैं ?

उत्तर—हाँ, गौतम ! जानते देखते हैं। इसी तरह पाँच अनुत्तर विमानों तक कह देना चाहिये। इसी प्रकार सिद्ध भगवान् भी जानते देखते हैं।

(६) प्रश्न—भगवन् ! क्या केवलज्ञानी ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी को 'यह ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी है' इस तरह जानते देखते हैं ? हाँ, गौतम ! जानते देखते हैं। इसी तरह सिद्ध भगवान् भी जानते देखते हैं।

(७) प्रश्न—भगवन् ! क्या केवलज्ञानी परमाणु पुद्गल को यह परमाणु पुद्गल है इस तरह जानते देखते हैं ?

उत्तर—हाँ, गौतम ! जानते-देखते हैं। इस प्रकार द्विप्रदेशी स्कन्ध से लेकर अनन्त प्रदेशी स्कन्ध तक कह देना चाहिये।

(८) प्रश्न—भगवन ! जिस प्रकार केवलज्ञानी अनन्त प्रदेशी स्कन्ध को यह अनन्त प्रदेशी स्कन्ध है' इस तरह जानते-देखते है। क्या इसी प्रकार सिद्ध भगवान् भी अनन्त प्रदेशी स्कन्ध को 'यह अनन्त प्रदेशी स्कन्ध है' इस प्रकार जानते देखते हैं ?

उत्तर—हाँ, गौतम ! सिद्ध भगवान् भी इसी प्रकार जानते-देखते हैं।

(जानना और देखना)

केवली और छद्मस्थों के ज्ञान-दर्शन के विषय में कहा गया है:-

(१) केवली णं भंते ! अंतकरं वा अंतिमसरीरियं वा जाणइ पासइ ? हंता, गोयमा ! जाणइ पासइ।

(२) जहा णं भंते! केवली अंतकरं वा अंतिमसरीरियं वा जाणइ पासइ तहा णं छउमत्थे वि अंतकरं वा अंतिम-सरीरियं वा जाणइ पासइ? गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे सोच्चा जाणइ पासइ, पमाणओ वा।

(३) से किं तं सोच्चा? गोयमा! सोच्चा णं केवलिस्स वा, केवलिसावयस्स वा, केवलिसावियाए वा, केवलिउवा-सगस्स वा, केवलिउवासियाए वा, तप्पक्खियस्स वा, तप्प-क्खियसावगस्स वा, तप्पक्खियसावियाए वा, तप्पक्खिय-उवासगस्स वा, तप्पक्खियउवासियाए वा, से तं सोच्चा।

(४) केवली णं भंते! चरिमकम्मं वा चरिमणिज्जरं वा जाणइ पासइ? हंता, गोयमा! जाणइ पासइ।

(५) जहा णं भंते! केवली चरिमकम्मं वा, जहा णं अंतकरेणं वा आलावगो तहा चरिमकम्मेण वि अपरिसेसो णेयव्वो। —भगवतीसूत्र श० ५/४

अर्थ—(१) प्रश्न—भगवन्! क्या केवली भगवान् अन्तकर (कर्मों का अन्त करने वाले) को अथवा अन्तिम (चरम) शरीर वाले को जानते-देखते है?

उत्तर—हाँ, गौतम! जानते देखते हैं।

(२) प्रश्न— भगवन्! जिस प्रकार केवली भगवान् अन्त-कर मनुष्य को अथवा चरमशरीरी मनुष्य को जानते-देखते हैं, क्या

इसी प्रकार छद्मस्थ मनुष्य भी अन्तकर अथवा अन्तिम शरीरी (चरम शरीरी) मनुष्य को जानता देखता है ?

उत्तर—हे गौतम ! यह अर्थ युक्त नहीं है अर्थात् वह नहीं जानता नहीं देखता है, किन्तु वह (छद्मस्थ मनुष्य) किसी से सुन कर अथवा प्रमाण द्वारा अन्तकर मनुष्य अथवा अन्तिम शरीरी (चरम शरीरी) मनुष्य को जानता-देखता है ।

(३) प्रश्न—भगवन् ! छद्मस्थ मनुष्य किसके पास सुनकर अन्तकर मनुष्य अथवा अन्तिम शरीरी मनुष्य को जानता देखता है ?

उत्तर—हे गौतम ! केवली के पास, केवली के श्रावक के पास, केवली की श्राविका के पास, केवली के उपासक के पास, केवली की उपासिका के पास, केवलीपाक्षिक अर्थात् स्वयंबुद्ध के पास, स्वयंबुद्ध के श्रावक के पास, स्वयंबुद्ध की श्राविका के पास, स्वयं-बुद्ध के उपासक के पास, स्वयंबुद्ध की उपासिका के पास से सुन कर वह छद्मस्थ मनुष्य अन्तकर अथवा अन्तिम शरीरी (चरम-शरीरी) को जानता-देखता है ।

(४) प्रश्न—भगवन् ! क्या केवली भगवान् अन्तिम कर्म अथवा अन्तिम निर्जरा को जानते देखते हैं ।

उत्तर—हाँ, गौतम ! जानते देखते हैं ।

(५) प्रश्न—अहो भगवन् ! जिस प्रकार केवलज्ञानी भग-अन्तिम कर्म अथवा अन्तिम निर्जरा को जानते-देखते हैं, क्या उसी प्रकार छद्मस्थ मनुष्य अन्तिमकर्म अथवा अन्तिम निर्जरा को जानता-देखता है ?

उत्तर—हे गौतम ! नहीं जानता, नहीं देखता है किन्तु उपरोक्त केवली भगवान्, केवली भगवान् के श्रावक आदि दस व्यक्तिओं से सुन कर जानता देखता है अथवा प्रमाण से जानता देखता है।

(दीक्षा कब ली ?)

भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी और महावीर स्वामी ने कौन-सी उम्र में दीक्षा ली थी ? यह बताते हुए कहा है—

पासे णं अरहा तीसं वासाइं अगारवास मज्झेवसित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए।

समणे भगवं महावीरे तीसं वासाइं अगारवास मज्झे वसित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए।

—समवायांग ३० वां सम.

अर्थ—इस अवसर्पिणी काल के तेईसवें तीर्थङ्कर भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी तीस वर्ष तक गृहस्थवास मे रह कर फिर गृहस्थ से अनगार—(साधु) बने थे।

चौवीसवें तीर्थङ्कर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी तीस वर्ष तक गृहस्थवास में रह कर फिर गृहस्थ से अनगार (साधु) बने थे।

(भगवान ऋषभदेव का परिचय)

णाभिस्स णं कुलगरस्स मरुदेवाए भारियाए कुच्छिसि एत्थ णं उसहे णामं अरहा कोसलिए पढमराया पढमजिणे

पढमकेवली पढमतित्थयरे पढमधम्मवर-चाउरंत-चक्कवट्टी समुप्पज्जित्था ।

—जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति

अर्थ—चौदहवें कुलकर नाभिराजा की भार्या मरुदेवी की कुक्षि में ऋषभनाम के अरिहन्त कौशल देश की राजधानी अयोध्या नगरी में उत्पन्न हुए। वे ऋषभदेव इस भरतक्षेत्र में इस अवसर्पिणी-काल में प्रथम राजा थे। प्रथम जिन अर्थात राग द्वेष के जीतने वाले थे। प्रथम केवली अर्थात् केवलज्ञानी थे। प्रथम तीर्थंकर अर्थात् साधु साध्वी श्रावक श्राविका रूप चार तीर्थ की स्थापना करने वाले थे। वे नरकगति तिर्यञ्चगति मनुष्यगति और देवगति इन चारो गतियां का अन्त करने वाले अर्थात फिर कभी भी इन चारों गतियों में उत्पन्न न होने वाले प्रधान धर्मचक्रवर्त्ती थे ॥३५॥

उसभे णं अरहा कोसलिए वज्जरिसहणारायसंघयणे समचउरंससंठाणसंठिए पंचधणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था ।

—जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति

अर्थ—कौशलिक अर्थात् कौशल देश में उत्पन्न हुए अरिहन्त भगवान् ऋषभदेव स्वामी वज्रऋषभनाराच संहनन वाले और समचतुरस्रसंस्थान वाले थे। उनका शरीर पांच सौ धनुष का ऊँचा था।

(केवली के मन-वचन)

केवली भगवान् के प्रकृष्ट मन और वचन के विषय में प्रकाश डालते हुए कहा है:—

१—केवली णं भंते ! पणीयं मणं वा वइं वा धारेज्ज ? हंता, गोयमा ! धारेज्ज ।

२—जं णं भंते ! केवली पणीयं मणं वा वइं वा धारेज्ज तं णं वेमणिया देवा जाणंति पासंति ? गोयमा ! अत्थेगइया जाणंति पासंति, अत्थेगइया णो जाणंति णो पासंति ।

३—से केणट्ठेणं भंते ! जाव णो जाणंति णो पासंति ? गोयमा ! वेमाणिया दुविहा पण्णत्ता तंजहा—माइमिच्छादिट्ठि उववण्णगा य अमाइसम्मदिट्ठि उववण्णगा य । तत्थ णं जे ते माइमिच्छादिट्ठि उववण्णगा ते णो जाणंति णो पासंति । तत्थ णं जे ते अमाइसम्मदिट्ठि उववण्णगा ते जाणंति पासंति । एवं अणंतर परंपर पज्जत्ता अपज्जत्ता य उवउत्ता अणुवउत्ता तत्थ णं जे ते उवउत्ता ते जाणंति पासंति ॥ भगवती सूत्र शतक ५।४

अर्थ—(१) प्रश्न—भगवन् ! क्या केवली भगवान् के प्रकृष्ट मन और प्रकृष्ट वचन होता है ?

उत्तर—हाँ, गौतम ! होता है ।

(२) प्रश्न—भगवान् के जो प्रकृष्ट मन और प्रकृष्ट वचन होता है, क्या उसको वैमानिक देव जानते और देखते है ?

उत्तर—कई वैमानिक देव उसे जानते और देखते हैं और कई नहीं जानते है, नहीं देखते हैं ।

(३) प्रश्न—भगवन् ! इसका क्या कारण है कि कई वैमानिक देव उसे जानते देखते हैं और कई नहीं जानते हैं नहीं देखते हैं ?

उत्तर—हे गौतम ! वैमानिक देवों के दो भेद हैं—१ मायी मिथ्यादृष्टि और २ अमायी समदृष्टि । इनमें से जो मायी मिथ्यादृष्टि हैं वे केवली के प्रकृष्ट मन और वचन को नहीं जानते नहीं देखते हैं । जो अमायी समदृष्टि हैं वे जानते-देखते हैं । इसी तरह अनन्तरोपपन्नक परम्परोपपन्नक, पर्याप्तक, अपर्याप्तक, उपयुक्त (उपयोग वाले सावधानी वाले), अनुपयुक्त (सावधानता-रहित) का भी कथन कर देना चाहिये अर्थात् अमायी समदृष्टि देवों में भी जो अनन्तरोपपन्नक, अपर्याप्तक और अनुपयुक्त (सावधानता रहित) है, वे नहीं जानते नहीं देखते हैं । किन्तु जो परम्परोपपन्नक, पर्याप्तक और उपयुक्त (सावधानता युक्त) हैं, वे जानते-देखते हैं ॥

(बुद्धों के प्रकार)

तिविहा बुद्धा पण्णत्ता तंजहा—नाणबुद्धा दंसणबुद्धा चरित्तबुद्धा । —ठाणांग ठाणा ३

अर्थ—तीन प्रकार के बुद्ध (ज्ञानी) कहे गये हैं । जैसे कि—ज्ञान बुद्ध, दर्शन बुद्ध और चारित्र बुद्ध ।

सम्यग् बोध (सम्यक्त्व) को बोधि कहते हैं । उस बोधि से युक्त पुरुष बुद्ध कहे जाते हैं । वे बुद्ध तीन प्रकार के हैं । यथा-ज्ञान बुद्ध, दर्शन बुद्ध और चारित्र बुद्ध । यद्यपि चारित्र साक्षात् बोधि रूप नहीं है तथापि वह बोधि का फल है । इसलिए यहाँ चारित्र

को भी बोधि कहा गया है। उस चारित्र बोधि से युक्त पुरुष को चारित्र बुद्ध कहा गया है।

—ठाणांग सूत्र ३ उ० ३ सूत्र १५६ की टीका

प्रश्न—'बुद्ध' किसे कहते हैं ?

उत्तर—बुध्यतेस्म केवलज्ञानेनेति बुद्धः।' केवलज्ञानेन अवगतवस्तुतत्त्वः। केवलज्ञानदर्शनाभ्यां विश्वावगमात्। कालत्रयवेदी।

अज्ञाननिद्राप्रसुप्तेजगत्यपरोपदेशेन जीवाजीवादिरूपं तत्त्वं बुद्धवानिति बुद्धः। स्वसंविदितेन ज्ञानेन अन्यथा बोधायोगात्।

—अभि. रा. कोष 'बुद्ध' शब्द
—आवश्यक मलयगिरी टीका

अर्थ—केवलज्ञान केवलदर्शन के द्वारा जिसने संसार के समस्त पदार्थों को जान लिया है वह 'बुद्ध' कहलाता है। तीनों काल का ज्ञाता बुद्ध कहलाता है।

अज्ञाननिद्रा में सोये पड़े जगत् के अन्दर जिसने किसी दूसरे के उपदेश के बिना ही स्वसंविदित ज्ञान के द्वारा अर्थात अपने आप जीवाजीवादि समस्त वस्तु तत्त्व को जान लिया है उसे 'बुद्ध' कहते हैं।

जिन, केवली, अरिहन्त

तओ जिणा पण्णता तंजहा—ओहिणाणजिणे मणपज्जवणाणजिणे केवलणाणजिणे ।

तओ केवली पण्णत्ता तंजहा—ओहिणाणकेवली मणपज्जवणाणकेवली केवलणाणकेवली ।

तओ अरहा पण्णत्ता तंजहा—ओहिणाणअरहा मणपज्जवणाणअरहा केवलणाणअरहा ।

ठाणांग ठाणा ३

अर्थ—तीन प्रकार के 'जिन' कहे गये है, यथा—अवधिज्ञानी जिन, मनःपर्ययज्ञानी जिन और केवलज्ञानी जिन ।

तीन प्रकार के केवली कहे गये हैं । यथा—अवधिज्ञानी केवली, मनःपर्ययज्ञानी केवली और केवलज्ञानी केवली ।

तीन प्रकार के अर्हंत कहे गये हैं । यथा—अवधिज्ञानी अर्हन्त, मनःपर्ययज्ञानी अर्हन्त और केवलज्ञानी अर्हन्त ।

विवेचन-प्रश्न—'जिन' किसे कहते हैं ?

उत्तर—'रागद्वेषमोहान् जयतीति जिनः' अर्थात् राग, द्वेष, मोह को जीत लिया है, उसको 'जिन' कहते हैं ।

ज्ञान के दो भेद हैं—परोक्षज्ञान और प्रत्यक्षज्ञान । मतिज्ञान और श्रुतज्ञान को परोक्षज्ञान कहते हैं । प्रत्यक्षज्ञान के दो भेद हैं—विकलप्रत्यक्ष और सकलप्रत्यक्ष । अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान को विकलप्रत्यक्ष कहते हैं और केवलज्ञान को सकलप्रत्यक्ष कहते

है। यहाँ पर अवधिज्ञानी और मनःपर्ययज्ञानी को जिन, केवली, और अर्हन्त कहा गया है, वह उपचार से समझना चाहिये अर्थात् वे जिन, केवली, और अर्हन्त नहीं होते हुए भी जिन सरीखे, केवली सरीखे, और अर्हन्त सरीखे है। क्योंकि ये भी प्रत्यक्षज्ञानी है। ये गौण रूप से जिन, केवली और अर्हन्त है। मुख्य रूप से तो सकलप्रत्यक्षरूप केवलज्ञान को धारण करने वाले केवलज्ञानी ही जिन, केवली और अर्हन्त कहलाते हैं।

प्रश्न—केवली किसे कहते है?

उत्तर-'केवलं एकमनन्तं पूर्ण वा ज्ञानादि येषामस्ति ते केवलिनः' उक्तं च "कसिणं केवलकप्पं लोगं जाणंति तह य पासंति। केवल चरित्तणाणी, तम्हा ते केवली होंति।

अर्थात्—जो अनन्तज्ञान दर्शन चारित्र के धारक है उन्हें केवली कहते हैं। जैसा कि श्लोक द्वारा कहा है—

जो सपूर्ण लोकालोक को जानते और देखते हैं तथा अनन्त चारित्र को धारण करते है उन्हें 'केवली' कहते हैं।

प्रश्न—अर्हन्त किसे कहते है।

उत्तर—अर्हन्ति देवादिकृतां पूजामित्यर्हन्तः। अथवा नास्ति रहः प्रच्छन्नं किञ्चिदपि येषां प्रत्यक्षज्ञानित्वात् ते अरहसः।

—(स्थानांग ३ उ० ४ सूत्र २२० की टीका)

अर्थात्—जो देवादि कृत पूजा के योग्य हैं उन्हें अर्हन्त

कहते हैं। अथवा प्रत्यक्षज्ञानी होने के कारण जिनसे कोई बात रहस् अर्थात छिपा हुई नही है उन्हें अरहस-अर्हन्त कहते हैं।

(क्षय और संवेदन)

अरिहंत जिन, केवली कौन से कर्मों का क्षय करते हैं और कौन से कर्मों का संवेदन करते है—

पढमसमयजिणस्स णं चत्तारि कम्मंसा खीणा भवंति तंजहा-णाणावरणिज्जं दंसणावरणिज्जं मोहणिज्जं अंतराइयं। उप्पण्णणाणदंसणधरे णं अरहा जिणे केवली चत्तारि कम्मंसे वेएइ तंजहा-वेयणिज्जं आउयं णामं गोयं। पढमसमयसिद्धस्स णं चत्तारि कम्मंसा जुगवं खिज्जंति तंजहा-वेयणिज्जं आउयं णामं गोयं।

—ठाणांग ठाणा ४

अर्थ—प्रथम समय जिन अर्थात् सयोगी केवली के चार कर्म क्षय होते है। यथा-ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, और अन्तराय।

जिनको केवलज्ञान केवलदर्शन उत्पन्न हुए हैं ऐसे अर्हन्त जिन केवली चार कर्मों को वेदते है—अनुभव करते हैं यथा वेदनीय आयुष्य, नाम और गोत्र।

प्रथम समयसिद्ध भगवान् के चार कर्म एक साथ क्षय होते हैं। यथा-वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र।

विवेचन—ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और

अन्तराय, ये चार कर्म सर्वघाती कर्म हैं। तेरहवें गुणस्थान को प्राप्त होने वाले सयोगी केवली के ये चारों कर्म क्षय हो जाते हैं। शेष चार कर्म अघाती कर्म है अर्थात् भवविपाकी कर्म है। इसलिए जब यह शरीर छूटता है, उसी समय चारों कर्मों का क्षय हो जाता है। जिस समय जीव सिद्ध होता है, उसी समय इन चारों कर्मों का क्षय होता है अर्थात् इन चारों कर्मों के क्षय होने का और सिद्ध होने का एक ही समय है।

किसी का मत है कि—अनादि सिद्ध केवलज्ञान का धारक सदाशिव-परब्रह्म है। किन्तु उपरोक्त मूलपाठ मे दिये गये 'उप्पण्ण णाणदंसण धरे' शब्द से उपरोक्त मान्यता का खण्डन होता है। क्योंकि किसी भी जीव को अनादि काल से स्वय सिद्ध केवलज्ञान केवलदर्शन नही होते है अपितु जीव सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शन सम्यक्चारित्र द्वारा कर्मों का क्षय करके केवलज्ञान केवलदर्शन उत्पन्न करता है। इस प्रकार पुरुपार्थ द्वारा कर्मक्षय से उत्पन्न हुए केवलज्ञान केवलदर्शन को धारण करने वाले अर्हन्त जिन केवली होते है और जब वे शेष भवविपाकी चार कर्मों का क्षय कर देते हैं तब वे शाश्वत सिद्ध हो जाते है। फिर वे कभी भी ससार मे अव-तार रूप से भी जन्म नही लेते है।

(चक्रवर्त्तीपद पाये !)

कितने और कौन कौन से तीर्थङ्कर चक्रवर्ती हुए थे ? यह बताते हुए शास्त्रकार कहते हैं—

तओ तित्थयरा चक्कवट्टी होत्था तंजहा-संती, कुंथू, अरो।

—ठाणांग ठाणा ३

अर्थ—तीन तीर्थंकर चक्रवर्ती हुए थे। यथा—शान्तिनाथ भगवान्, कुँथुनाथ भगवान् और अरनाथ भगवान्। अर्थात् इस अवसर्पिणी काल में जो चौवीस तीर्थंकर हुए हैं उनमें से सोलहवें, सतरहवें और अठारहवें तीर्थंकर क्रमशः पाँचवें छठे और सातवें चक्रवर्ती हुए थे। बाकी इक्कीस तीर्थंकर मांडलिक राजा थे।

विवेचन-प्रश्न—तीर्थंकर किसे कहते हैं ?

उत्तर—सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शन सम्यक्चारित्र आदि गुण-रत्नों को धारण करने वाले प्राणीसमूह को 'तीर्थ' कहते हैं। यह तीर्थ ज्ञान दर्शन चारित्र द्वारा जीवों को संसार समुद्र से तिराने वाला है। इसलिए इसे तीर्थ कहते है। तीर्थ के चार भेद हैं—

१ साधु २ साध्वी ३ श्रावक ४ श्राविका।

इस चार प्रकार के तीर्थ की स्थापना करने वाले महापुरुष को 'तीर्थङ्कर' कहते है। प्रत्येक उत्सर्पिणी काल में चौवीस-चौवीस तीर्थङ्कर होते है। ये उपरोक्त चतुर्विध तीर्थ की स्थापना करके धर्म की प्रवृत्ति करते हैं।

प्रश्न—चक्रवर्ती किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो चक्ररत्न आदि चौदह रत्नों के धारक और छह खण्ड पृथ्वी के मालिक होते है, उन्हें चक्रवर्ती कहते हैं।

२७—तीर्थंकर गोत्र पाने वाले

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के शासन में तीर्थङ्कर गोत्र बाँधने वाले नौ जीवों के नाम बताते हुए कहा गया है:—

समणस्स भगवश्रो महावीरस्स तित्थंसि णवहिं जीवेहिं तित्थयरणामगोत्ते कम्मे णिव्वत्तिए—सेणिएणं सुपासेणं उदाइणा पोट्टिलेणं अणगारेणं दढाउणा संखेणं सयएणं सुलसाए सावियाए रेवईए। —ठाणांग ठाणा ६

अर्थ—श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के शासन में नौ जीवों ने तीर्थङ्कर नाम गोत्र कर्म बांधा था। उनके नाम इस प्रकार है—

(१) श्रेणिक राजा।

(२) सुपार्श्व-भगवान् महावीर स्वामी के चाचा।

(३) उदायी-कोणिक राजा का पुत्र।

(४) पोट्टिल अनगार।

(५) दृढ़ायु।

(६-७) शंख और शतक (पोखली) श्रावक। इनका वर्णन भगवती सूत्र में आता है। शंख श्रावक ने प्रतिपूर्ण पौषध किया था और पोखली आदि श्रावकों ने अशनादि चारों प्रकार के आहार का सेवन करते हुए पौषध किया था अर्थात् दया की थी।

(८) सुलसा—प्रसेनजित राजा के नाग नामक सारथि की पत्नी। यह धर्म में बड़ी दृढ़ थी। देवने इसकी दृढ़ता की परीक्षा ली थी। फिर भी यह अपने धर्म से विचलित नहीं हुई।

(६) रेवती—यह श्राविका थी। इसने भगवान् महावीर स्वामी के लिए सिंह अनगार को औषधि का प्रतिलाभ दिया था। उसके सेवन से भगवान् की व्याधि शान्त हो गई थी।

उपरोक्त नौ जीवों ने तीर्थङ्कर नामगोत्र कर्म बांधा था।

२८—तीर्थ के सम्बन्ध में

तीर्थ कब तक टिकेगा ? तीर्थ किसे कहना ? आदि (श्री गौतम स्वामी के द्वारा पूछे गये) प्रश्न और भ० महावीर के उत्तरः—

(१) जंबूद्दीवे णं भंते ! दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए देवाणुप्पियाणं केवइयं कालं तित्थे अणुसज्जिस्सइ ? गोयमा ! जंबूद्दीवे दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए ममं एगवीसं वाससहस्साइं तित्थे अणुसज्जिस्सइ ।

(२) जहा णं भंते ! जंबूद्दीवे दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए देवाणुप्पियाणं एगवीसं वाससहस्साइं तित्थं अणुसज्जिसइ, तहा णं भंते ! जंबूद्दीवे दीवे भारहे वासे आगमेस्साणं चरिम तित्थयरस्स केवइयं कालं तित्थं अणुसज्जिस्सइ ? गोयमा ! जावइए णं उसभस्स अरहओ कोसलियस्स जिणपरियाए एवइयाइं संखेज्जाइं आगमेस्साणं चरिमतित्थयरस्स तित्थे अणुसज्जिस्सइ !

—भगवती सूत्र शतक २०/८

(१) प्रश्न—भगवन् ! इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में इस अवसर्पिणीकाल में आपका तीर्थ (शासन) कितने काल तक चलेगा ?

उत्तर—हे गौतम! इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में इस अवसर्पिणी काल मे मेरा तीर्थ (शासन) इक्कीस हजार वर्ष तक चलेगा। प्रश्नः—भगवन्! जिस प्रकार इस जंबूद्वीप के भरत क्षेत्र में आपका तीर्थ इक्कीस हजार वर्ष तक चलेगा। इसी प्रकार इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में आगामी तीर्थंकरों में से चरम तीर्थंकर का तीर्थ (शासन) कितने काल तक चलेगा?

उत्तर—हे गौतम! कौशलिक भगवान् ऋषभदेव स्वामी का जितना जिनपर्याय (केवली पर्याय) कहा गया है अर्थात् एक हजार वर्ष कम एक लाख पूर्व वर्ष तक आगामी तीर्थंकरों में से चरम तीर्थङ्कर का तीर्थ (शासन) चलेगा।

(१) तित्थं भंते! तित्थं, तित्थयरे तित्थं? गोयमा! अरहा ताव णियमं तित्थयरे, तित्थं पुण चाउवण्णाइण्णे समणसंघो तंजहा—समणा समणीओ सावया सावियाओ।

(२) पवयणं भंते! पवयणं, पावयणी पवयणं? गोयमा! अरहा ताव णियमं पावयणी। पवयणं पुण दुवालसंगे गणिपिडगे तंजहा—आयारो जाव दिट्ठिवाओ।

—भगवती सूत्र शतक २०।८

अर्थ—(१) प्रश्न—गौतम स्वामी श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से पूछ रहे है कि भगवन्! क्या तीर्थ को तीर्थ कहते हैं या तीर्थङ्कर को तीर्थ कहते है?

उत्तर—हे गौतम! अरिहंत तो नियमा (अवश्य) तीर्थंकर (तीर्थ की स्थापना करने वाले) है, परन्तु तीर्थ नहीं हैं। चार

गोशालक के द्वारा महावीरस्तुति

जब मंखलिपुत्र गौशालक ने यह वृत्तान्त सुना कि सद्दालपुत्र ने आजीवक मत को त्याग कर निर्ग्रन्थ श्रमण मत अंगीकार कर लिया है तो उसने सोचा कि मैं जाऊँ और आजीवकोपासक सद्दालपुत्र को निर्ग्रन्थ श्रमण मत का त्याग कराकर फिरसे आजीवक मत का अनुयायी बनाऊँ। ऐसा विचार कर वह पोलासपुर में आया और आजीवक सभा में अपने भण्डोपकरण रखकर कुछ आजीवकों के साथ सद्दालपुत्र श्रावक के पास आया।

सद्दालपुत्र श्रावक ने मंखलिपुत्र गोशालक को आते देखा। आते देखकर उसने उसे किसी प्रकार का आदर सत्कार नहीं दिया किन्तु चुपचाप बैठा रहा। यह देख कर गोशालक ने उससे पीठ फलक शय्या संथारा प्राप्त करने के लिए श्रमण भगवान् महावीर स्वामी की प्रशंसा करते हुए इस प्रकार कहाः—

आगए णं देवाणुप्पिया! इहं महामाहणे?

तए णं से सद्दालपुत्ते समणोवासए गोसालं मंखलिपुत्तं एवं वयासी—के णं देवाणुप्पिया! महामाहणे? तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते सद्दालपुत्तं समणोवासयं एवं वयासी—समणे भगवं महावीरे महामाहणे। से केणट्ठेणं देवाणुप्पिया! एवं वुच्चइ समणे भगवं महामाहणे? एवं खलु सद्दालपुत्ता! समणे भगवं महामाहणे उप्पण्णणाण दंसणधरे जाव महिय-

पूइए जाव तच्चकम्मसंपयासंपउत्ते से तेणट्ठेणं देवाणुप्पिया ! एवं वुच्चइ समणे भगवं महावीरे महामाहणे !

अर्थः—हे देवानुप्रिय सद्दाल पुत्र ! क्या यहाँ महामाहन पधारे थे ?

सद्दालपुत्र—हे देवानुप्रिय ! आप किस को महामाहन कहते हैं ?

गोशालक—मैं श्रमण भगवान् महावीर को महामाहन कहता हूं।

सद्दालपुत्र—हे देवानुप्रिय ! आप श्रमण भगवान् को किस अभिप्राय से महामाहन कहते हैं ?

गोशालक—सद्दालपुत्र ! श्रमण भगवान् महावीर केवलज्ञान केवलदर्शन के धारक हैं। वे नरेन्द्र देवेन्द्रों द्वारा महित-पूजित है ! वे सत्फल प्रदान करने वाले कर्त्तव्य रूपी सम्पत्ति से युक्त हैं। इसलिए मैं श्रमण भगवान् महावीर को 'महामाहन' कहता हूँ।

२—आगए णं देवाणुप्पिया ! इहं महागोवे ? के णं देवाणुप्पिया ! महागोवे ? समणे भगवं महावीरे महागोवे ! से केणट्ठेणं देवाणुप्पिया ! एवं वुच्चइ समणे भगवं महावीरे महागोवे। एवं खलु सद्दालपुत्ता ! समणे भगवं महावीरे संसाराडवीए बहवे जीवे णस्समाणे विणस्समाणे खज्जमाणे छिज्जमाणे भिज्जमाणे लुप्पमाणे विलुप्पमाणे धम्ममएणं दंडेणं सारक्खमाणे संगोवेमाणे णिव्वाणमहावाडं साहत्थि संपावेइ

से तेणट्ठेणं सद्दालपुत्ता ! एवं वुच्चइ समणे भगवं महावीरे महागोवे । —उपासकदशांग अध्य० ७

अर्थ—गोशालक-हे देवानुप्रिय सद्दालपुत्र ! क्या यहाँ महा-गोप (गायों अर्थात् प्राणियों के सब से बड़े रक्षक) आये थे ।

सद्दालपुत्र—हे देवानुप्रिय ! आप महागोप किसको कहते हैं ।

गोशालक—हे सद्दालपुत्र ! मैं श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को महागोप कहता हूं ।

सद्दालपुत्र—हे देवानुप्रिय ! आप श्रमण भगवान् महावीर-स्वामी को महागोप किस अभिप्राय से कहते है ?

गोशालक—हे सद्दालपुत्र ! इस संसाररूपी विकट अटवी (वन) में कपायवश होकर प्रवचन मार्ग से भ्रष्ट होने वाले, प्रति-क्षण मरते हुए, मृग आदि डरपोक योनियां में उत्पन्न होकर हिंसक-व्याघ्र आदि से खाये जाने वाले, भाले आदि से बांधे जाने वाले कलह व्यभिचार एवं चोरी आदि करने पर नाक, काट कर अंग हीन बनाये जाने वाले तथा अत्यन्त विकलांग किये जाने वाले, लूटे जाने वाले बहुत जीवों को धर्ममय डंडे से रक्षा करते हुए निर्वाण (मोक्ष) रूपी बाड़े में अपने हाथ से प्रवेश कराने वाले जैसे गोप-ग्वाला गायां की रक्षा करता हुआ सन्ध्या के समय स्वयं उन्हे वाड़े में पहुंचा देता है । उसी प्रकार संसारी जीवों को स्वयं निर्वाण रूपी बाड़े में पहुंचाने वाले श्रमण भगवान् महा-वीर स्वामी हैं । इस कारण से मैं उन्हें महागोप कहता हूँ ॥

३-आगए णं देवाणुप्पिया ! इहं महासत्थवाहे ? के णं देवाणुप्पिया ! महासत्थवाहे ? सद्दालपुत्ता ! समणे

भगवं महावीरे महासत्थवाहे । से केणट्ठेणं एवं वुच्चइ समणे भगवं महावीरे० ? एवं खलु देवाणुप्पिया ! समणे भगवं महावीरे संसाराडवीए बहवे जीवे णस्समाणे विणस्समाणे जाव विलुप्पमाणे धम्ममएणं पंथेणं सारक्खमाणे णिव्वाण-महापट्टणाभिमुहे साहत्थिं संपावेइ से तेणट्ठेणं सद्दालपुत्ता एवं वुच्चइ समणे भगवं महावीरे महासत्थवाहे ।

अर्थ—गोशालक—हे सद्दालपुत्र ! क्या यहाँ महासार्थवाह आये थे ?

सद्दालपुत्र—हे देवानुप्रिय ! आप किसको महासार्थवाह कहते है ?

गोशालक—हे सद्दालपुत्र ! मैं श्रमण भगवान् महावीर को महासार्थवाह कहता हूँ । सद्दालपुत्र—आप श्रमण भगवान् महावीर को महासार्थवाह किस अभिप्राय से कहते है ?

गोशालक—हे सद्दालपुत्र ! श्रमण भगवान् महावीर संसार रूपी अटवी में नष्ट भ्रष्ट यावत विकलाङ्ग किये जाने वाले बहुत से जीवो को धर्ममार्ग बता कर उनका संरक्षण करते हैं और स्वयं मोक्ष रूपी महान् नगर की ओर उन्मुख करते है । इसलिए मैं उन्हें महासार्थवाह कहता हूं ।

४—आगए णं देवाणुप्पिया ! इहं महाधम्मकही ? के णं देवाणुप्पिया महाधम्मकही ? सद्दालपुत्ता ! समणे भगवं महावीरे महाधम्मकही । से केणट्ठेणं देवाणुप्पिया ! एवं वुच्चइ समणे भगवं महावीरे महाधम्मकही ? एवं खलु

सद्दालपुत्ता ! समणे भगवं महावीरे महइमहालयंसि संसारंसि बहवे जीवे जाव णस्समाणे विणस्समाणे उम्मग्गपडिवण्णे सप्पहविप्पणट्ठे मिच्छत्तबलाभिभूए अट्ठविहकम्मतमपडलपडिच्छण्णे बहूहिं अट्ठेहिं य जाव वागरणेहिं य चाउरंताओ संसारकंताराओ साहत्थिं णित्थारेइ से तेणट्ठेणं देवाणुप्पिया ! एवं वुच्चइ समणे भगवं महावीरे महाधम्मकही ॥

अर्थ—गोशालक—हे देवानुप्रिय सद्दालपुत्र ! क्या यहाँ महाधर्मकथी आये थे।

सद्दालपुत्र—हे देवानुप्रिय ! आप किसको महाधर्मकथी कहते हैं ?

गोशालक—हे सद्दालपुत्र ! मैं श्रमण भगवान् महावीर को महाधर्मकथी कहता हूँ।

सद्दालपुत्र—हे देवानुप्रिय ! आप श्रमण भगवान् महावीर को महाधर्मकथी किस अभिप्राय से कहते हैं ?

गोशालक—हे सद्दालपुत्र ! श्रमण भगवान् महावीर इस अपार ससार में बहुत से नष्ट विनष्ट, कुमार्ग अर्थात् मिथ्या मत में गमन करने वाले, सुमार्ग अथवा जिनधर्म से हटे हुए, मिथ्यात्व के प्रबल उदय से मोहान्ध बने हुए, आठ प्रकार के कर्मरूपी अन्धकार समूह से ढके हुए जीवों को बहुत से हेतु युक्तियों से एवं प्रश्नोत्तरों से प्रतिबोध देकर चार गति वाले ससार रूपी दुर्गम मार्ग से पार लगाते हैं। इसलिए मैं श्रमण भगवान् महावीर को महाधर्मकथी (धर्म के महान् उपदेशक) कहता हूँ।

५—आगए णं देवाणुप्पिया ! इहं महाणिज्जामए ? के णं देवाणुप्पिया ! महाणिज्जमए ? सद्दालपुत्ता ! समणे भगवं महावीरे महाणिज्जामए। से केणट्ठेणं देवाणुप्पिया ! एवं वुच्चइ समणे भगवं महावीरे० ? सद्दालपुत्ता समणे भगवं महावीरे संसारमहासमुद्दे बहवे जीवे णस्समाणे विणस्समाणे वुड्डमाणे णिवुड्डमाणे उप्पियमाणे धम्ममईए णावाए णिव्वाणतीराभिमुहे साहत्थि संपावेइ से तेणट्ठेणं देवाणुप्पिया ! एवं वुच्चइ समणे भगवं महावीरे महाणिज्जामए ॥

—उपासकदशांक अ० ७

अर्थ—गोशालक—हे देवानुप्रिय सद्दालपुत्र ! क्या यहाँ महानिर्यामक (ससार समुद्र से पार उतारने वाले) आये थे ?

सद्दालपुत्र—हे देवानुप्रिय ! आप महानिर्यामक किसको कहते हैं ?

गोशालक—हे सद्दालपुत्र ! मैं श्रमण भगवान् को महानिर्यामक कहता हूं।

सद्दालपुत्र—हे देवानुप्रिय ! आप श्रमण भगवान् महावीर को महानिर्यामक किस अभिप्राय से कहते है ?

गोशालक—हे सद्दालपुत्र ! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी संसार रूपी महान् समुद्र मे नष्ट होने वाले, विनष्ट होने वाले, डूबने वाले, बारम्बार गोता खाने वाले तथा बहने वाले बहुत से जीवों को धर्म रूपी नौका से निर्वाण रूप किनारे की ओर ले जाते है। इसलिए मैं श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को "महा निर्यामक" कहता हूँ।

३०—महावीर-प्रशस्ति

समणे भगवं महावीरे आइगरे तित्थयरे सयंसंबुद्धे पुरिसुत्तमे पुरिससीहे पुरिसवरगंधहत्थीए अभयदए चक्खुदए मग्गदए सरणदए जीवदए दीवो ताणं सरणगई पइट्ठा धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टी अप्पडिहयणाणदंसणधरे वियट्टछउमे अरहा जिणकेवली जिणे जाणए तिण्णे तारए बुद्धे बोहिए मुत्ते मोयए सव्वण्णू सव्वदरिसी सिवमयलमरुअमणंतमक्खयमव्वाबाहमपुणरावित्ति सिद्धिगइणामधेयं ठाणं *संपाविउकामे ॥ —उववाई सूत्र

अर्थ—चौवीसवे तीर्थंकर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी कैसे थे ? सो बतलाया जाता है—धर्म की आदि (प्रारम्भ) करने वाले, धर्मतीर्थ की स्थापना करने वाले गुरुउपदेशादि के बिना स्वयं ही बोध पाये हुए, पुरुषों में उत्तम, पुरुषों में सिंह के समान, पुरुषों मे प्रधान गन्धहस्ती के समान, अभय के देने वाले, ज्ञानरूपी नेत्र के देने वाले, मोक्षमार्ग के देने वाले, शरण देने वाले,

---

* टिप्पण—यह वर्णन उस समय का है जब कि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में सर्वज्ञ सर्वदर्शी होकर तीर्थंकर रूप से विचरण कर रहे थे। इसी लिए 'सिद्ध गति को प्राप्त करने के अभिलाषी' ऐसा कहा गया है। अब तो वे भगवान् सिद्ध गति को प्राप्त कर चुके है।

संयम जीवन के देने वाले, संसारसमुद्र में द्वीप के समान रक्षा करने वाले, शरण रूप, गति रूप, संसारसमुद्र में गिरते हुए प्राणियों के लिए आधार रूप, चारगति का अन्त करने वाले, धर्म रूप चक्र को धारण करने वाले अतएव प्रधान धर्म चक्रवर्त्ती रूप, अप्रतिहत, (बाधारहित) तथा श्रेष्ठ यानी पूर्ण ज्ञान दर्शन को धारण करने वाले, छद्मस्थ अवस्था से निवृत्त, अरिहन्त जिनकेवली, रागद्वेष को जीतने वाले, दूसरों को रागद्वेष जिताने वाले, स्वयं संसार सागर से तिरे हुए, दूसरों को संसार सागर से तिराने वाले, स्वयं बोध पाये हुए, दूसरों को कर्मबन्धन से छुड़ाने वाले, सर्वज्ञ, (सब कुछ जानने वाले), शिव-निरुपद्रव एवं कल्याण स्वरूप, स्थिर, रोगरहित, क्षयरहित, बाधा-पीड़ा रहित पुनरागमन रहित सिद्धि गति नामक स्थान को प्राप्त करने के अभिलाषी हैं।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के आत्मिक गुणों का वर्णन करते हैं:—

अणासवे अममे अकिंचणे छिण्णसोए णिरूवलेवे ववगयपेमरागदोसमोहे, णिग्गंथस्स पवयणस्स देसए सत्थणायगे पइट्ठावए समणगपई समणगविंदपरियट्टिए चउत्तीसवयणाइसयपत्ते पणतीस सच्चवयणाइसयसंपत्ते ॥

—औपपातिक समवसरणाधिकार ९.

अर्थ—श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के आभ्यन्तर (आत्मिक) गुणों का वर्णन किया जाता है—वे अनास्रव थे अर्थात् प्राणातिपातादि एवं मिथ्यात्वादि सभी आस्रवों से रहित थे। वे शरीरादि की ममता से रहित थे। वे अकिञ्चन अर्थात् सब प्रकार परिग्रह से रहित थे। वे छिन्नस्रोत थे अर्थात् आस्रव

रूपी स्रोत से रहित थे । वे निरुपलेप थे अर्थात् द्रव्य से खराब वस्तु के लेपरहित थे और भाव से पाप के लेप से रहित थे। वे प्रेम, राग, द्वेष, और मोह से रहित थे। वे निर्ग्रन्थ प्रवचन के उपदेशक, साधु साध्वी श्रावक श्राविका रूप चार तीर्थ के नायक, प्रतिष्ठा-युक्त, श्रमणसंघाधिपति, श्रमणसंघ से परिवृत्त एवं श्रमणसंघ के धर्म की वृद्धि करने वाले, तीर्थङ्कर भगवान् के चौतीस अतिशयों से युक्त और वाणी (सत्य वचन) के पैंतीस गुणों से युक्त थे ॥

तीर्थंकर भगवान् की वाणी के पैंतीस अतिशय होते हैं। इनको सत्य वचनातिशय भी कहते हैं। वे इस प्रकार हैं—

(१) संस्कारवत्त्व—संस्कृत आदि गुणों से युक्त होना अर्थात् वाणी का भाषा और व्याकरण की दृष्टि से निर्दोष होना।

(२) उदात्तत्व—उदात्तस्वर अर्थात् स्वर का ऊँचा होना।

(३) उपचारोपेतत्व—ग्राम्य दोष से रहित होना।

(४ गम्भीर शब्दता—मेघ की तरह आवाज में गम्भीरता होना।

(५) अनुनादित्व—आवाज का प्रतिध्वनि सहित होना।

(६) दक्षिणत्व—भाषा में सरलता होना।

(७) उपनीतरागत्व—मालव केशिका आदि ग्राम राग से युक्त होना अथवा स्वर में ऐसी विशेषता होना कि श्रोताओं में व्याख्येय विषय के प्रति बहुमान के भाव उत्पन्न हों।

(८) महार्थत्व—अभिधेय अर्थ में महानता एवं परिपुष्टता का होना। थोड़े शब्दों में अधिक अर्थ कहना।

(९) अव्याहतपौर्वापर्यत्व—वचनों में पूर्वापर विरोध न होना।

(१०) शिष्टत्व—अभिमत सिद्धान्त का कथन व
वक्ता की शिष्टता सूचित हो ऐसा अर्थ कहना।

(११) असन्दिग्धत्व अभिमत वस्तु का ऐसी स्पष्टता से कथन करना कि श्रोता के दिल मे सन्देह न रहे।

(१२) अपहृतान्योत्तरत्व-दूषण रहित वचन बोलना और इसलिये शङ्का समाधान का अवसर ही न आने देना।

(१३) हृदयग्राहित्व—वाच्य अर्थ को इस ढंग से कहना कि श्रोता का मन आकृष्ट हो एवं वह कठिन विपय को भी सरलता-पूर्वक समझ जाय।

(१४) देशकालाव्यतीत्व-देश काल के अनुसार अर्थ करना।

(१५) तत्त्वानुरूपत्व विवक्षित वस्तु का जो स्वरूप हो उसी के अनुसार उसका व्याख्यान करना।

(१६) अप्रकीर्णप्रसृतत्व—अप्रकृत अर्थात असम्बद्ध अर्थ का कथन न करना एवं सम्बद्ध अर्थ का भी अत्यधिक विस्तार न करना अपितु प्रकृत वस्तु का विस्तार के साथ व्याख्यान करना।

(१७) अन्योन्यप्रगृहीतत्व—पद और वाक्यों का परस्पर सापेक्ष होना।

(१८) अभिजातत्व-भूमिकानुसार विपय का कथन करना।

(१९) अति स्निग्ध मधुरत्व—भूखे व्यक्ति को जैसे घी, गुड़ आदि परम सुखकारी होते है उसी प्रकार स्नेह एवं माधुर्य परिपूर्ण वाणी का श्रोता के लिये परम सुखकारी होना।

(२०) उदारत्व—प्रतिपाद्य अर्थ का महान् होना अथवा शब्द और अर्थ की विशिष्ट रचना होना।

(२१) अपरमर्मवेधित्व—दूसरे के मर्म रहस्य का प्रकाशित न होना।

(२२) अर्थधर्माभ्यासानपेतत्व—मोक्ष रूप अर्थ एवं श्रुत चारित्र रूप धर्म से सम्बद्ध होना।

(२३) परनिन्दात्मोत्कर्ष विप्रमुक्तत्व-दूसरे की निन्दा और अपनी प्रशंसा से रहित होना।

(२४) उपगतश्लाघत्व—वचन में उपरोक्त (परनिन्दात्मोत्कर्ष विप्रमुक्तत्व) गुण होने से वक्ता की श्लाघा-प्रशंसा होना।

(२५) अनपनीतत्व—कारक, काल, लिङ्ग वचन आदि के विपर्यास रूप दोषों का न होना।

(२६) उत्पादिताविच्छिन्नकुतूहलत्व—श्रोताओं में वक्ता विषयक कुतूहल निरन्तर बने रहना।

(२७) अद्भुतत्व—वचनों के अश्रुतपूर्व होने के कारण श्रोताओं के मन में हर्ष रूप विस्मय बने रहना।

(२८) अनतिविलम्बितत्व—विलम्ब रहित होना अर्थात् धाराप्रवाह से उपदेश देना।

(२९) विभ्रम विक्षेप किलिकिञ्चितादि विप्रमुक्तत्व—वक्ता के मन में भ्रान्ति होना विभ्रम है। प्रतिपाद्य विषय में उसका मन न लगना विक्षेप है। क्रोध, लोभ, भय आदि भावों के सम्मिश्रण को किलिकिञ्चित कहते हैं। इन दोषों से तथा मन के अन्य दोषों से रहित होना।

(३०) विचित्रत्व—वर्णनीय वस्तुओं के विविध प्रकार की होने के कारण वाणी में विचित्रता होना।

(३१) आहितविशेषत्व—दूसरे पुरुषों की अपेक्षा वचनों में विशेषता होने के कारण श्रोताओं को विशिष्ट बुद्धि प्राप्त होना।

(३२) साकारत्व—वर्ण, पद, वाक्यों का पृथक् पृथक् होना।

(३३) सत्त्वपरिगृहीतत्व—भाषा का ओजस्वी एवं प्रभावशाली होना।

(३४) अपरिखेदित्व—उपदेश देते हुए थकावट अनुभव न करना।

(३५) अव्युच्छेदित्व—जो तत्त्व समझाना चाहते हैं उसकी जब तक सम्यक् प्रकार से सिद्धि न हो तब तक बिना व्यवधान के उनका व्याख्यान करते रहना।

इनमे से पहले सात अतिशय शब्द की अपेक्षा हैं, शेष अतिशय अर्थ की अपेक्षा है।

सूत्रों में इन पैंतीस वचनातिशयों की संख्या मात्र का उल्लेख मिलता है। समवायाङ्ग सूत्र, राजप्रश्नीय सूत्र और औपपातिक सूत्रों की टीका में इन अतिशयों के नाम और उनकी व्याख्या है। अतः यहाँ टीका के अनुसार उन अतिशयों के नाम और व्याख्या दी गई है।

३१—महावीर-स्तुति

भगवान् महावीर स्वामी के गुणों का वर्णन करते हुए कहा है:—

पुच्छिसु णं समणा माहणा य,
अगारिणो य परतित्थिया य ।
से केइ णेगंत हियधम्ममाहु,
अणेलिसं साहु समिक्खयाए ॥१॥

अर्थ—श्री सुधर्मास्वामी ने जम्बूस्वामी से कहा कि श्रमण ब्राह्मण क्षत्रिय आदि तथा अन्यतीर्थिकों ने मुझ से पूछा था कि हे भगवन् ! कृपा कर आप हमें बतलाइये कि केवलज्ञान से सम्यक् जान कर एकान्त रूप से कल्याणकारी अनुपम धर्म को जिसने कहा है वह कौन है ? ॥१॥

कहं च णाणं कहं दंसणं से,
सीलं कहं णायसुयस्स आसी ।
जाणासि णं भिक्खू जहातहेणं,
अहासुतं बूहि जहा णिसंतं ॥

अर्थ—श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के ज्ञान दर्शन और चारित्र कैसे थे ? हे भगवन् ! आप यह जानते हैं अतः जैसे आपने सुना और निश्चय किया है वह कृपया हमें बतलाइये ॥२॥

खेयण्णए से * कुसले महेसी,
अणंतणाणी य अणंतदंसी ।
जसंसिणो चक्खुपहे ठियस्स,
जाणाहि धम्मं च धिइं च पेहि ॥३॥

अर्थ—उपरोक्त प्रश्न के उत्तर में हे जम्बू! मैंने भगवान् के जो गुण कहे थे, वे ही तुमसे कहता हूँ—श्रमण भगवान् महावीर स्वामी संसार के प्राणियों के दुःख एवं कष्टों को जानते थे। वे आठ प्रकार के कर्मों का नाश करने वाले और सदा सर्वत्र उपयोग रखने वाले थे। वे अनन्तज्ञानी और अनन्तदर्शी थे। भवस्थ केवली अवस्था में भगवान् जगत् के नेत्र रूप थे। उनके द्वारा कथित धर्म का तथा उनके धैर्य आदि यथार्थ गुणों का मैं वर्णन करूंगा। तुम ध्यान पूर्वक सुनो ॥३॥

उड्ढं अहेयं तिरियं दिसासु,
तसा य जे थावर जे य पाणा ।
से णिच्चणिच्चेहि समिक्ख पण्णे,
दीवे व धम्मं समियं उदाहु ॥४॥

अर्थ—केवलज्ञानी भगवान् महावीर स्वामी ने ऊर्ध्व दिशा अधो दिशा और तिर्यक्दिशा मे रहने वाले त्रस और स्थावर प्राणियों को अच्छी तरह देख कर उनके लिए कल्याणकारी धर्म कथन किया है। तत्त्वों के ज्ञाता भगवान् ने पदार्थों का स्वरूप दीपक के समान नित्य और अनित्य दोनों प्रकार का कहा है ॥४॥

* कुसलासुपण्णे—इति प्रा०

से सव्वदंसी अभिभूय णाणी,
णिरामगंधे धिइमं ठियप्पा ।
अणुत्तरे सव्व जगंसि विज्जं,
गंथा अतीते अभए अणाऊ ॥५॥

अर्थ—भगवान् महावीर स्वामी समस्त पदार्थों को जानने और देखने वाले सर्वज्ञ और सर्वदर्शी थे। वे मूल गुण और उत्तर गुण युक्त विशुद्ध चारित्र का पालन करने वाले बड़े धीर और आत्म स्वरूप में स्थित थे। भगवान् समस्त जगत् में सर्वश्रेष्ठ विद्वान् थे। वे बाह्य और आभ्यन्तर ग्रन्थि से रहित थे तथा निर्भय एवं आयु रहित (वर्तमान आयु के सिवाय चारों गति की आयु से रहित) थे क्यों कि कर्मरूपी बीज के जल जाने से इस भव के बाद उनकी किसी भी गति में उत्पत्ति नहीं हो सकती थी ॥५॥

से भूइपण्णे अणिए अचारी
ओहंतरे धीरे अणंतचक्खू ।
अणुत्तरं तप्पति सूरिए वा,
वइरोयणिंदेव तमं पगासे ॥६॥

अर्थ—भगवान् महावीर स्वामी भूतिप्रज्ञ (अनन्तज्ञानी), प्रतिबन्धरहित-इच्छानुसार विचरने वाले, संसार सागर को पार करने वाले, परीषह और उपसर्गों को समभाव पूर्वक सहन करने वाले धीर और पूर्णज्ञानी थे। वे सूर्य के समान प्रकाश करने वाले थे और जिस तरह अग्नि अन्धकार को दूर कर प्रकाश करती है उसी तरह भगवान् अज्ञानरूपी अन्धकार को दूर कर पदार्थों का यथार्थ स्वरूप प्रकाशित करते थे ॥६॥

अणुत्तरं धम्ममिणं जिणाणं,
णेया मुणी कासव आसुपण्णे।
इंदेव देवाण महाणुभावे,
सहस्सणेता दिवि णं विसिट्ठे ॥७॥

अर्थ—दिव्यज्ञानी भगवान् महावीर स्वामी ऋषभादि जिनेश्वरों द्वारा प्रणीत उत्तम धर्म के नेता थे। जिस प्रकार स्वर्ग-लोक में इन्द्र महाप्रभावशाली तथा देवों का नायक है एवं सभी देवों में श्रेष्ठ है उसी तरह। भगवान् भी सभी से श्रेष्ठ थे तीन लोक के नेता थे। तथा सभी से अधिक प्रभावशाली थे ॥७॥

से पण्णया अक्खयसागरे वा,
महोदही वावि अणंतपारे ।
अणाइले वा अकसाई मुक्के,
सक्केव देवाहिवई जुइमं ॥८॥

अर्थ—भगवान् समुद्र के समान अक्षय प्रज्ञा वाले थे। जिस प्रकार स्वयम्भूरमण समुद्र अनन्त है, उसका पार नहीं पाया जा सकता, उसी प्रकार भगवान् का ज्ञान भी अनन्त है उसका पार नहीं पाया जा सकता है। स्वयम्भूरमण समुद्र का जल निर्मल है उसी प्रकार भगवान् का ज्ञान भी निर्मल है। भगवान् कषायों से रहित तथा मुक्त हैं। देवों के अधिपति इन्द्र के समान भगवान् बड़े तेजस्वी हैं ॥८॥

से वीरिएणं पडिपुण्णवीरिए,
सुदंसणे वा णगसव्वसेट्ठे ।

सुरालए वासिमुदागरे से,
विरायए णेगगुणोववेए ॥६॥

अर्थ—वीर्यान्तराय कर्म के सर्वथा क्षय होजाने से भगवान् अनन्त वीर्य युक्त हैं। जैसे पर्वतों में सुमेरु पर्वत श्रेष्ठ है उसी प्रकार भगवान् तीन लोक के समस्त प्राणियों में श्रेष्ठ हैं। जैसे स्वर्ग प्रशस्त वर्ण रस गन्ध रूप स्पर्श और प्रभाव आदि गुणों से युक्त है और देवों को आनन्द देने वाला है, उसी प्रकार भगवान् भी अनेक गुणों से सुशोभित हैं ॥६॥

सयं सहस्साण उ जोयणाणं,
तिकंडगे पंडगवेजयंते।
से जोयणे णवणवते सहस्से,
उद्धुस्सितो हेट्ठसहस्समेगं ॥१०॥

अर्थ—ऊपर की गाथा में भगवान् को सुमेरु पर्वत की उपमा दी है उसी सुमेरु पर्वत का विशेष वर्णन करते हुए शास्त्रकार कहते हैं—सुमेरु पर्वत एक लाख योजन ऊँचा है। उसके तीन विभाग हैं—भूमिमय, सुवर्णमय और वैडूर्यरत्नमय। ऊपर पताका रूप पाण्डुक वन है। सुमेरु पर्वत निन्यानवें हजार योजन ऊँचा है और एक हजार योजन भूमि मे रहा हुआ है ॥१०॥

पुट्ठे णभे चिट्ठइ भूमिवट्ठिए,
जं सूरिया अणुपरियट्टयंति।
से हेमवण्णे बहुणंदणे य,
जंसि रतिं वेदयंति महिंदा ॥११॥

अर्थ—सुमेरु पर्वत ऊपर आकाश को स्पर्श कर रहा हुआ है तथा नीचे पृथ्वी को अवगाहन करके स्थित है। इस प्रकार वह तीनों लोकों का स्पर्श किये हुए है। सूर्य, ग्रह नक्षत्र आदि इस पर्वत की परिक्रमा करते हैं। तपे हुए सोने के समान इसका सुनहला वर्ण है। यह चार वनों से युक्त है। भूमिमय विभाग में भद्रशाल वन है, उससे पांच सौ योजन ऊपर नन्दन वन है। उससे बासठ हजार पांच सौ योजन ऊपर सोमनस वन है। उससे छत्तीस हजार योजन ऊपर शिखर पर पाण्डुक वन है। इस प्रकार वह पर्वत चार सुन्दर वनों से युक्त विचित्र क्रीड़ास्थान है। इन्द्र भी स्वर्ग से आकर इस पर क्रीड़ा करते हैं एवं आनन्द का अनुभव करते हैं ॥११॥

से पव्वए सद्दमहप्पगासे,
विरायइ कंचणमट्ठवण्णे।
अणुत्तरे गिरिसु य पव्वदुग्गे,
गिरिवरे से जलिए व भोमे ॥१२॥

अर्थ—वह सुमेरु पर्वत मन्दर, मेरु, सुमेरु, सुदर्शन, सुरगिरि आदि अनेक नामों से जगत में प्रसिद्ध है। उसका वर्ण तपे हुए सोने के समान शुद्ध है। वह पर्वत सब पर्वतों से अनुत्तर प्रधान है और उपपर्वतों के कारण अति दुर्गम है अर्थात् सामान्य प्राणियों का उस पर चढ़ना बड़ा कठिन है। पर्वत, मणियों और औषधियों से सदा प्रकाशमान रहता है ॥१२॥

महीइ मज्झम्मि ठिते णगिंदे,
पण्णयते सूरियसुद्धलेस्से।

एवं सिरीए उ स भूरिवणो;
मणोरमे जोयइ अच्चिमाली ॥१३॥

अर्थ—यह पर्वतराज पृथ्वी के मध्य भाग में स्थित है। वह सूर्य के समान कान्ति वाला है। विविध वर्णों के रत्नों से सुशोभित होने से वह अनेक वर्ण वाला और विशिष्ट शोभा वाला है, इसलिए बड़ा ही मनोरम है। वह सूर्य के समान दसों दिशाओं को प्रकाशित करता रहता है ॥१३॥

सुदंसणस्सेव जसो गिरिस्स,
पवुच्चई महतो पव्वयस्स।
एतोवमे समणे णायपुत्ते,
जाइजसो दंसणणाणसीले ॥ १४ ॥

अर्थ—मेरु का दृष्टान्त बतलाकर शास्त्रकार दार्ष्टान्तिक बतलाते हैं—महान् सुमेरु पर्वत के यश का वर्णन ऊपर किया गया है। उसी प्रकार ज्ञातपुत्र श्रमण भगवान् महावीर स्वामी भी सब जाति वालों में श्रेष्ठ है। यश में समस्त यशस्वियों से उत्तम हैं ज्ञान तथा दर्शन में ज्ञान दर्शन वालों से प्रधान हैं और शील में समस्त शीलवानों में उत्तम हैं ॥१४॥

गिरिवरे से णिसहाययाणं,
रुयए व सेट्ठे वलयायताणं।
तओवमे से जगभूइपण्णे,
मुणीण मज्झे तमुदाहु पण्णे ॥१५॥

अर्थ—जैसे लम्बे पर्वतो मे निषध पर्वत श्रेष्ठ है और गोल पर्वतों में रुचक पर्वत श्रेष्ठ है। इसी तरह अतिशय ज्ञानी भगवान् महावीर स्वामी भी सब मुनियो मे श्रेष्ठ है ऐसा बुद्धिमानों ने कहा है ॥१५॥

अणुत्तरं धम्ममुईरइत्ता,
अणुत्तरं झाणवरं झियाइ।
सुसुक्कसुक्कं अपगंडसुक्कं,
संखिंदुएगंत वदातसुक्कं ॥ १६ ॥

अर्थ—भगवान् महावीर स्वामी अनुत्तर-प्रधान धर्म का उपदेश देकर सर्वोत्तम शुक्लध्यान (सूक्ष्मक्रिया प्रतिपाति और व्युपरत क्रिया निवृत्ति नामक शुक्लध्यान के उत्तर दो भेद) ध्याते थे। उनका ध्यान अत्यन्त शुक्ल वस्तु के समान अथवा शुद्ध सुवर्ण की तरह निर्मल था तथा शंख और चन्द्रमा के समान शुभ्र सफेद था ॥१६॥

अणुत्तरग्गं परमं महेसी,
असेसकम्मं स विसोहइत्ता।
सिद्धिं गते साइमणंतपत्ते,
णाणेण सीलेण य दंसणेण ॥१७॥

अर्थ—श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ज्ञान दर्शन और चारित्र के प्रभाव से ज्ञानावरणीयादि समस्त कर्मो का क्षय करके सर्वोत्तम उस प्रधान सिद्धगति को प्राप्त हुए है जो सादि अनन्त है अर्थात् जीव विशेष की अपेक्षा जिसकी आदि तो है किन्तु अन्त नहीं है ॥१७॥

रुक्खेसु णाए जह सामली वा,
जंसि रतिं वेदयंति सुवण्णा ।
वणेसु वा णंदणमाहु सेट्ठं,
णाणेण सीलेण य भूइपण्णे ॥ १८ ॥

अर्थ—जैसे सुवर्ण (सुपर्ण) जाति के देवों का क्रीड़ास्थान शाल्मली वृक्ष सब वृक्षों में श्रेष्ठ है तथा सब वनों में नन्दन वन श्रेष्ठ है उसी तरह ज्ञान और चारित्र में भगवान् महावीर स्वामी सब से श्रेष्ठ हैं ॥ १८ ॥

थणियं व सद्दाण अणुत्तरे उ,
चंदो व ताराण महाणुभावे ।
गंधेसु वा चंदणमाहु सेट्ठं,
एवं मुणीणं अपडिण्णमाहु ॥ १९ ॥

अर्थ—जैसे शब्दों में मेघ का शब्द (गर्जन) प्रधान है, नक्षत्रों में चन्द्रमा प्रधान है तथा सुगन्ध वाले पदार्थों में चन्दन प्रधान है । इसी तरह नियाणा आदि प्रतिज्ञा रहित भगवान् महावीर स्वामी सभी मुनियों में प्रधान एवं श्रेष्ठ हैं ॥ १९ ॥

जहा सयंभू उदहीण सेट्ठे,
नागेसु वा धरणिंदमाहु सेट्ठे ।
खोओदए वा रस वेजयंते,
तवोवहाणे मुणि वेजयंते ॥ २० ॥

अर्थ—जैसे समुद्रों में स्वयम्भूरमण समुद्र, नाग जाति के देवों में धरणेन्द्र नाग देव और रसों में इक्षुरस श्रेष्ठ है । उसी

प्रकार श्रमण भगवान् महावीर स्वामी सब तपस्वियों में श्रेष्ठ एवं प्रधान हैं ॥ २० ॥

हत्थीसु एरावणमाहु णाए,
सीहो मियाणं सलिलाण गंगा ।
पक्खीसु वा गरुले वेणुदेवो,
णिव्वाणवादीणिह णायपुत्ते ॥ २१ ॥

अर्थ—जैसे हाथियो में इन्द्र का ऐरावत हाथी, पशुओं में सिंह, नदियों मे गङ्गा और पक्षियों में गरूड़ श्रेष्ठ है। इसी तरह निर्वाणवादियों में (मोक्ष मार्ग की प्ररूपणा करने वालों में) ज्ञातपुत्र श्रमण भगवान् महावीर स्वामी श्रेष्ठ हैं ॥ २१ ॥

जोहेसु णाए जह वीससेणे,
पुप्फेसु वा जह अरविंदमाहु ।
खत्तीण सेट्ठे जह दंतवक्के,
इसीण सेट्ठे तह वद्धमाणे ॥२२॥

अर्थ—जैसे सब योद्धाओं में चक्रवर्ती प्रधान है। सब प्रकार के फूलों मे कमल का फूल श्रेष्ठ है और क्षत्रियों में दान्त-वाक्य अर्थात् जिसके वचन मात्र से ही शत्रु शान्त हो जाते हैं ऐसे चक्रवर्ती प्रधान हैं इसी तरह ऋषियों में श्रमण भगवान् वर्द्धमान स्वामी श्रेष्ठ हैं ॥२२॥

दाणाण सेट्ठं अभयप्पयाणं,
सच्चेसु वा अणवज्जं वयंति ।

तवेसु वा उत्तम बंभचेरं,
लोगुत्तमे समणे णायपुत्ते ॥२३॥

अर्थ—जैसे दानों में अभयदान श्रेष्ठ है, सत्य में अनवद्य (जिससे किसी भी जीव को पीड़ा न हो) वचन श्रेष्ठ है और तप में ब्रह्मचर्य तप श्रेष्ठ प्रधान है, इसी तरह श्रमण भगवान् महावीर स्वामी लोक में प्रधान एवं श्रेष्ठ है ॥२३॥

ठिईण सेट्ठा लवसत्तमा वा,
सभा सुहम्मा व सभाण सेट्ठा ।
णिव्वाणसेट्ठा जह सव्वधम्मा,
ण णायपुत्ता परमत्थि णाणी ॥२४॥

अर्थ—जैसे सब स्थिति वालों में * लवसत्तम देव अर्थात् अनुत्तर विमान वासी देव उत्कृष्ट स्थिति वाले होने से प्रधान हैं। सभाओं मे सुधर्मासभा और सब धर्मों में निर्वाण (मोक्ष) प्रधान है। इसी तरह सर्वज्ञ भगवान् महावीर स्वामी से बढ़ कर दूसरा कोई ज्ञानी नहीं है अतः वे सभी ज्ञानियों में श्रेष्ठ है ॥२४॥

पुढोवमे धुणइ विगयगेही,
ण सण्णिहिं कुव्वइ आसुपण्णे ।
तरिउं समुद्दं च महाभवोघं,
अभयंकरे वीर अणंतचक्खू ॥२५॥

* पूर्व-भव में धर्माचरण करते समय यदि सात लव उनकी आयु अधिक होती तो वे केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष में अवश्य चले जाते-इसी लिए वे लवसत्तम कहे जाते हैं।

अर्थ—जैसे पृथ्वी सब जीवों का आधार है, इसी तरह भगवान् महावीर स्वामी सबको अभय देने से तथा उत्तम उपदेश देने से सब जीवों के लिए आधार रूप है। अथवा पृथ्वी सब जीवों के लिए आधार रूप हैं। अथवा पृथ्वी सब कुछ सहन करती है इसी तरह भगवान् महावीर स्वामी सब परीषह और उपसर्गों को समभाव पूर्वक सहन करते थे। भगवान् कर्म रूपी मैल से रहित हैं। वे गृद्धिभाव तथा द्रव्यसन्निधि (धन धान्यादि) और भाव-सन्निधि (क्रोधादि) से भी रहित हैं। आशुप्रज्ञ भगवान् महावीर स्वामी आठ कर्मों का क्षय कर समुद्र के समान अनन्त संसार को पार करके मोक्ष को प्राप्त हुए हैं। भगवान् प्राणियों को स्वयं अभय देते थे और सदुपदेश देकर दूसरों से अभय दिलाते थे। इसलिए भगवान् अभयङ्कर है तथा अष्ट कर्मों का विशेष रूप से सर्वथा क्षय करने से वे वीर एवं अनन्त ज्ञानी है ॥२५॥

कोहं च माणं च तहेव मायं,
लोभं चउत्थं च अज्झत्थदोसा।
एयाणि वंता अरहा महेसी,
ण कुव्वइ पाव ण कारवेइ ॥२६॥

अर्थ—श्रमण भगवान् महावीर स्वामी महर्षि हैं। उन्होंने आत्मा को मलिन करने वाले क्रोध मान माया और लोभ रूप चार कषायों को जीत लिया है। उन्होंने पाप (सावद्य अनुष्ठान) का आचरण न स्वयं किया था और न दूसरों से करवाया था ॥२६॥

किरियाकिरियं वेणइयाणुवायं,
अण्णाणियाणं पडियच्च ठाणं।

से सव्ववायं इति वेयइत्ता,
उवट्ठिए संजम दीहरायं ॥२७॥

अर्थ—क्रियावादी, अक्रियावादी, विनयवादी और अज्ञान-वादी इन सभी मतावलम्बियों के मतों को जान कर भगवान् महावीर स्वामी यावज्जीवन संयम में स्थिर रहे थे ॥२७॥

से वारिया इत्थीसराइभत्तं,
उवहाणवं दुक्खखयट्ठयाए ।
लोगं विदित्ता आरं परं च,
सव्वं पभू वारिय सव्ववारं ॥२८॥

अर्थ—अष्ट कर्मों का नाश करने के लिए भगवान् ने काम-भोग, रात्रिभोजन तथा अन्य सब पापों का त्याग कर दिया था। वे सदा तप संयम में तल्लीन रहते थे। इस लोक और परलोक के स्वरूप को जान कर भगवान् ने पापों का सर्वथा त्याग कर दिया था ॥२८॥

सोच्चा य धम्मं अरहंतभासियं ।
समाहितं अट्ठपदोवसुद्धं ।
तं सद्दहाणा य जणा अणाऊ,
इंदा व देवाहिव आगमिस्संति ॥२९॥

अर्थ—अर्हन्त देव द्वारा कहे हुए युक्तिसंगत तथा शुद्ध अर्थ और पद वाले इस धर्म को सुन कर जो जीव इसमें श्रद्धा करते हैं वे मोक्ष को प्राप्त करते है अथवा कुछ कर्म शेष रह जाय तो देवों के अधिपति इन्द्र होते है ॥२९॥

—सूयगडांगसूत्र

जयइ जगजीवजोणी—
वियाणओ जगगुरु जगाणंदो ।
जगणाहो जगबंधू,
जयइ जगप्पियामहो भयवं ॥१॥
जयइ सुआणं पभवो,
तित्थयराणं अपच्छिमो जयइ ।
जयइ गुरू लोगाणं,
जयइ महप्पा महावीरो ॥२॥
भद्दं सव्वजगुज्जोयगस्स;
भद्दं जिणस्स वीरस्स ।
भद्दं सुरासुरणमंसियस्स,
भद्दं धूयकम्मरयस्स ॥३॥ —नन्दीसूत्र

अर्थ—समस्त संसार के जीवों की उत्पत्ति के स्थान को जानने वाले तीर्थङ्कर भगवान् सदा विजयवन्त है। तीर्थङ्कर भगवान् जगत् के गुरु, जगत को आध्यात्मिक आनन्द देने वाले, जगत् के नाथ, जगत् के बन्धु और जगत् के पितामह है अर्थात् प्राणियों की आत्मिक रक्षा करने से धर्म जगत् का पिता है और और तीर्थङ्कर भगवान् उस धर्म के भी उत्पादक हैं अतः वे जगत् के पितामह हैं। ऐसे तीर्थङ्कर भगवान्-समग्र ज्ञानादि ऐश्वर्य युक्त हैं अतएव जयवन्त है ॥१॥

श्रुतज्ञान अर्थात द्वादशाङ्ग रूप वाणी के प्रकट करने वाले, तीर्थङ्करों में अपश्चिम अर्थात् इस अवसर्पिणी काल के चौवीस

तीर्थङ्करां मे अन्तिम तीर्थङ्कर, निरीह भाव से संसार को तत्त्व का उपदेश देने से लोक के गुरु तथा महात्मा भगवान् महावीर स्वामी सदा विजयवन्त हैं ॥२॥

सब जगत् में उद्योतकारक अर्थात् चराचर जगत् के प्रकाशक तीर्थङ्कर भगवान् का कल्याण हो । रागद्वेष के विजेता श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का कल्याण हो । सुरासुर अर्थात देव दानवों से वन्दित, कर्म रूपी रज को सर्वथा दूर कर देने वाले भगवान् का सदा भद्र-कल्याण हो ॥३॥

वीरवरस्स भगवओ,
जरमरकिलेसदोसरहियस्स ।
वंदामि विणयपणतो,
सोक्खं पाइ संपाए ॥१॥

—सूर्य प्रज्ञप्ति सूत्र बीसवाँ प्राभृत

अर्थ—जन्म जरा मरण के क्लेश से और अठारह दोषों से रहित श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को मैं मोक्ष सुखों की प्राप्ति के लिये विनयपूर्वक वन्दन करता हूँ ।

ववगयजरमरणभए,
सिद्धे अभिवंदिऊण तिविहेणं ।
वंदामि जिणवरिंदं,
तेल्लोक गुरूं महावीरं ॥१॥

—प्रज्ञापना सूत्र.

अर्थ—जरा-बुढापा मरण मृत्यु और भय-(संसार के सातों भय) से रहित सिद्ध भगवान् को मन वचन काया से वन्दना करके, त्रैलोक्यगुरू जिनेन्द्र भगवान् श्री महावीर स्वामी को मैं वन्दना करता हूँ ॥१॥

३२—महापरिनिर्वाण
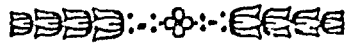
भगवान् ऋषभदेव के महापरिनिर्वाण का वर्णन करते हुए विस्तार से कहते हैं:—

उसभे णं अरहा वीसं पुव्वसयसहस्साइं कुमारवासमज्झे वसित्ता, तेवट्ठिं पुव्वसयसहस्साइं महारज्जवासमज्झे वसित्ता, तेसीइं पुव्वसयसहस्साइं अगारवासमज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए।

उसभे णं अरहा एगं वाससहस्सं छउमत्थपरियागं पाउणित्ता, एगं पुव्वसयसहस्सं वाससहस्सूणं केवलिपरियायं पाउणित्ता एगं पुव्वसयसहस्सं बहुपडिपुण्णं सामण्ण परियायं पाउणित्ता चउरासीइं पुव्वसयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता जे से हेमंताणं तच्चे मासे पंचमे पक्खे माहबहुले, तस्स णं माहबहुलस्स तेरसीपक्खेणं दसहिं अणगारसहस्सेहिं सद्धिं संपरिवुडे अट्ठावयसेलसिहरंसि चोद्दसमेणं भत्तेणं अपाणएणं संपलिअंकणिसण्णे पुव्वण्हकालसमयंसि अभी-इणा णक्खत्तेणं जोगमुवागएणं सुसमदूसमाए समाए एगूणणवउईहिं पक्खेहिं सेसेहि कालगए वीइक्कंते जाव सव्वदुक्खप्पहीणे।

—जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति दूसरा वक्षस्कार

अर्थ—भगवान् ऋषभदेव स्वामी बीस लाख पूर्व वर्ष तक कुमारावस्था में रहे, त्रेसठ लाख पूर्व वर्ष महाराज पद पर रहे। इस प्रकार इन अवस्थाओ को मिला कर कुल तयासी लाख पूर्व वर्ष तक गृहवास मे रहे। तत्पश्चात् मुण्डित होकर गृहवास छोड़ कर अनगार बने अर्थात् दीक्षा अङ्गीकार की।

भगवान् ऋषभदेव स्वामी एक हजार वर्ष तक (छद्मस्थ अवस्था में रहे। एक हजार वर्ष कम एक लाख पूर्व वर्ष केवली पर्याय (केवली अवस्था) में रहे। छद्मस्थ पर्याय और केवली-पर्याय ये दोनो मिला कर बराबर एक लाख पूर्व तक श्रमण पर्याय (साधु अवस्था) का पालन किया। इस प्रकार चौरासी लाख पूर्व की सब आयुष्य भोग कर हेमन्त ऋतु (शीतकाल) के तीसरे मास मे पाँचवें पक्ष मे अर्थात् माघ मास के कृष्णपक्ष मे तेरस के दिन दस हजार साधुओं के साथ अष्टापद पर्वत के शिखर पर पानीरहित अर्थात् चौविहार छह उपवास की तपश्चर्या में दिन के पूर्व भाग मे अभिजित नक्षत्र का चन्द्रमा के साथ योग मिलने पर इस अवसर्पिणी काल के सुषम-दुष्पम नामक तीसरे आरे के ८९ पक्ष शेष रहने पर सम्यक् प्रकार पर्यङ्कासन (पद्मासन) से विराजे हुए भगवान् सिद्ध बुद्ध मुक्त हुए यावत् सब दुःखो का अन्त कर मोक्ष पधारे॥

(निर्वाण-महोत्सव)

भगवान् ऋषभदेव का निर्वाणमहोत्सव देवों ने किस प्रकार मनाया? इसका वर्णन करते हुए कहा गया है:—

जं समयं च णं उसभे अरहा कोसलिए कालगए वीइ-क्कंते समुज्जाए छिण्णजाइजरामरणबंधणे सिद्धे बुद्धे जाव

सव्वदुक्खप्पहीणे तं समयं च णं सक्कस्स देविंदस्स देव-
रण्णो आसणे चलिए। तए णं से सक्के देविंदे देवराया
आसणं चलिअं पासइ पासित्ता ओहिं पउंजइ पउंजित्ता
भयवं तित्थयरं ओहिणा आभोएइ आभोइत्ता एवं वयासी—
परिणिव्वुए खलु जंबूदीवे दीवे भरहे वासे उसभे अरहा
कोसलिए। तं जीयमेअं तीयपच्चुप्पण्णमणागयाणं सक्काणं
देविंदाणं देवराईणं तित्थयराणं परिणिव्वाणमहिमं करेत्तए।
तं गच्छामि णं अहं वि भगवओ तित्थयरस्स परिणिव्वाण-
महिमं करेमि त्तिकट्टु वंदइ णमंसइ वंदित्ता णमंसित्ता चउ-
रासीइ सामाणियसाहस्सीहिं तायत्तीसाए तायत्तोसएहिं
चउहिं लोगपालेहिं जाव चउहिं चउरासीईहिं आयरक्खदेव-
साहस्सीहिं अण्णेहिं य बहूहिं सोहम्मकप्पवासीहिं वेमाणि-
एहिं देवेहिं देवीहिं य सद्धिं संपरिवुडे ताए उक्किट्ठाए
जाव तिरियमसंखेज्जाणं दीवसमुद्दाणं मज्झंमज्झेणं जेणेव-
अट्ठावयपव्वए जेणेव भगवओ तित्थयरस्स सरीरए तेणेव
उवागच्छइ उवागच्छित्ता विमणे णिराणंदे अंसुपुण्णणयणे
तित्थयरसरीरयं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ करित्ता
णच्चासण्णे णाइदूरे सुस्सूसमाणे जाव पज्जुवासइ।

ते णं कालेणं ते णं समएणं ईसाणे देविंदे देवराया
उत्तरड्ढलोगाहिवई अट्ठावीसविमाणसयसहस्साहिवई सूल-

पाणी वसहवाहणे सुरिंदे अयरंबरवत्थधरे जाव विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ। तए णं तस्स ईसाणस्स देविंदस्स देवरण्णो आसणं चलइ। तए णं से ईसाणे जाव देवराया आसणं चलियं पासइ पासित्ता, ओहिं पउंजइ पउंजित्ता भगवं तित्थयरं ओहिणा आभोएइ आभोइत्ता जहा सक्के णियगपरिवारेणं भणियव्वो जाव पज्जुवासइ। एवं सव्वे देविंदा जाव अच्चुए णियगपरिवारेणं भणियव्वो। एवं जाव भवणवासीणं इंदा वाणमंतराणं सोलस जोइसियाणं दोण्णि णियगपरिवारा णेयव्वा।

तए णं सक्के देविंदे देवराया बहवे भवणवइवाणमंतर जोइसियवेमाणिए देवे एवं वयासी–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! णंदणवणाओ सरसाइं गोसीसवरचंदणकट्ठाइं साहरह। साहरित्ता तओ चिइगाओ रएह–एगं भगवओ तित्थयरस्स, एगं गणधराणं, एगं अवसेसाणं अणगाराणं। तए णं ते भवणवइवाणमंतरजोइसियवेमाणिया देवा णंदणवणाओ सरसाइं गोसीसवरचंदणकट्ठाइं साहरंति साहरित्ता तओ चिइगाओ रएंति–एगं भगवओ तित्थयरस्स एगं गणहराणं एगं अवसेसाणं अणगाराणं।

तए णं से सक्के देविंदे देवराया आभिओगिए देवे सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासी–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया!

खीरोदगसमुद्दाओ खीरोदगं साहरह । तए णं ते आभिओ-
गिआ देवा खीरोदगसमुद्दाओ खीरोदगं साहरंति । तएणं
से सक्के देविंदे देवराया तित्थयरसरीरगं खीरोदगेणं ण्हावेइ
ण्हावित्ता सरसेणं गोसीसवरचंदणेण अणुलिंपइ अणुलिंपित्ता
हंसलक्खणं पडसाडयं णियंसेइ णियंसित्ता सव्वालंकार
विभूसियं करेइ । तए णं ते भवणवइवाणमंतर जोइसिय-
वेमाणिया गणहरसरीरगाइं अणगारसरीराइं वि खीरोदगेणं
ण्हावंति ण्हावित्ता सरसेणं गोसीसवरचंदणेणं अणुलिंपंति
अणुलिंपित्ता अहताइं दिव्वाइं देवदूसजुयलाइं णिअंसंति
णिअंसित्ता सव्वालंकारविभूसियाइं करेंति ।

तए णं से सक्के देविंदे देवराया ते वहवे भवणवइवाण-
मंतरजोइसियवेमाणिए देवे एवं वयासी—खिप्पामेव भो
देवाणुप्पिया ! ईहामियउसभतुरय जाव वणलयभत्ति
चित्ताओ तओ सिवियाओ विउव्वह, एगं भगवओ तित्थ-
यरस्स एगं गणहराणं, एगं अवसेसाणं अणगाराणं । तएणं
ते वहवे भवणवइवाणमंतरजोइसियवेमाणिया तओ सिवि-
याओ विउव्वंति, एगं भगवओ तित्थयरस्स एगं गणहराणं
एगं अवसेसाणं । तए णं से सक्के देविंदे देवराया विमणे
णिराणंदे अंसुपुण्णवयणे भगवओ तित्थयरस्स विणट्ठ-
जम्मजरामरणस्स सरीरगं सीअं आरूहेइ आरूहित्ता
चिइगाए ठवेइ तए णं ते वहवे भवणवइवाणमंतरजोइसिय

वेमाणिया देवा गणहराणं अणगाराणं य विणट्ठजम्मजरा-मरणाणं सरीरगाइं सीअं आरूहेंति आरूहित्ता चिइगाए ठवेंति। तए णं से सक्के देविंदे देवराया अग्गिकुमारे देवे सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासी–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! तित्थयरचिइगाए जाव अणगारचिइगाए अगणिकायं विउव्वह विउव्वित्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह। तए णं अगणिकुमारा देवा विमणा णिराणंदा अंसुपुण्णवयणा तित्थयरचिइगाए जाव अणगारचिइगाए य अगणिकायं विउव्वंति। तए णं से सक्के देविंदे देवराया वाउकुमारे देवे सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासी–खिप्पामेव भो देवाणु-प्पिया! तित्थयरचिइगाए जाव अणगारचिइगाए य वाउकायं विउव्वह विउव्वित्ता अगणिकायं उज्जालेह तित्थयरसरीरगं गणहरसरीरगाइं अणगारसरीरगाइं य झामेह। तए णं ते वाउकुमारा देवा विमणा णिराणंदा अंसुपुण्णवयणा तित्थयरचिइगाए जाव विउव्वंति अगणि-कायं उज्जालेंति तित्थयरसरीरगं जाव अणगारसरीरगाणि य झामेंति।

तए णं से सक्के देविंदे देवराया ते बहवे भवणवइ-वाणमंतरजोइसियवेमाणिए देवे एवं वयासी खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! तित्थयरचिइगाए जाव अणगारचिइगाए अगुरुतुरुक्कघयमहुं च कुंभग्गसो य भारग्गसो य साहरह।

तए णं ते वहवे भवणवइ जाव तित्थयर जाव भारग्गसो य साहरंति । तए णं से सक्के देविंदे देवराया मेहकुमारे देवे सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! तित्थयरचिइगं जाव अणगारचिइगं य खीरोदगेणं णिव्वावेह । तए णं ते मेहकुमारा देवा तित्थयरचिइगं जाव णिव्वावेंति । तए णं से सक्के देविंदे देवराया भगवओ तित्थयरस्स उवरिल्लं दाहिणं सकहं गिण्हइ । ईसाणे देविंदे देवराया उवरिल्लं वामं सकहं गिण्हइ । चमरे असुरिंदे असुरराया हिट्ठिल्लं दाहिणं सकहं गिण्हइ । वली वइरोयणिंदे वइरोयणराया हिट्ठिलं वामं सकहं गिण्हइ । अवसेसा भवणवइवाणमंतरजोइसियवेमाणिया देवा जहारिहं अवसेसाइं अंगमंगाइं, केई जिणभत्तीए केई जीयमेयं त्तिकट्टु केई धम्मो त्तिकट्टु गिण्हंति । तए णं से सक्के देविंदे देवराया वहवे भवणवइ जाव वेमाणिए देवे जहारिहं एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! सव्वरयणामए महइमहालए तओ चेइयथूभे करेह—एगं भगवओ तित्थयरस्सचिइगाए एगं गणहरचिइगाए एगं अवसेसाणं अणगाराणं चिइगाए । तए णं ते वहवे जाव करेंति । तए णं ते वहवे भवणवइ जाव वेमाणिया देवा तित्थयरस्स परिणिव्वाणमहिमं करेंति करित्ता जेणेव णंदीसरवरे दीवे तेणेव उवागच्छंति ।

तए णं से सक्के देविंदे देवराया पुरच्छिमिल्ले अंजणग-पव्वए अट्ठाहियं महामहिमं करेइ । तए णं सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो चत्तारि लोगपाला चउसु दहिमुहग-पव्वएसु अट्ठाहियं महामहिमं करेंति। ईसाणे देविंदे देवराया उत्तरिल्ले अंजणगे अट्ठाहियं चमरो य दाहिणिल्ले अंजणगे तस्स लोगपाला दहिमुहगपव्वएसु बली पच्चत्थिमिल्ले अंजणगे तस्स लोगपाला दहिमुहगेसु ।

तए णं ते बहवे भवणवइवाणमंतर जाव अट्ठाहियाओ महामहिमाओ करेंति करित्ता जेणेव साइं साइं विमाणाइं जेणेव साइं साइं भवणाइं जेणेव साओ साओ सभाओ सुहम्माओ जेणेव सआ सआ माणवगा चेइयखंभा तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु जिणसकहाओ पक्खिवंति पक्खिवित्ता अग्गेहिं वरेहिं मल्लेहिं य गंधेहिं य अच्चेंति अच्चित्ता विउलाइं भोग-भोगाइं भुंजमाणा विहरंति ॥

—जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति दूसरा वक्षस्कार

अर्थ—जिस समय भगवान् ऋषभदेव कालधर्म को प्राप्त हुए, जन्म जरा मरण के बन्धनो से रहित हुए, सिद्ध बुद्ध यावत् सब दुःखो से रहित हुए उस समय प्रथम देवलोक के अधिपति शक्र देवेन्द्र देवराजा का आसन चलित हुआ। अपने आसन को चलित हुआ देख कर उसने अवधिज्ञान से उपयोग लगाया । तब

उसने अवधिज्ञान द्वारा भगवान् तीर्थङ्कर को देखा, देख कर ऐसा बोले कि "जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में तीर्थङ्कर भगवान् ऋषभदेव स्वामी निर्वाण (मोक्ष) को प्राप्त हुए हैं। अतीत अनागत और वर्तमान काल के शक्र देवेन्द्र देवराजा का यह जीताचार है कि 'तीर्थङ्कर भगवान् का निर्वाण महोत्सव करना।' इसलिए मैं भी तीर्थङ्कर भगवान का निर्वाण महोत्सव करने के लिए जाऊँ और तीर्थङ्कर भगवान् का निर्वाण महोत्सव करूँ!" ऐसा कह कर शक्रेन्द्र वन्दना नमस्कार करता है। इसके बाद चौरासी हजार सामानिक देव, तैंतीस त्रायस्त्रिंशक देव, चार लोकपाल यावत् तीन लाख छत्तीस हजार आत्मरक्षक देव और बहुत से सौधर्म देवलोकवासी वैमानिक देव-देवियों के साथ शक्रेन्द्र उत्कृष्ट दिव्यगति से तिच्छों असंख्यात द्वीप समुद्रों के बीच में होते हुए अष्टापद पर्वत पर जहाँ तीर्थङ्कर भगवान् का शरीर था वहाँ आया। वहाँ आकर उदास, आनन्दरहित और अश्रुपूर्ण नेत्र वाला होकर शक्रेन्द्र ने तीर्थङ्कर भगवान् के शरीर को तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा अर्थात् दाहिनी तरफ से बाई तरफ घूमते हुए प्रदक्षिणा दी। फिर न अत्यन्त नजदीक, न अत्यन्त दूर बैठ कर वह सेवा भक्ति एवं पर्युपासना करने लगा।

उस काल उस समय में उत्तरार्द्ध लोक का अधिपति, अट्ठाईस हजार विमानों का स्वामी, हाथ में त्रिशूल धारण करने वाला वृषभ का वाहन रखने वाला, देवों का स्वामी, साफ निर्मल वस्त्रों को धारण करने वाला, देवों का इन्द्र, देवों का राजा ईशानेन्द्र विपुल भोग भोगता हुआ क्रीड़ा में रत था। उस समय उसका भी आसन चलित हुआ। अपने आसन को चलित हुआ देख कर उसने भी अवधिज्ञान द्वारा भगवान् तीर्थङ्कर को देखा। देख कर वह भी शक्रेन्द्र की तरह अपने समस्त परिवार सहित अष्टापद

पर्वत पर आकर सेवा भक्ति एवं पर्युपासना करने लगा। इसी तरह तीसरे देवलोक से लेकर बारहवे अच्युत देवलोक तक के इन्द्र अपने अपने परिवार सहित वहाँ आये। इसी प्रकार भवनपति देवो के बीस इन्द्र वाणव्यन्तर देवों के सोलह इन्द्र (तथा आणपन्ने आदि देवों के सोलह इन्द्र) और ज्योतिषी देवों के दो इन्द्र भी वहाँ आये। इस प्रकार ६४ इन्द्र वहाँ आये।

तब शक्र देवेन्द्र देवराजा ने उन भवनपति वाणव्यन्तर ज्योतिपी और वैमानिक देवो से ऐसा कहा कि अहो देवानुप्रियो! शीघ्र ही नन्दन वन मे जाकर वहाँ से सरस गोशीर्ष चन्दन की लकड़ियाँ लाओ और उनमे तीन चिताएँ बनाओ, जिनमे से एक तीर्थंकर भगवान् के लिए, एक गणधरो के लिए और एक सब साधुओं के लिए होगी। शक्रेन्द्र की आज्ञा को पाकर वे देव नन्दन-वन मे गये और वहाँ से सरस गोशीर्ष चदन की लकड़ियाँ लाकर शक्रेन्द्र की आज्ञानुसार तीन चिताएँ तैयार की। तत्पश्चात् शक्र-देवेन्द्र देवराजा ने आभियोगिक देवो को बुला कर कहा कि हे देवानुप्रियो! क्षीरोदक समुद्र मे से क्षीरोदक लेकर आओ। तब वे आभियोगिक देव क्षीरोदकसमुद्र मे से क्षीरोदक ले आए। तब शक्र-देवेन्द्र देवराजा ने तीर्थङ्कर भगवान् के शरीर को उस क्षीरोदक से स्नान कराया, श्रेष्ठ गोशीर्ष चन्दन का लेप किया, हंस के समान सफेद वस्त्र पहनाये और सब अलंकारो से विभूषित किया। इसके पश्चात बहुत से भवनपति वाणव्यन्तर ज्योतिषी और वैमानिक देवो ने गणधर और अन्य सब साधुओ के शरीर को क्षीरोदक से स्नान कराया और गोशीर्ष चन्दन से लेप किया और अखण्डित देवदूष्य (वस्त्र) पहनाये। वस्त्र पहना कर सब अलकारो से विभूषित किया। इसके पश्चात् शक्र देवेन्द्र देवराजा ने बहुत से भवन-पति वाणव्यन्तर ज्योतिषी और वैमानिक देवों से इस प्रकार कहा

कि हे देवानुप्रियो ! ईहामृग (एक प्रकार का मृग विशेष), वृषभ (बैल), तुरंग (घोड़ा) और वनलता आदि विविध प्रकार के चित्रों से युक्त तीन शिविकाओं (पालखियाँ) की विकुर्वणा करो।

जिसमें एक भगवान् तीर्थङ्कर के लिए, एक गणधरों के लिए और एक अन्य सब साधुओं के लिए हो। शक्र देवेन्द्र देवराजा की आज्ञा पाकर उन देवों ने तत्काल उपरोक्त प्रकार की तीन शिविकाओं की विकुर्वणा की। तत्पश्चात् उदास, आनन्द रहित एवं अश्रुपूर्ण नेत्रों वाले शक्र देवेन्द्र देवराजा ने जन्म जरा मरण का नाश करने वाले तीर्थङ्कर भगवान् के शरीर को शिविका में बिठाया और चिता के पास ले जाकर स्थापित किया। इसके बाद बहुत से भवनपति वाणव्यन्तर ज्योतिषी और वैमानिक देवों ने जन्म जरा मरण का विनाश करने वाले गणधर देवों के और साधुओं के शरीर को शिविका में बिठाया और चिता के पास ले जाकर चिता में रखा। इसके पश्चात् शक्र देवेन्द्र देवराजा ने अग्निकुमार देवों को बुला कर आज्ञा दी कि देवानुप्रियो ! तीर्थङ्कर भगवान् की चिता में गणधरों की तथा साधुओं की चिताओं में अग्नि की विकुर्वणा करो (अग्नि लगाओ) यह आज्ञा पाकर उदास, आनन्द रहित एवं अश्रुपूर्ण नेत्रों वाले उन देवों ने तीनों चिताओं में अग्नि लगाई। तब शक्र देवेन्द्र देवराजा ने वायुकुमार देवों को बुलाया और कहा कि हे देवानुप्रियो ! उपरोक्त तीनों चिताओं में वायुकाय की विकुर्वणा करो और वायुकाय की विकुर्वणा करके अग्नि को प्रज्वलित करो एवं तीर्थङ्कर भगवान् के शरीर को और गणधरों के तथा अन्य सब साधुओं के शरीर का अग्नि संस्कार करो (जलाओ)। शक्र देवेन्द्र देवराजा की आज्ञा पाकर उदास, आनन्दरहित एवं अश्रुपूर्ण नेत्रों वाले वायुकुमार देवों ने उन चिताओं में वायुकाय विकुर्वणा करके

अग्नि को प्रज्वलित किया और तीर्थङ्कर भगवान् के शरीर का तथा गणधरों के और सब साधुओ के शरीरां का अग्नि संस्कार किया। तत्पश्चात् शक्र देवेन्द्र देवराजा ने उन भवनपति वाणव्यन्तर ज्योतिषी और वैमानिक देवो से कहा कि हे देवानुप्रियो! अनेक घड़े प्रमाण और अनेक भार प्रमाण अगुरू तुरुष्क घृत और मधु लाओ। आज्ञा पाकर उन देवों ने वैसा ही किया। तब शक्र देवेन्द्र देवराजा ने मेघकुमार देवों को बुलाया और कहा कि हे देवानुप्रियो! इन चिताओं को क्षीरोदक से बुझाओ। तब उन देवो ने क्षीरोदक से उन चिताओं को बुझाया। तत्पश्चात शक्र देवेन्द्र देवराजा ने तीर्थङ्कर भगवान् की ऊपर की दाहिनी दाढा को ग्रहण किया। ईशानेन्द्र देवेन्द्र देवराजा ने ऊपर की बाईं दाढा को ग्रहण किया। चमर असुरेन्द्र असुर राजा ने नीचे की दाहिनी दाढा को ग्रहण किया और बली वैरोचनेन्द्र राजा ने नीचे की बाईं दाढा को ग्रहण किया। शेष भवनपति वाणव्यन्तर ज्योतिषी वैमानिक देवों मे से कितने ही देवों ने जिन भक्ति के वश से, कितने ही देवो ने अपना जीत आचार समझ कर और कितने ही देवों ने धर्म समझ कर तीर्थङ्कर भगवान् के शेष अङ्गों में से यथायोग्य अङ्गों की अस्थियों को ग्रहण किया।

इसके बाद शक्र देवेन्द्र देवराजा ने भवनपति वाणव्यन्तर ज्योतिषी और वैमानिक देवों को यथायोग्य इस प्रकार आज्ञा दी कि हे देवानुप्रियो! इन तीनों चिताओं के ऊपर सर्वरत्नमय तीन चैत्यस्तूप (चित्त को प्रसन्न करने वाले स्तूप-खम्भे-स्तम्भ) बनाओ। आज्ञा पाकर उन देवो ने उसी प्रकार तीनों चिताओं पर तीन चैत्यस्तूप बनाये। तत्पश्चात् उन देवों ने तीर्थङ्कर भगवान् की निर्वाण महिमा की और निर्वाण-महिमा करके नन्दीश्वर द्वीप मे आये। इसके बाद शक्र देवेन्द्र देवराजा ने पूर्व दिशा के अञ्जन

पर्वत पर अष्टाह्निका (आठ दिन तक) महोत्सव मनाया और शक्रेन्द्र के चार लोकपाल देवों ने चार दधिमुख पर्वतों पर अष्टाह्निका महोत्सव मनाया। ईशानेन्द्र ने उत्तर दिशा के अञ्जन पर्वत पर अष्टाह्निका महोत्सव मनाया और ईशानेन्द्र के चार लोकपालों ने चार दधिमुख पर्वतों पर अष्टाह्निका महोत्सव मनाया। चमरेन्द्र ने दक्षिण दिशा के अञ्जन पर्वत पर और उसके चार लोकपालों ने चार दधिमुख पर्वतों पर अष्टाह्निका महोत्सव मनाया। बलीन्द्र ने पश्चिम दिशा के अञ्जन पर्वत पर और उसके चार लोकपालों ने चार दधिमुख पर्वतों पर अष्टाह्निका महोत्सव मनाया। इसी प्रकार उन बहुत से भवनपति वाणव्यन्तर ज्योतिषी और वैमानिक देवों ने अष्टाह्निका महोत्सव मनाया। फिर वे जहाँ अपने-अपने विमान थे वहाँ आये और अपने-अपने विमानों में बैठ कर अपने-अपने भवनों में गये। वहाँ अपनी-अपनी सुधर्मा सभा में आकर माणक चैत्य स्तम्भ के पास आये। वहाँ आकर वज्रमय गोल डिब्बे में उन दाढाओं को एवं दांतों आदि को रखा। रख कर श्रेष्ठ मालाओं से और गन्ध से उनकी पूजा की। पूजा करके वे अपने दिव्य भोग भोगते हुए रहने लगे ॥ २३ ॥

१—सिद्ध और सिद्धालय

भगवान् महावीर स्वामी से गौतम स्वामी का सिद्धों के विषय मे प्रश्न—

कहिं पडिहया सिद्धा, कहिं सिद्धा पइट्ठिया ;
कहिं बोंदिं चइत्ताणं, कत्थ गंतूणं सिज्झई ॥

उत्तराध्ययन सूत्र ३६।५६

अर्थ—हे भगवन् ! सिद्ध ऊपर जाकर कहाँ रुके हुए हैं ? सिद्ध कहाँ स्थित है ? और कहाँ शरीर को छोड़ कर कहाँ [illegible] सिद्ध होते हैं ?

भगवान् महावीर स्वामी का उत्तर—

अलोए पडिहया सिद्धा, लोयग्गे य पइट्ठिया ;
इहं बोंदिं चइत्ताणं, तत्थ गंतूण सिज्झई ॥

—उत्तराध्ययन ३६।५७

अर्थ—सिद्ध अलोक में अर्थात् लोक के [illegible] कर रुके हैं और लोक के अग्र भाग में स्थित हैं [illegible] में शरीर को छोड़ कर लोक के [illegible] में जाकर सिद्ध होते हैं ।

(सिद्ध क्षेत्र और सिद्ध भगवान का वर्णन)

बारसहिं जोयणेहिं, सव्वट्ठस्सुवरिं भवे ।
इसिपब्भार णामा उ, पुढवी छत्तसंठिया ॥५७॥

पणयालसयसहस्सा, जोयणाणं तु आयया ।
तावइयं चेव वित्थिण्णा, तिगुणो साहिय परिरओ ॥५९॥
अट्ठ जोयण बाहल्ला, सा मज्झम्मि वियाहिया ।
परिहायंती चरिमंते, मच्छिपत्ता उ तणुयरी ।६०॥
अज्जुणसुवण्णगमई, सा पुढवी विमला सहावेणं ।
उत्ताणगच्छत्तसंठिया य, भणिया जिणवरेहिं ॥६१॥
संखंककुंदसंकासा, पंडुरा णिम्मला सुहा ।
सीयाए जोयणे तत्तो, लोयंतो उ वियाहिओ ॥६२॥
जोयणस्स उ तत्थ, कोसो उवरिमो भवे ।
तस्स कोसस्स छब्भाए, सिद्धाणोगाहणा भवे ॥६३॥
तत्थ सिद्धा महाभागा, लोयग्गम्मि पइट्ठिया ।
भवप्पपंचओ मुक्का, सिद्धिं वरगइं गया ॥६४॥
उस्सेहो जस्स जो होइ, भवम्मि चरिमम्मि उ ।
तिभागहीणो तत्तो य, सिद्धाणोगाहणा भवे ॥६५॥
एगत्तेण साइया, अपज्जवसिया वि य ।
पुहुत्तेण अणाइया, अपज्जवसिया वि य ॥६६॥
अरूविणो जीवघणा, णाणदंसणसण्णिया ।
अउलं सुहं संपण्णा, उवमा जस्स णत्थि उ ॥६७॥
लोगेगदेसे ते सव्वे, णाणदंसणसण्णिया ।
संसारपारणित्थिण्णा, सिद्धिं वरगइं गया ॥६८॥

अर्थ—सर्वार्थसिद्ध विमान से बारह योजन ऊपर उत्तान (उल्टे) छत्र के आकार की ईपत्प्राग्भारा नाम की पृथ्वी है ॥५८॥

वह ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी पैंतालीस लाख योजन लम्बी है और पैंतालीस लाख योजन ही विस्तीर्ण-चौड़ी है और उसकी परिधि कुल अधिक तीन गुणी है ॥ ५६ ॥

वह ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी-सिद्धशिला बीच में आठ योजन मोटी कही गई है और चारों तरफ से घटती-घटती सब से अन्त में मक्खी के पंख से भी पतली हो गई है ॥ ६० ॥

वह ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी सफेद स्वर्णमयी है और स्वभाव से ही निर्मल है। उसका आकार उत्तान अर्थात् ऊपर की तरफ मुख वाले छत्र के समान है। इस प्रकार जिनेश्वर देवों ने फर्माया है ॥ ६१ ॥

वह ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी शंख, अंकरत्न और कुन्दफूल के समान सफेद और निर्मल है। उस पृथ्वी से एक योजन ऊपर लोक का अन्त कहा गया है ॥ ६२ ॥

वहाँ उस एक योजन का जो ऊपर वाला कोस है उस कोस के छठे भाग में सिद्धों की अवगाहना-अवस्थिति है ॥ ६३ ॥

संसार के प्रपंच से मुक्त, सिद्धि रूप श्रेष्ठ गति को प्राप्त हुए महाभाग-महाभाग्यशाली सिद्ध भगवान् वहीं लोक के अग्रभाग पर विराजमान हैं ॥ ६४ ॥

सिद्ध होने वाले जीवों की अन्तिम भव में जितनी ऊँचाई होती है उससे तीन भाग कम सिद्ध अवस्था में सिद्धों की अव-गाहना होती है ॥ ६५ ॥

एक सिद्ध की अपेक्षा से सिद्ध सादि अनन्त हैं और बहुत जीवों की अपेक्षा से अनादि अनन्त हैं ॥ ६६ ॥

सिद्ध जीव अरूपी, जीवप्रदेशों से सघन हैं. और ज्ञान दर्शन सहित हैं तथा वे ऐसे अतुल सुख को प्राप्त हुए हैं, जिसकी उपमा नहीं दी जा सकती है अर्थात् सिद्ध भगवान् ऐसे अनन्त आत्मिक सुख में विराजमान हैं, जिसकी उपमा संसार के किसी भी पदार्थ से नहीं दी जा सकती है।

वे सभी सिद्ध भगवान् लोक के एक देश में अर्थात् लोक के अग्रभाग में स्थित हैं, ज्ञान दर्शन सहित हैं, संसार के पार पहुँचे हुए हैं और सिद्धि रूप श्रेष्ठ गति को प्राप्त हुए हैं ॥ ६८ ॥

(सिद्ध स्थान)

१–कहिणं भंते ! सिद्धाणं ठाणा पण्णत्ता ? कहि णं भंते ! सिद्धा परिवसंति ? गोयमा ! सव्वट्ठसिद्धस्स महाविमाणस्स उवरिल्लाओ थूभियग्गाओ दुवालस जोयणाइं उड्ढं अबाहाए एत्थ णं ईसिपब्भारा णामं पुढवी पण्णत्ता। पणयालीसं जोयणसहस्साइं आयामविक्खंभेणं, एगा-जोयणकोडी बायालीसं च जोयणसयसहस्साइं तीसं च सहस्साइं दोण्णि य अउणापण्णे जोयणसए किंचि विसेसा-हिए परिक्खेवेणं पण्णत्ता। ईसिपब्भाराए णं पुढवीए बहुमज्झदेसभाए अट्ठजोयणिए खेत्ते, अट्ठ जोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ते। तयाणंतरं च णं मायाए मायाए पएसपरिहाणीए परिहायमाणी परिहायमाणी सव्वेसु चरि-

मंतेसु मच्छियपत्ताओ तणुयरी, अंगुलस्स असंखेज्जइभागे बाहल्लेणं पण्णत्ता । ईसिपब्भाराए णं पुढवीए दुवालस णामधेज्जा पण्णत्ता तंजहा–ईसी इ वा, ईसिपब्भारा इ वा, तणू इ वा, तणु तणू इ वा, सिद्धि त्ति वा, सिद्धालए त्ति वा, मुत्ती इ वा, मुत्तालए इ वा, लोयग्गे इ वा लोयग्गथूभिया इ वा, लोयग्गपडिबुज्झणा इ वा, सव्वपाण-भूय-जीव-सत्त-सुहावहावइ वा। ईसिपब्भारा णं पुढवी सेया संखदल-विमल-सोच्छिय–मुणाल–दग–रय–तुसार–गोखीर—हारवण्णा, उत्ताणगच्छत्त-संठाण-संठिया सव्वजुणसुवण्णमई अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठामट्ठा णीरया णिम्मला णिप्पंका णिक्कं-कडच्छाया सप्पभा सस्सिरीया, सउज्जोया, पासाइया, दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा ।

ईसिपब्भाराए णं पुढवीए उड्ढं सीयाए जोयणम्मि लोगंते । तस्स णं जोयणस्स जे से उवरिल्ले गाउए तस्स णं गाउयस्स जे से उवरिल्ले छब्भागे एत्थ णं सिद्धा भग-वंतो साइया अपज्जवसिया अणेग-जाइ-जरामरणजोणि–संसार-कलंकलीभाव-पुणब्भव-गब्भवास-वसही-पवंच समइ-क्कंता सासयमणागयद्धं कालं चिट्ठंति । तत्थ वि य ते अवेया अवेयणा णिम्ममा असंगा य संसार-विप्पमुक्का पएसणिव्वत्तसंठाणा ।

–प्रज्ञापनासूत्र

अर्थ—गौतमस्वामी श्रमण भगवान् महावीर से पूछते हैं कि अहो भगवन्! सिद्धस्थान कहाँ है? सिद्ध भगवान् कहाँ रहते हैं?

उत्तर—श्रमण भगवान् महावीर स्वामी फरमाते हैं कि हे गौतम! सर्वार्थसिद्ध विमान के ऊपर की स्तूपिका शिखर के अग्र भाग से ऊपर बारह योजन दूर ईषत्प्राग्भारा नाम की पृथ्वी (शिला) है। वह पैंतालीस लाख योजन की लम्बी चौड़ी है। उसकी परिधि (घेरा) एक करोड़ बयालीस लाख तीस हजार दो सौ उनपचास योजन से कुछ अधिक है। उसके बीच में आठ योजन के विस्तार में आठ योजन की मोटी (जाड़ी) है फिर उसमे से एक एक प्रदेश की कमी होते हुए अन्त में मक्खी के पंख से भी पतली है और मोटाई में अङ्गुल के असंख्यातवें भाग जितनी मोटी (जाड़ी) है।

इस ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी के बारह नाम कहे गये हैं। यथा-१ ईषत्, २ ईषत्प्राग्भारा, ३ तनु, ४ तनु तन्वी, ५ सिद्धि, ६ सिद्धालय, ७ मुक्ति, ८ मुक्तालय, ९ लोकाग्र, १० लोकाग्र स्तूपिका, ११ लोकाग्र प्रतिवाहिनी, १२ सर्वप्राणभूत जीवसत्त्व सुखावहा।

वह ईषत्प्रग्भारापृथ्वी कैसी है? इसका वर्णन किया जाता है—वह ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी, शंख—चूर्ण, मृणाल (कमलतन्तु) जलप्रवाह, तुषार-(ओस विन्दु) गोक्षीर (गाय के दूध) और मोतियां के हार के समान सफेद है। उसका आकार उल्टे किये हुए छत्र के समान है। अर्जुनसुवर्ण (सफेद सुवर्ण) मय है। वह साफ, श्लक्ष्ण (सुंहाली) स्निग्ध घृष्ट (घिसी हुई) मृष्ट (चिकनी चमकदार) नीरज (रज धूलिरहित) निर्मल (मैल रहित) निष्पङ्का (कीचड़ रहित) स्निग्ध छाया वाली, सप्रभा (प्रभा सहित) सश्रीक (शोभा सहित) सउद्योत (प्रकाश सहित) चित्त को

प्रसन्न करने वाली, दर्शनीय, अभिरूप (सुन्दर) और प्रतिरूप (अत्यन्त सुन्दर) है।

उस ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी से निःसरणी की गति अनुसार एक योजन ऊपर लोक का अन्त है। उस एक योजन का जो सर्वोपरि एक कोस है उस कोस के ऊपर के छठे भाग में सिद्ध भगवान् स्थित है। वे सिद्ध भगवान् एक सिद्ध की अपेक्षा से सादि अपर्यवसित (आदि सहित किन्तु अन्त रहित) है। वे सिद्ध भगवान् जन्म जरा मरण योनियो मे परिभ्रमण का क्लेश सांसारिक दुःख पुनर्भव और गर्भावास के प्रपच-दुःख से रहित है। वे शाश्वत है, अनन्तकाल तक वहाँ स्थित रहते हैं। वे वेदरहित हैं, वे वेदना अर्थात (दुःख) रहित हैं। वे निर्मम अर्थात् ममत्व रहित हैं और बाह्याभ्यन्तर संग रहित है, संसार से मुक्त है। वे अपने आत्मप्रदेशो से निष्पन्न संस्थान मे स्थित हैं ॥

(सिद्धों का अवस्थान)

कहिं पडिहया सिद्धा, कहिं सिद्धा पइट्ठिया।
कहिं बोंदिं चइत्ताणं, कत्थ गंतूण सिज्झई ॥
अलोए पडिहया सिद्धा, लोयग्गे य पइट्ठिया।
इह बोंदिं चइत्ताणं, तत्थ गंतूण सिज्जइ ॥ २ ॥

प्रज्ञापना सूत्र

अर्थ—प्रश्न-अहो भगवन! सिद्ध किससे प्रतिहत हुए हैं अर्थात् रुके है? सिद्ध कहाँ प्रतिष्ठित अर्थात रहे हुए हैं और कहाँ शरीर का त्याग करके कहाँ जाकर सिद्ध पद को प्राप्त करते है?

उत्तर—सिद्ध अलोकाकाश द्वारा रुके हुए हैं, लोक के अग्र-भाग में रहे हुए हैं और इस लोक में शरीर को छोड़ कर वहाँ जाकर सिद्ध पद को प्राप्त करते है।
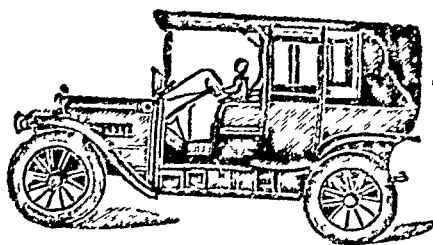
टिप्पणी—सिद्ध भगवान् प्रतिघात रहित होते है, इसलिए उनको रुकावट नहीं होती, किन्तु आगे अलोकाकाश होने से ऊपर जीव की गति नहीं होती है। इसलिए वे लोकाग्र में रुके है।

२—सिद्धों का स्वरूप
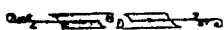
असरीरा जीवघणा, उवउत्ता दंसणे य णाणे य।
सागारमणागारं, लक्खणमेयं तु सिद्धाणं ॥ १ ॥
केवलणाणुवउत्ता जाणंता सव्वभावगुणभावे।
पासंता सव्वओ खलु, केवलदिट्ठीहिं णंताहिं ॥ २ ॥

—प्रज्ञापनासूत्र

अर्थ—सिद्ध भगवान् अशरीरी है अर्थात् औदारिक आदि पाँचो शरीरों से रहित हैं, आत्मप्रदेशों के घनवाले है, और साकारोपयोग (दर्शनोपयोग) वाले एवं अनाकारोपयोग (ज्ञानोपयोग) वाले है। यह सिद्ध भगवान् का लक्षण-स्वरूप है ॥ १॥

सिद्ध भगवान् केवलज्ञानोपयोग और केवल दर्शनोपयोग वाले हैं। वे अनन्त केवलज्ञानोपयोग के द्वारा सब पदार्थो के गुण और पर्यायों को सर्वथा रूप से जानते हैं और अनन्त केवलदर्शनोपयोग के द्वारा सब पदार्थों के गुण और पर्यायों को सर्वथा देखते ॥ २ ॥

३-सिद्धदेव के इकत्तीस गुण

एक्कतीसं सिद्धाइ गुणा परणत्ता तंजहा—खीणे आभिणिबोहियणाणावरणे, खीणे सुयणाणावरणे, खीणे ओहिणाणावरणे, खीणे मणपज्जवणाणावरणे, खीणे केवलणाणावरणे, खीणे चक्खुदंसणावरणे, खीणे अचक्खुदसणावरणे, खीणे ओहिदंसणावरणे, खीणे केवलदंसणावरणे, खीणे णिद्दा, खीणे णिद्दणिद्दा, खीणे पयला, खीणे पयलापयला, खीणे थीणद्धी, खीणे सायावेयणिज्जे, खीणे असायावेयणिज्जे, खीणे दंसण-मोहणिज्जे खीणे चरित्तमोहणिज्जे, खीणे णेरइआउए, खीणे तिरिआउए, खीणे मणुस्साउए, खीणे देवाउए, खीणे उच्चागोए, खीणे णिच्चागोए, खीणे सुभणामे, खीणे असुभणामे, खीणे दाणंतराए, खीणे लाभंतराए, खीणे भोगांतराए, खीणे उवभोगंतराए, खीणे वीरिअंतराए ॥ —समवायांग ३१ वाँ सम०

अर्थ—सिद्ध भगवान् के इकत्तीस गुण कहे गये हैं। ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों का सर्वथा क्षय कर जो सिद्धि गति में विराजमान हैं, वे सिद्ध भगवान् कहलाते हैं। ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों की इकत्तीस प्रकृतियाँ हैं। सिद्ध भगवान् ने इन प्रकृतियां का सर्वथा क्षय कर दिया है। इसलिए उनमें इन इकत्तीस प्रकृतियों

के क्षय से उत्पन्न होने वाले इकत्तीस गुण होते हैं। वे इस प्रकार हैं—१. अभिनिबोधिक यानी मति ज्ञानावरणीय का क्षय। २. श्रुत ज्ञानावरणीय का क्षय। ३. अवधि ज्ञानावरणीय का क्षय ४. मनः पर्यय ज्ञानावरणीय का क्षय। ५. केवल ज्ञानावरणीय का क्षय। ६ चक्षु दर्शनावरणीय का क्षय। ७ अचक्षुदर्शनावरणीय का क्षय। अवधि दर्शनावरणीय का क्षय। ९ केवल दर्शनावरणीय का क्षय। १० निद्रा का क्षय। ११ निद्रानिद्रा का क्षय। १२ प्रचला का क्षय। १३. प्रचला प्रचला का क्षय। १४. स्त्यानगृद्धि का क्षय। १५. साता वेदनीय का क्षय। १६. असाता वेदनीय का क्षय। १७. दर्शन मोहनीय का क्षय। १८. चारित्र मोहनीय का क्षय। १९. नरक आयु का क्षय। २०. तिर्यञ्च आयु का क्षय। २१. मनुष्य आयु का क्षय। २२. देव आयु का क्षय। २३. उच्च गोत्र का क्षय। २४. नीच गोत्र का क्षय। २५. शुभ नाम का क्षय। २६. अशुभ नाम का क्षय। २७. दानान्तराय का क्षय। २८. लाभान्तराय का क्षय। २९. भोगान्तराय का क्षय। ३०. उपभोगान्तराय का क्षय। ३१. वीर्यान्तराय का क्षय।

४-सिद्धों की अवगाहना

दीहं वा हस्सं वा, जं चरिम भवे हविज्ज संठाणं ।
तत्तो तिभागहीणा, सिद्धाणोगाहणा भणिया ॥१॥
जं संठाणं तु इहं भवे, चयंतस्स चरिमसमयम्मि ।
आसी य पएसघणं, तं संठाणं तहिं तस्स ॥२॥
तिण्णसया तित्तीसा, धणुत्तिभागो य होइ णायव्वो ।
एसा खलु सिद्धाणं, उक्कोसोगाहणा भणिया ॥३॥
चत्तारि य रयणीओ रयणी तिभागूणिया य बोद्धव्वा ।
एसा खलु सिद्धाणं मज्झिम ओगाहणा भणिया ॥४॥
एगा य होइ रयणी, अट्ठेव य अंगुलाइं साहिया ।
एसा खलु सिद्धाणं जहण्ण ओगाहणा भणिया ॥५॥
ओगाहणाइ सिद्धा भवत्तिभागेण होंति परिहीणा ।
संठाणमणित्थंथं, जरामरणविप्पमुक्काणं ॥६॥
जत्थ य एगो सिद्धो, तत्थ अणंता भवक्खयविमुक्का ।
अण्णोण्णसमोगाढा, पुट्ठा सव्वे वि लोगंते ॥७॥
फुसइ अणंते सिद्धे, सव्वपएसेहिं णियमसो सिद्धा ।
ते वि य असंखिज्जगुणा, देसपएसेहिं जे पुट्ठा ॥८॥

—प्रज्ञापना सूत्र

अर्थ—दीर्घ अर्थात् लम्बा अथवा ह्रस्व अर्थात् छोटा, जैसा संस्थान अन्तिम भव में होता है उससे तीन भाग हीन सिद्ध भगवान् की अवगाहना होती है ॥१॥

इस मनुष्य लोक में मनुष्य शरीर का त्याग करने के अन्तिम समय में आत्मप्रदेशों का घन रूप जो संस्थान होता है वह संस्थान सिद्ध भगवान् के होता है ॥२॥

तीन सौ तेतीस धनुष और एक धनुष का तीसरा भाग प्रमाण सिद्ध भगवान् की उत्कृष्ट अवगाहना होती है ॥३॥

चार हाथ और एक हाथ में तीसरा भाग कम प्रमाण सिद्ध भगवान् की मध्यम अवगाहना होती है ॥४॥

एक हाथ और आठ अङ्गुल अधिक प्रमाण सिद्ध भगवान् की जघन्य अवगाहना होती है ॥५॥

सिद्ध भगवान् की अवगाहना इस मनुष्य लोक के चरम-शरीर के तीन भाग कम होती है। इसलिए जरा-बुढापा और मरण से मुक्त सिद्ध भगवन्तो का संस्थान अनित्थंस्थ (अनियत प्रकार का) होता है ॥६॥

जहाँ एक सिद्ध होता है वहाँ भवक्षय से मुक्त अनन्त सिद्ध होते है। वे परस्पर मिल कर रहे हुए है और सभी सिद्ध लोकान्त को स्पर्श किये हुए है ॥७॥

सिद्ध अपने आत्म प्रदेशों से अनन्त सिद्धों को स्पर्श किये हुए हैं और देश एवं प्रदेश द्वारा जो स्पर्श किये हुए है वे उनसे असंख्यात गुणा है ॥८॥

५—सिद्धों की स्थिति

१—सिद्धे णं भंते ! सिद्धत्ति कालओ केवच्चिरं होइ ? गोयमा ! * साइए अपज्जवसिए ।

—प्रज्ञापना सूत्र

अर्थ—श्री गौतम स्वामी श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से पूछते है कि—अहो ! भगवन् सिद्ध भगवान् की 'सिद्ध' रूप से कितनी स्थिति है ?

उत्तर—हे गौतम ! एक सिद्ध भगवान् की अपेक्षा सिद्ध भगवान् की स्थिति सादि अपर्यवसित (सादि अनन्त) है ।

(शाश्वतस्थिति का कारण)

सिद्ध भगवान् की शाश्वत स्थिति के कारण के विषय में प्रश्नोत्तर रूप से प्रकाश डालते हुए कहा गया है:—

---

* टिप्पणी—जब जीव यहां से मोक्ष जाता है, तब 'अमुक जीव अमुक काल में सिद्ध हुआ । ऐसा काल विशेष लिया जाता है, इसलिए वह सिद्ध जीव अपने सिद्धि गमन काल की अपेक्षा आदि(आदि सहित) है, किन्तु मोक्ष में गये बाद वह जीव कभी वापिस संसार में नहीं आता है । अपितु अनन्तकाल वहीं पर रहता है इस अपेक्षा से वह अनन्त है । इसलिए एक सिद्ध जीव की अपेक्षा से सिद्ध भगवान् की स्थिति सादिअपर्यवसित (सादि अनन्त) है और सब सिद्ध जीवों की अपेक्षा सिद्ध भगवान् की स्थिति अनादि अपर्यवसित (अनादि अनन्त) है ॥

ते णं तत्थ सिद्धा भवंति–असरीरा जीवघणा दंसण-णाणोवउत्ता णिट्ठियट्ठा णीरया णिरेयणा वितिमिरा विसुद्धा सासयमणागयद्धं कालं चिट्ठंति ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ते णं तत्थ सिद्धा भवंति असरीरा जीवघणा दंसणणाणोवउत्ता णिट्ठियट्ठा णीरया णिरेयणा वितिमिरा विसुद्धा सासयमणागयद्धं कालं चिट्ठंति ?

गोयमा ! से जहा णामए वीयाणं अग्गिदड्ढाणं पुणरवि अंकुरुप्पत्ती ण भवइ । एवामेव सिद्धाण वि कम्म-बीएसु दड्ढेसु पुणरवि जम्मुप्पत्ती ण भवइ । से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—ते णं तत्थ सिद्धा भवंति असरीरा जीवघणा दंसणणाणोवउत्ता णिट्ठियट्ठा णीरया णिरेयणा वितिमिरा विसुद्धा सासयमणागयद्धं कालं चिट्ठंति ।

णिच्छिण्णसव्वदुक्खा,
जाइजरामरणबंधणविमुक्का ।
सासयमव्वाबाहं,
चिट्ठंति सुही सुहं पत्ता ॥१॥

—प्रज्ञापना सूत्र

अर्थ—सिद्ध भगवान् अशरीरी-शरीर रहित, जीव-प्रदेशों के धन वाले, दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोग वाले, निष्ठितार्थ (कृतार्थ) नीरज (रजरहित) निरेजन (कम्पनरहित)

वितिमिर (कर्मों के आवरण रूप अन्धकार से रहित) विशुद्ध, और शाश्वत हैं। वे शाश्वत अनागत अनन्तकाल तक सिद्ध गति में विराजे रहते हैं।

१. प्रश्न—गौतम स्वामी पूछते हैं कि अहो भगवन्! आप ऐसा किस कारण से फरमाते हैं कि—वहाँ रहे हुए सिद्ध अशरीरी जीवप्रदेशों के घन वाले, दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोग वाले, कृतार्थ, कर्मरजरहित, कम्पनरहित, वितिमिर-अज्ञानरहित और विशुद्ध, शाश्वत अनागत अनन्तकाल तक वहाँ रहते हैं ?

उत्तर—हे गौतम! जिस प्रकार अग्नि से जले हुए बीज से फिर अङ्कुर की उत्पत्ति नहीं हो सकती है, इसी प्रकार सिद्ध भगवान् का भी कर्म-रूपी बीज जल चुका है; इसलिए उससे फिर जन्म-रूपी अंकुर की उत्पत्ति नहीं हो सकती। इसलिए हे गौतम! मैं ऐसा कहता हूँ कि वहाँ रहे हुए सिद्ध भगवान् अशरीरी, जीवप्रदेशों के घन वाले, दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोग वाले, निष्ठितार्थ—कर्म-रजरहित, निरंजन, वितिमिर और विशुद्ध होते हैं। वे शाश्वत-सदा काल एवं अनागत अनन्त काल पर्यन्त वहाँ सिद्धगति मे विराजे रहते हैं। यथा—

सर्व दुःखों का अन्त किये हुए अर्थात् सर्व दुःखों के पार पहुंचे हुए जन्मजरा-मरण के बन्धनों से मुक्त और अव्याबाध-सुख को प्राप्त हुए सुखी सिद्ध भगवान् शाश्वत् सदाकाल एवं अनागत अनन्तकाल तक सिद्ध गति मे विराजमान रहते हैं ॥

९—सिद्धों का अन्तर

सिद्धस्स णं भंते ! अंतरं कालओ केवच्चिरं होइ ?

गोयमा ! ※सादियस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं।

—जीवाजीवाभिगम

अर्थ—गौतम स्वामी श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से पूछते हैं कि अहो भगवन् ! काल की अपेक्षा सिद्ध भगवान् का कितना अन्तर होता है ?

उत्तर—हे गौतम ! सादि अपर्यवसित सिद्ध भगवान् का अन्तर नहीं है।

※ टिप्पणी—सभी सिद्ध भगवान् अपनी-अपनी अपेक्षा सादि अपर्यवसित हैं। अर्थात् जिस समय जो जीव कर्म क्षय करके मोक्ष मे जाकर सिद्ध हुआ है, वह समय उस जीव का सिद्ध होने का आदि काल है। इस प्रकार सभी सिद्ध जीव किसी न किसी समय अपने-अपने कर्म क्षय करके सिद्धगति में गये हैं, इसलिए अपने-अपने सिद्ध होने के समय की अपेक्षा वे सभी सिद्ध जीव सादि हैं। ऐसा कोई सिद्ध जीव नही है, जो पहले कभी संसारी नहीं रहा हो। इस संसार में परिभ्रमण नहीं किया हो। अपितु सभी सिद्ध जीव कभी न कभी संसारी रहे है और फिर अपने-अपने कर्म क्षय करके सिद्ध हुए है। कोई भी सिद्ध जीव ऐसा नही है. जो सदा से ही सिद्ध रहा हो इस तरह सभी सिद्ध जीव अपनी-अपनी अपेक्षा सादि (आदि यानी शुरूआत सहित) है।

कर्म क्षय करके जो जीव मोक्ष में चला जाता है वह कभी वापिस संसार में नहीं आता है। जैसे बीज के जल जाने पर अंकुर की उत्पत्ति नहीं होती है, वैसे ही कर्मरूपी बीज के जल जाने पर भव (संसार) रूपी अंकुर की उत्पत्ति नहीं होती है। क्योंकि जब कारण का नाश हो जाता है तो कार्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती है। इसी प्रकार संसार के परिभ्रमण का कारण कर्म है। जब कर्म नष्ट हो गये तो संसार परिभ्रमण रूप कार्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती है। इस प्रकार सिद्ध जीवों को फिर संसार में आने का कोई कारण नहीं है। वे शाश्वत सिद्ध होते हैं। अतः वे अपर्यवसित (अनन्त) हैं।

जो जीव जिस गति में है वह उस गति से निकल कर दूसरी गति में चला जाय। फिर कालान्तर में वह उसी गति में (जिस गति में से निकल कर गत्यन्तर में गया है वापिस उसी गति में) आवे तो बीच के व्यवधान के समय को 'अन्तर' कहते हैं। जैसे—इस समय कोई एक जीव मनुष्यगति में है वह मर कर देवगति में चला गया। वही देवगति की आयु पूर्ण करके वापिस मनुष्य गति में आया तो मनुष्यगति को छोड़ कर वापिस मनुष्यगति में आने के बीच का समय है वह 'अन्तर काल' कहलाता है ऐसा 'अन्तर काल' सिद्ध जीवों में नही पाया जाता हैं, क्योंकि वे मुक्त हो जाने के बाद फिर वहाँ से च्युत हो कर दूसरा गति में नहीं जाते हैं, अपितु वे सदा काल मोक्ष में ही विराजमान रहते हैं, वे शाश्वत सिद्ध हैं। इसलिए अन्तर नही पाया जाता है। इसीलिए शास्त्रकारो ने फरमाया है कि—'सादियस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं' अर्थात् सादि अपर्यवसित सिद्ध भगवान् का अन्तर नही है।

७—सिद्धों के विषय में !

(विविध प्रश्नोत्तर)
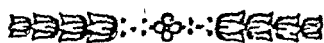
सिद्ध भगवान् पुद्गली है या पुद्गल ?

१—सिद्धे णं भंते ! पोग्गली पोग्गले ? गोयमा ! णो *पोग्गली, पोग्गले। से केणट्ठेणं ? गोयमा ! जीवं पडुच्च से तेणट्ठेणं एवं वुच्चइ सिद्धे णो पोग्गली, पोग्गले।

—भगवती सूत्र शतक ८ उद्देशक १०

(१) प्रश्न—भगवन् ! सिद्ध भगवान् क्या पुद्गली हैं या पुद्गल हैं ?

उत्तर—हे गौतम सिद्ध भगवान् पुद्गली नहीं हैं, किन्तु पुद्गल हैं।

प्रश्न—ऐसा किस कारण से कहा जाता है ?

उत्तर—हे गौतम ! जीव की अपेक्षा सिद्ध भगवान् पुद्गल हैं। उनके स्पर्शनेन्द्रिय आदि इन्द्रियाँ नहीं हैं, इसलिए वे पुद्गली नहीं हैं।

---

* टिप्पणी:—"जिसके इन्द्रियाँ हों वह पुद्गली कहलाता है।" यहाँ ऐसी विवक्षा की गई है।

१–तए णं सा जयंती समणोवासिया समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ, समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी— कहण्णं भंते ! जीवा गरुयत्तं हव्वमागच्छंति ? जयंती ! पाणाइवाएणं जाव मिच्छादंसणसल्लेणं एवं खलु जीवा गरुयत्तं हव्वमागच्छंति । एवं जहा पढम सए जाव वीईवयंति ।

२–भवसिद्धियत्तणं भंते ! जीवाणं किं सभावओ परिणामओ ? जयंती ! सभावओ, णो परिणामओ ।

३–सव्वे वि णं भंते ! भवसिद्धिया जीवा सिज्झिस्संति ? हंता जयंती ! सव्वे वि णं भवसिद्धिया जीवा सिज्झिस्संति ।

४–जइ णं भंते ! सव्वे वि भवसिद्धिया जीवा सिज्झिस्संति, तम्हा णं भवसिद्धियविरहिए लोए भविस्सइ ? णो इणट्ठे समट्ठे । से केणं खाइएणं अट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ— सव्वे वि णं भवसिद्धिया जीवा सिज्झिस्संति णो चेव णं भवसिद्धियविरहिए लोए भविस्सइ ? जयंती ! से जहा णामए सव्वागाससेढी सिया अणादीया अणवदग्गा परित्ता परिवुडा सा णं परमाणुपोग्गलमेत्तेहिं खंडेहिं, समए समए अवहीरमाणी अवहीरमाणी अवहीरंति, णो चेव णं अवहीरिया सिया । से तेणट्ठेणं जयंती एवं वुच्चइ–सव्वे वि णं

भवसिद्धिया जीवा सिज्झिस्संति, णो चेव णं भवसिद्धिय-विरहिए लोए भविस्सइ।

—भगवतीसूत्र शतक १२ उद्देशक २

अर्थ—श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास धर्मोपदेश सुन कर जयन्ती श्रमणोपासिका अत्यन्त प्रसन्न हुई। और भगवान् को वन्दना नमस्कार करने लगी, वन्दना नमस्कार करके वह इस प्रकार प्रश्न पूछने लगी:—(१) भगवन् कौन-सा कार्य करने से जीव भारी होता है?

उत्तर—हे जयन्ती! प्राणातिपात-जीवहिंसा करने से यावत् मिथ्यादर्शन शल्य तक अठारह पापों का सेवन करने से जीव कर्मों से भारी होता है यावत् संसार मे परिभ्रमण करता है।

(२) प्रश्न कौन-सा कार्य करने से जीव लघु-(हल्का) होता है?

उत्तर—हे जयंती! प्राणातिपात-(जीवहिंसा) का त्याग करने से यावत् मिथ्यादर्शन शल्य तक अठारह पापों का त्याग करने से जीव लघु-(हल्का) होता है यावत् संसार सागर को तिर जाता है एवं मोक्ष मे चला जाता है।

(३)-प्रश्न—भगवन्! जीवों का भवसिद्धिकपना स्वाभाविक (स्वभाव से) है या पारिणामिक (परिणाम से) है?

उत्तर—हे जयन्ती! जीवों का भवसिद्धिकपना स्वाभाविक है, पारिणामिक नहीं है।

(४) प्रश्न—अहो भगवन्! क्या सभी भवसिद्धिक जीव सिद्ध हो जायेंगे अर्थात् मोक्ष चले जायेंगे?

उत्तर—हाँ, जयन्ती ! सभी भवसिद्धिक जीव सिद्ध हो जायेंगे अर्थात् मोक्ष चले जायेंगे।

(५) प्रश्न—भगवन् ! यदि सभी भवसिद्धिक जीव सिद्ध हो जायेंगे अर्थात मोक्ष चले जावेंगे तो क्या यह संसार भवसिद्धिक जीवों से रहित (खाली) हो जायगा ?

उत्तर—हे जयन्ती ! ऐसा नहीं होगा। अर्थात सभी भव-सिद्धिक जीव सिद्ध हो जायेंगे तो भी यह संसार भवसिद्धिक जीवों से रहित (खाली) नहीं होगा।

प्रश्न—अहो भगवन् ! यह कैसे ?

उत्तर—जैसे-सर्व आकाश की एक श्रेणी ली जाय। यह अनादि अनन्त होती है और दोनों तरफ से परिमित एवं दूसरी आकाश प्रदेश श्रेणियों से घिरी हुई होती है। उसमें से एक एक समय में एक एक परमाणु पुद्गल मात्र खण्ड निकालते निकालते अनन्त उत्सर्पिणी और अनन्त अवसर्पिणी पूरी हो जाय तो भी वह एक श्रेणी खाली नहीं हो सकती है। इसी प्रकार सभी भवसिद्धिक जीव सिद्ध होंगे अर्थात मोक्ष चले जायेंगे तो भी यह संसार भव-सिद्धिक जीवों से रहित (खाली) नहीं होगा।

(१) केवली णं भंते ! भासेज्ज वा वागरेज्ज वा ? हंता भासेज्ज वा वागरेज्ज वा।

(२) जहा णं भंते ! केवली भासेज्ज वा वागरेज्ज वा तहा णं सिद्धे वि भासेज्ज वा वागरेज्ज वा ? णो इणट्ठे समट्ठे।

(३) से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—जहा णं केवली भासेज्ज वा वागरेज्ज वा णो तहा णं सिद्धे भासेज्ज वा वागरेज्ज वा ? गोयमा ! केवली णं सउट्ठाणे सकम्मे सबले सवीरिए सपुरिसक्कारपरक्कमे ! सिद्धे णं अणुट्ठाणे जाव अपुरिसक्कारअपरक्कमे । से तेणट्ठेणं जाव वागरेज्ज वा ।

—भगवतीसूत्र शतक १४/१०

अर्थ—(१) प्रश्न-भगवन् ! क्या केवलज्ञानी बोलते हैं अथवा प्रश्नों का उत्तर देते है ?

उत्तर—हाँ, गौतम ! केवलज्ञानी बोलते है अथवा प्रश्नों का उत्तर देते है ।

(२) भगवन् ! जिस प्रकार केवलज्ञानी बोलते है एवं प्रश्नों का उत्तर देते है, उसी प्रकार क्या सिद्ध भगवान् भी बोलते हैं एवं प्रश्नों का उत्तर देते है ?

उत्तर—हे गौतम ! यह अर्थ युक्त नहीं है अर्थात सिद्ध भगवान् बोलते नहीं है और प्रश्नों का उत्तर भी नहीं देते है ।

(३) प्रश्न—भगवन् ! इसका क्या कारण है कि केवलज्ञानी बोलते और प्रश्नों का उत्तर देते है किन्तु सिद्ध भगवान् बोलते नहीं एवं प्रश्नों का उत्तर नहीं देते है ?

उत्तर—हे गौतम ! केवलज्ञानी सशरीरी होने से उत्थान (उठना आदि), कर्म (गमनागमनादि), बल, वीर्य और पुरुषकार पराक्रम सहित है, इसलिए वे बोलते है एवं प्रश्नों का उत्तर देते है । सिद्ध भगवान् अशरीरी होने से उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकार पराक्रम रहित है इसलिए वे बोलते नहीं हैं एवं प्रश्नो का उत्तर नहीं देते है ॥

सिद्धा णं भंते ! किं कतिसंचिया, अकतिसंचिया, अवत्तव्वगसंचिया ? गोयमा ! सिद्धा कतिसंचिया, णो अकतिसंचिया, अवत्तव्वगसंचिया वि । से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—सिद्धा कतिसंचिया, णो अकतिसंचिया, अवत्तव्वगसंचिया वि ? गोयमा ! जे णं सिद्धा संखेज्जएणं पवेसणएणं पविसंति ते णं सिद्धा कतिसंचिया। जे णं सिद्धा एक्कएणं पवेसणएणं पविसंति ते णं सिद्धा अवत्तव्वग-संचिया । से तेणट्ठेणं जाव अवतव्वगसंचिया वि ।

—भगवतीसूत्र शतक २०/१०

अर्थ—प्रश्न-भगवन् ! क्या सिद्ध भगवान् कतिसंचित (एक समय मे संख्याता सिद्ध हुए) हैं ? या अकतिसंचित (एक समय में असख्याता सिद्ध हुए) है या अवक्तव्यसंचित (एक समय में एक सिद्ध हुए) है ?

उत्तर—हे गौतम ! सिद्ध भगवान् कतिसंचित हैं और अवक्तव्यसचित भी हैं, किन्तु अकतिसंचित नहीं हैं ।

प्रश्न—भगवन् इसका क्या कारण है ?

उत्तर—हे गौतम ! जो जीव एक समय में संख्याता प्रवेश-नक द्वारा प्रविष्ट हुए है अर्थात् संख्याता सिद्ध हुए है वे कतिसंचित हैं और जो जीव एक समय में एक प्रवेशनक द्वारा प्रविष्ट हुए है अर्थात एक सिद्ध हुए हैं वे अवक्तव्य संचित है । किन्तु एक समय मे असंख्याता जीव सिद्ध नहीं होते है, इसलिए सिद्ध भगवान् अकतिसंचित नहीं है ।

(सिद्ध भगवान के विषय में)

१–सिद्धा णं भंते ! किं वड्ढंति, हायंति अवट्ठिया ? गोयमा ! सिद्धा वड्ढंति, णो हायंति, अवट्ठिया ।

२–सिद्धा णं भंते ! केवइयं कालं वड्ढंति ? गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अट्ठ समया ।

३–सिद्धा णं भंते ! केवइयं कालं अवट्ठिया ? गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं छम्मासा ।

४–सिद्धा णं भंते ! किं सोवचया, सावचया, सोवचयसावचया, णिरुवचयणिरवचया ? गोयमा ! सिद्धा सोवचया, णो सावचया, णो सोवचयसावचया, णिरुवचय णिरवचया ।

५–सिद्धा णं भंते ! केवइयं कालं सोवचया ? गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं अट्ठसमया ।

६–केवइयं कालं णिरुवचयणिरवचया ? गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं उक्कोसेणं छम्मासा ।

भगवतीसूत्र शतक ५/८

अर्थ—(१) प्रश्न—भगवन् ! क्या सिद्ध भगवान् बढ़ते है ? घटते हैं ? या अवस्थित रहते हैं ?

उत्तर—हे गौतम ! सिद्ध भगवान् बढ़ते है, घटते नही हैं, और अवस्थित भी रहते हैं ।

(२) प्रश्न—भगवन् ! सिद्ध भगवान् कितने काल तक बढ़ते हैं ?

उत्तर—हे गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आठ समय तक सिद्ध भगवान् बढ़ते हैं।

(३) प्रश्न-भगवन् ! सिद्ध भगवान कितने समय तक अवस्थित रहते हैं ?

उत्तर-हे गौतम ! जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट छह महीने तक सिद्ध भगवान् अवस्थित रहते हैं।

(४) प्रश्न-भगवन् ! क्या सिद्ध भगवान् सोपचय (उपचय सहित-वृद्धि सहित) हैं ? या एक साथ सोपचय-सापचय (एक साथ वृद्धि और हानि-कमी सहित) हैं ? या निरुपचय निरपचय (एक साथ घटबध रहित) है ?

उत्तर-हे गौतम ! सिद्ध भगवान् सोपचय (वृद्धि सहित) हैं किन्तु सापचय (हानि सहित) नहीं हैं और सोपचय सापचय (एक साथ घटबध सहित) भी नहीं है। किन्तु निरुपचय निरपचय (एक साथ घटबध रहित) हैं।

(५) प्रश्न-भगवन् ! सिद्ध भगवान् कितने काल तक सोपचय (वृद्धि सहित) हैं ?

उत्तर-हे गौतम ! जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट आठ समय तक सिद्ध भगवान् सोपचय (वृद्धि सहित) है।

(६) प्रश्न—भगवन् ! सिद्ध भगवान् कितने काल तक निरूपचय निरपचय (एक साथ घटबध रहित) हैं ?

उत्तर—हे गौतम ! जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट छह महीने तक सिद्ध भगवान् निरूपचय निरपचय (एक साथ घटबध रहित) हैं।

८-सिद्धों का सुख
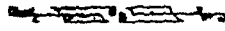
ण वि अत्थि माणुसाणं, तं सोक्खं ण वि य सव्वदेवाणं।
जं सिद्धाणं सोक्खं, अव्वाबाहं उवगयाणं ॥१॥

सुरगणसुहं समत्तं, सव्वद्धा पिंडियं अणंतगुणं।
ण वि पावइ मुत्तिसुहं, णंताहिं वग्गवग्गूहिं ॥२॥

सिद्धस्स सुहोरासी, सव्वद्धापिंडिओ जइ हविज्जा।
सोऽणंत वग्गभइओ, सव्वागासे ण माइज्जा ॥३॥

जह णाम कोइ मिच्छो, णयरगुणे बहुविहे वियाणंतो।
ण चएइ परिकहेउं, उवमाए तहिं असंतीए ॥४॥

इय सिद्धाणं सोक्खं अणोवमं णत्थितस्स ओवम्मं।
किंचि विसेसेणित्तो सारिक्खमिणं सुणह वोच्छं ॥५॥

जह सव्वकामगुणियं पुरिसो भोत्तूण भोयणं कोइ।
तण्हा छुहा विमुक्को अच्छिज्ज जहा अमियतित्तो ॥६॥

इय सव्वकालतित्ता, अउलं णिव्वाणमुवगया सिद्धा।
सासयमव्वाबाहं चिट्ठंति सुही सुहं पत्ता ॥७॥

सिद्धत्ति य बुद्धत्तिय पारगयत्ति परंपरगयत्तिय।
उम्मुक्ककम्मकवया अजरा अमरा असंगा य ॥८॥

णित्थिएणसव्वदुक्खा, जाइजरामरणबंधणविमुक्का।
अव्वाबाहं सोक्खं, अणुहोंति सासयं सिद्धा ॥९॥
अउलसुहसागरगया, अव्वाबाहे य णोवम्मं पत्ता।
सव्वं अणागयद्धं, चिट्ठंति सुही सुहं पत्ता ॥१०॥

—प्रज्ञापना सूत्र

अर्थ—अव्याबाध सुख को प्राप्त हुए सिद्ध भगवान् को जो सुख है वह सुख मनुष्यों को भी नहीं है और देवों को भी नहीं है ॥१॥

सब देवों का जो त्रैकालिक सुख है इसको एकत्र करके अनन्त बार वर्ग (गुणा) किया जाय तो भी वह सिद्ध भगवान के सुखों की तुलना मे नहीं आ सकता है ॥२॥

सिद्ध भगवान् के सर्वकालिक सुखराशि-सुख समूह को यदि एकत्र किया जाय और उसको अनन्त मूलवर्ग से घटाया जाय अर्थात् उसमें अनन्त वक्त वर्गमूल का भाग दिया जाय तो वह सुख भी सर्व आकाशश्रेणी में नहीं समा सकता अर्थात् इतना सुखमात्र भी सर्व आकाश में नहीं समा सकता तो सम्पूर्ण सुख तो समा ही कैसे सकता है ॥३॥

जिस प्रकार कोई वनवासी (जंगल में रहने वाला) म्लेच्छ नगर में आकर एवं नगर को देख कर वापिस जंगल में चला जाय। वहाँ दूसरे वनवासी उसे नगर के गुणों के विषय मे पूछें तो वह नगर के विविध गुणों को जानता हुआ भी वहां कोई उपमा नहीं होने से वह उनसे नगरगुणों को नहीं कह सकता है। इसी प्रकार सिद्ध भगवान् के सुख नहीं कहे जा सकते हैं तथापि एक दृष्टांत देकर इनकी कुछ तुलना करके बतलाया जाता है, उसे

तुम सुनो—जैसे कोई पुरुष सर्वकामगुणयुक्त सर्व प्रकार के रस युक्त एवं संस्कार युक्त भोजन करके भूख प्यास से रहित होकर अमृत से तृप्त हुए क समान परम संतोष को प्राप्त होता है, उसी प्रकार निर्वाण-मोक्ष को प्राप्त हुए सिद्ध भगवान् सर्वकाल अर्थात् सादि अनन्त काल तक अतुल, शाश्वत और अव्याबाध सुखों में तल्लीन रहते हैं ॥ ४-७ ॥

सिद्ध, बुद्ध. पारगत, परम्परागत, कर्मरूपी कवच का त्याग किये हुए, अजर जरा बुढ़ापा रहित,अमर-मरण रहित और असंग-संगरहित हैं। सर्व दुःखों से रहित, जन्म-जरा-मरण के बन्धन से मुक्त सिद्ध भगवान् शाश्वत काल पर्यन्त अव्याबाध सुखों का अनुभव करते हैं ॥ ८-९ ॥

अतुलसुखसागर में लीन, अव्याबाध और अनुपम सुख को को प्राप्त सिद्ध भगवान् सर्वकाल अर्थात सादि अनन्तकाल तक वहाँ अनन्त सुखों में विराजे रहते हैं ॥ १० ॥